राजनैतिक मूल्यों की बदलती संकल्पना साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में

THE CHANGING CONCEPT OF POLITICAL VALUES IN THE HINDI NOVELS OF POST-SIXTIES

Thesis submitted to the
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
for the Degree of
DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

SUDHAKARAN S.

Supervising Teacher
Dr. S. SHAJAHAN

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
KOCHI – 682 022

1991

CERTIFICATE

This is to certify that this **THESIS** is a bonafide record of work carried out by **SUDHAKARAN.S.** under my supervision for **Ph.D.** and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Dr. S. SHANKARAN
(Supervising Teacher)

Department of Hindi,
Cochin University of
Science & Technology,
KOCHI, Pin 682 Ø22,

Date: 27-Ø5-1991.

प्राक्कथन

प्राक्कथन

"राजनैतिक मूल्यों की बदलती संकल्पना साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में" शीर्षक इस शोध-प्रबन्ध में चुने हुए उपन्यासों के आधार पर उन सभी तथ्यों का अन्वेषण करने का प्रयास किया गया है, जिन्होंने सामाजिक जीवन बोध को रूपायित करते हुए नये मूल्यबोध की संकल्पना का आधार निश्चित किया है । प्रमुखतया इस अध्ययन में तेरह उपन्यासों का समावेश किया गया है, जिनका रचनाकाल लगभग सन् 1969 से 1983 तक का समय है । इस दशक में हिन्दी के राजनैतिक उपन्यासों की नई धारा का रूप निश्चित होने लगता है और प्रतिबद्धता की पृष्ठभूमि में राजनीति की बदलती हुई भूमिका और परिणामस्वरूप जन्म लेनेवाली मूल्य-संक्रमण की स्थितियाँ उभरने लगती हैं ।

इस विषय को लेकर पहली बार अध्ययन के स्वरूप को तय करते हुए शोधात्मक कार्य करने का प्रयास यहाँ हुआ है । सामग्री-संकलन, अन्वेषण, विश्लेषण और अन्वयन को प्रस्तुत करते समय शोध की

दृष्टि को बहुत ही तटस्थ और वस्तुनिष्ठ रखने का प्रयास किया गया है । उपन्यासों की अन्तश्चेतना और सामाजिक चेतना के बीच ताल-मेल बैठाने की लेखकों की प्रतिबद्धात्मक दृष्टि कहाँ तक सफल रही है, यह भी अन्वेषण का मुद्दा रहा है । साथ ही साथ राजनीति की बदलती संकल्पना ने सामाजिक मूल्यबोध को किस तरह प्रभावित किया है, इसपर भी दृष्टि डाली गयी है । इसलिए इस शोध-प्रबन्ध का विषय "संपूर्णतया साहित्यिक" न होकर साहित्य और समाजशास्त्र की सीमाओं से गुजरने केलिए बाध्य हो गया । क्योंकि राजनीति का अध्ययन, समाज की जीवन दृष्टि से अलग अपना अस्तित्व नहीं रखता ।

अध्ययन की सुविधा केलिए यह शोध-प्रबन्ध पाँच अध्यायों में विभक्त है । पहला अध्याय "स्वातंत्र्योत्तर कालीन मूल्यबोध और राजनीतिक परिप्रेक्ष्य" है । इसमें स्वातंत्र्योत्तर कालीन परिवेश एवं मूल्य बोध पर विचार किया गया है ।

दूसरा अध्याय "साठोत्तरी उपन्यासों की रचनात्मक भूमिका और राजनैतिक चेतना" है । तत्कालीन उपन्यास की विशेषताओं एवं विशेष प्रवृत्तियों के उल्लेख के साथ-साथ आंचलिक उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास, राजनैतिक उपन्यास एवं नगरबोध से जुडे हुए उपन्यासों पर प्रकाश डाला गया है । इनकी रचनात्मक भूमिका की ओर भी ध्यान दिया गया है ।

तीसरा अध्याय है - "प्रतिनिधि रचनाएँ और राजनैतिक जीवन के बदलते आयाम" । चुने गये उपन्यासों के आधार पर राजनीति के क्षेत्र में हुए परिवर्तन पर प्रकाश डालना यहाँ हमारा लक्ष्य रहा है । स्वाधीन भारत की राजनैतिक चेतना को उभारकर रखने के उद्देश्य से इन उपन्यासों की प्रस्तुति हुई है । रचना के वर्षों को ध्यान में रखते हुए उसी क्रम में उपन्यासों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । कथ्य में राजनैतिक जीवन का चित्र, चरित्र और पात्र-रचना में राजनीति का प्रभाव, चरित्रों के बदलते स्वरूप, राजनैतिक जीवन का प्रभाव और औपन्यासिक दृष्टि आदि के आधार पर इन उपन्यासों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है ।

चौथा अध्याय है - "प्रजातंत्र दलबाजी और मूल्यशोषण" । इसमें उपन्यासों के आधार पर प्रजातंत्र की क्षीण परंपरा और उसकी ह्रासोन्मुखी दृष्टि पर विचार किया गया है । इस अध्याय में प्रमुख शासक पार्टी कांग्रेस की नीतियों की और उसके परिणामों की उपन्यासों के आधार पर आलोचना हुई है ।

पाँचवाँ अध्याय "राजनैतिक मूल्यबोध की बदलती संकल्पना" है । भारत की प्रमुख राजनैतिक पार्टियों और उनके प्रख्यापित आदर्श - लक्ष्यों पर विचार करने के बाद उनके बीच के आपसी गठबन्धन पर यहाँ प्रकाश डाला गया है । इसके अलावा उपन्यासों में चित्रित स्थितियों के आधार पर परिवर्तित मूल्यबोध को पहचानने की कोशिश की गयी है । साथ ही साथ मूल्यशोषण के कारणों पर विचार करने एवं आर्थिक, सामाजिक एवं वैयक्तिक सीमाओं में मूल्यबोध की बदलती संकल्पना के प्रभाव को भी आंकने की कोशिश की गयी है । इन पाँच अध्यायों के अलावा "उपसंहार" है,

जिसमें इस अध्ययन के आधार पर उभरनेवाले निष्कर्षों की प्रस्तुति हुई है ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध कोचीन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग के रीडर, आदरणीय गुरुवर डॉ॰ एस॰ शाहजहाँ के निर्देशन में संपन्न हुआ है । इस शोध-प्रबन्ध के अथ से इति तक मुझे उनसे प्रेरणा एवं प्रोत्साहन मिलते रहे । उनके पथ-प्रदर्शन के अभाव में इस प्रबन्ध की पूर्णता असंभव ही होती । मुझे उनसे दिशा एवं दृष्टि मिली हैं । मैं उनके प्रति आभार प्रकट करना चाहता हूँ । विभाग के अध्यक्ष के प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ । विभाग के पुस्तकालय की अध्यक्षा श्रीमति॰तपुरान के प्रति मैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ । इस प्रबन्ध की पूर्ति केलिए जिन मित्रों से मुझे प्रेरणा एवं सहायता मिली हैं, उन सबके प्रति मैं आभारी हूँ ।

सुधाकरन॰ एस॰

हिन्दी विभाग,
कोचीन विज्ञान व प्रौद्योगिकी
विश्वविद्यालय, कोची - 22,
तारीख़ 22 मई 1991

विषय - सूची

पृष्ठ-संख्या

पहला अध्याय 1 - 23

स्वातंत्र्योत्तर कालीन मूल्यबोध और राजनीतिक परिप्रेक्ष्य

स्वातंत्र्योत्तर कालीन सामाजिक स्थिति और नए मूल्यों का विकास - परंपरागत मूल्य और नए मूल्यों का संघर्ष - युगचेतना और अनास्था का विकास - मूल्यों के प्रति निषेधात्मक दृष्टि और व्यावहारिक नीति का विकास ।

दूसरा अध्याय 24 - 51

साठोत्तरी उपन्यासों की रचनात्मक भूमिका और राजनैतिक चेतना

साठोत्तरी उपन्यासों की विशेषताएँ और विशेष प्रवृत्तियाँ - उपन्यासकार और सामाजिक चेतना - नगरबोध और बदलती दृष्टि - राजनैतिक हस्तक्षेप और सामाजिक

पृष्ठ-संख्या

जीवन की दुर्गति - भाई-भतीजावाद का
विकास और राजनीति के प्रति बुद्धिजीवियों
की विमुखता - साम्प्रदायिकता का विकास
और राजनैतिक अवसरवादिता का प्रभाव ।

तीसरा अध्याय 52 - 150

प्रतिनिधि रचनाएँ और राजनैतिक
जीवन के बदलते आयाम

प्रतिनिधि रचनाएँ - एक और मुख्यमंत्री -
सबहिं नचावत राम गोसाई - काली आंधी -
राग दरबारी - कटरा बी आर्जू - महाभोज -
जंगलतंत्रम् - महामाहिम - हज़ार घोड़ों का
सवार - दारूलशफा - समय एक शब्द भर
नहीं है - शांतिभंग - प्रजाराम - उपन्यासों
का कथ्य - राजनीतिक जीवन का चित्र -
पात्र रचना में राजनैतिक प्रभाव और चरित्रों
का बदलता स्वरूप - राजनैतिक जीवन का
प्रभाव और औपन्यासिक दृष्टि ।

चौथा अध्याय 151 - 196

प्रजातंत्र दलबाजी और मूल्यशोषण

उपन्यासों में वर्णित प्रजातंत्र की क्षीण परंपरा
और ह्रासोन्मुखी दृष्टि - दलबाजी और

पृष्ठ-संख्या

दलों की खोखली नीति - समाजनीति के विरुद्ध राजनीति - राजनीतिक धांधली और मूल्यशोषण - कांग्रेस सराज की आलोचना - जनजीवन और मूल्यशोषण ।

पांचवां अध्याय 197 - 236

राजनैतिक मूल्यबोध की बदलती संकल्पना

भारतीय राजनीति और पार्टियों का गठबन्धन - उपन्यासों में चित्रित स्थितियों के आधार पर मूल्यबोध का परिवर्तित रूप - राजनैतिक मूल्यशोषण के कारण - आर्थिक, सामाजिक एवं वैयक्तियों सीमाओं में राजनैतिक मूल्यों की बदलती संकल्पना का प्रभाव ।

उपसंहार 237 - 242

संदर्भ ग्रन्थ सूची 243 - 257

---θθθ---
---θ---

पहला अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर कालीन मूल्यबोध और राजनीतिक परिप्रेक्ष्य

पहला अध्याय

स्वातंत्र्योत्तर कालीन मूल्यबोध और राजनैतिक परिप्रेक्ष्य

स्वातंत्र्योत्तर कालीन सामाजिक स्थिति और नये मूल्यों का विकास

स्वातंत्र्योत्तर कालीन सामाजिक स्थिति उन सभी परिस्थितियों और प्रतिक्रियाओं का परिणाम है, जिनका संबन्ध स्वतंत्रता संग्राम से लेकर स्वतंत्र, गणतंत्र राष्ट्र की स्थापना तक और उसके बाद में होनेवाली सत्ता की लडाई तक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से जुड्ता है । स्वाधीनता-प्राप्ति के साथ-साथ देश में एक नया इतिहास तो शुरू होता है । लेकिन यह इतिहास विभाजन के रक्तपात से कलंकित है । विभाजन की विभीषिका से जैसे-जैसे देश स्वतंत्र होने लगा, वैसे-वैसे देश की अन्दरूनी परिस्थितियाँ, राजनैतिक सत्ता की लडाई और स्वार्थों की पूर्ति केलिए किये गये षड्यंत्र से प्रभावित होती गयी । इन प्रभावों का मूल्यांकन करते समय लगता है कि देश के परंपरागत मूल्य कहीं अंधेरे में विलुप्त हो गये ।

स्वाधीनता-प्राप्ति के संदर्भ में जनता ने बहुत से सपने संजोये थे । आशा की गयी थी कि आज़ादी मिलते ही शोषण समाप्त होगा और श्रम का महत्व बढ़ेगा । लेकिन देश के स्वाधीन होते ही काग्रेस के नेता शासक बन बैठे और बिना विलम्ब के काग्रेस में सत्ता की लडाई शुरू हो गयी । "1948 में गाँधीजी ने उपदेश दिया था कि काग्रेस का विलयन करना चाहिए और काग्रेस कार्यकर्ताओं को जनता की उन्नति केलिए समाज-सेवक होना चाहिए । लेकिन काग्रेस के नेता सुख भोगना चाहते थे और इसलिए किसी ने गाँधीजी के उपदेश पर ध्यान नहीं दिया । वे गतकाल की सेवाओं पर जीना चाहते थे।[1]" इधर गाँधीजी की क्रांतदर्शिता सत्य सिद्ध हुई । नेहरूजी के चुम्बकीय व्यक्तित्व के आगे अन्य सहयोगी नेता झुक गये । प्रधानमंत्री के रूप में जवहरलाल नेहरू द्वारा निर्धारित कार्यक्रम और नीतियाँ अदूरदर्शिता के शिकार बनती गयीं, क्योंकि उनके चारों तरफ स्वार्थसिद्धि को बढावा देनेवाले गुटों का जमघट था । इनसे मुक्ति प्राप्त करने में और काग्रेस को सही दिशा देने में स्वप्नदृष्टा नेहरूजी असमर्थ रहे । जाने या अनजाने इसका परिणाम यह निकला कि काग्रेस को छोड्कर किसी विपक्षी दल का गठन ही नहीं हो पाया । भारत की राजनैतिक दुर्दशा का यह एक सशक्त कारण बना । नेहरूजी के बाद उन्हीं के परिवार के लोगों के हाथों में सत्ता पहुँचाने के षड्यंत्र के रूप में इस नीति की व्याख्या आगे चलकर प्रस्तुत की जाने लगी ।

---

1. Gandhiji had advised in 1948 that Congress should be disbanded and congress workers should become social workers to uplift the masses. But no heed was given to such advise, for the congress leaders wanted to enjoy power, for which they had made sacrifice in the past. They wanted to live on the past performances.
G.R. Madan - India of Tomorrow - P: 2.

स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद की घटनाओं ने राजनीति के क्षेत्र में व्यक्तिपूजा को प्रतिष्ठित किया, जिसका बहुत ही बुरा असर प्रजातंत्र के क्षेत्र पर पडने लगा । नेहरूजी की प्रतिष्ठा इस तरह की गयी कि देश के हितों की रक्षा की अपेक्षा उनके वैयक्तिक अधिकारों की सुरक्षा अधिक महत्वपूर्ण मानी गयी । इस प्रकार "व्यक्ति के प्रति स्वामि-भक्ति का भाव राष्ट्र हित का हनन करता गया । यह धीरे-धीरे प्रजातंत्र को बनाये रखनेवाले उच्च नैतिक आर्जव का अपचयन करता गया ।" नेहरूजी के निकट के लोग ही अपने वैयक्तिक स्वार्थों की पूर्ति केलिए सत्ता का दुरुपयोग करने लगे ।

स्वतंत्र्योत्तर शासन-प्रणाली के आधार ही एक प्रकार से सशक्त नहीं बन पाये थे । अंग्रेज़ों के द्वारा बनाये हुए गुलामी पर आधारित शासन यंत्र का परिष्कार नहीं किया गया । इसलिए आज़ाद देश की आकांक्षाओं की पूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने में यह शासन-यंत्र असफल रहा । परिणाम यह हुआ कि विकास के कार्यक्रम फाइलों तक सीमित रह गये । उनके कार्यान्वयन में कोई सफल प्रयास नहीं हुआ । "जमींदार मध्यवर्तियों को हटाने का जो बेमन प्रयास पचास के प्रारंभ में हुआ था, उसे छोड़कर किसी स्वार्थ, विशेषकर शोषक स्वार्थ के उन्मूलनार्थ कोई कदम नहीं

1.

The concept of personal loyalty cut across the interest of nation. It gradually eroded the very essence of high moral rectitude which alone strengthen and sustain democracy
V.K. Murthi - In the larger personal interest P:28.

उठाया गया ।[1]" बडे-बडे जमींदार बीबी, बच्चों और बन्धुओं के नाम ज़मीन लिखवाकर भूमिसुधार और जमींदारी उन्मूलन से बच गये । "छोटे किसानों की भूमि संबन्धी अनेक नयी समस्याओं का जन्म हुआ । जमींदारों का स्थान बडे किसान ने लिया[2] ।" गरीब किसानों के शोषण का एक और विकृत रूप समाज में उभरकर आने लगा । इसके पीछे एक ओर भ्रष्ट वितरण की नीति काम कर रही थी, दूसरी ओर बडे किसानों द्वारा नियुक्त पुलिस की दण्डनीति । इसके साथ ही टूटे जमींदार देशसेवक के मुखौटे पहनकर फिर सामने आ गये । वे विधायक, पंचायत के मुखिया, स्कूल और कॉलिज के प्रबन्धक बने और नये सिरे से शोषण में लग गये । इस प्रकार ग्रामीण लोगों की ज़िन्दगी में सुधार लाने का प्रयास अर्थ खो बैठा ।

राज्य पुन:गठन आयोग की सिफारिश के अनुसार राज्यों का पुन:गठन हुआ । इसका परिणाम यह हुआ कि लोग अपनी भाषा के प्रति जागरूक हो गये और उनके मन में प्रांतीय भावना का उदय हुआ । इससे राष्ट्रवादी दृष्टि लुप्त हो गयी । बदले, उसके स्थान पर प्रांतीयता और भाषाई कट्टरपन पर आधारित प्रादेशिक मनोवृत्ति जन्म ले गयी । "इसलिए जब राष्ट्रभाषा आयोग की सिफारिशें प्रकाशित की गयीं, लोगों ने सम्मिश्र प्रतिक्रियाएँ

---

1. Except some half hearted attempts to remove fudel intermediaries, in the early fifties, there has been no scheme to weed out may interests, particularly the parasitic . . interests.
J.D. Sethi - India in Crisis. P: 22

2. डॉ॰ कीर्ती केसर - समकालीन कहानी के विविध संदर्भ, पृ॰37

व्यक्त की । जबकि हिन्दी भाषी राज्यों ने उसका स्वागत किया, अहिन्दी भाषियों ने काफी विरोध प्रकट किया ।[1] तमिलनाडु में हिन्दी-विरुद्ध आन्दोलन हुआ । कुछ और राज्यों में भाषाई अल्पसंख्यकों पर आक्रमण हुआ । इस भाषा एवं प्रांतीयता के मोह ने लोगों के मन में एक अत्यंत खतरनाक दृष्टिकोण को पैदा किया जिसके परिणामस्वरूप "धरती की संतान" या "सन ऑफ दि सॉयल" जैसे भ्रामक संकल्पना का जन्म होने लगा । सरकारी और गैर-सरकारी सेवाओं में प्रांतीय भाषियों की नियुक्ति इसकी मांग है । महाराष्ट्र के शिव सेना जैसे कट्टरवादी प्रांतीय संगठन ने इससे शक्ति आर्जित करके बंबई जैसे शहरों में महाराष्ट्रियों को छोड़कर अन्य प्रांत के लोगों को तंग करने का बीडा उठाया था ।

देश की अखण्डता को आहत करने में प्रांतीयता, भाषाई कट्टरपन, धर्ती की संतान की मांग आदि तत्व एक प्रकार की विघटनात्मक भूमिका अदा करने लगी । अहिन्दी भाषी राज्यों में हिन्दी की पढाई और प्रचारार्थ कदम ईमानदारी से नहीं उठाये गये । इस प्रकार जहाँ एक ओर संबन्ध भाषा के माध्यम से देश की एकता को बनाये रखने की कोशिश की जाने लगी, वहाँ उसका विरोध जोरों से होने लगा । हिन्दी की भाषाई प्रभुता को स्वीकारने में दक्षिण के राज्य विरोध प्रकट करते रहे ।

---

1. When the recommendations of the official language commission were made public, they evoked mixed reaction. While Hindi speaking states welcomed them, the Non - Hindi speaking people expressed considerable opposition.

D.C. Gupta - Indian Government and Politics - P:311.

परिणामस्वरूप अंग्रेज़ी को ही दफ्तरों में प्रतिष्ठा का स्थान मिलता रहा । अंग्रेज़ी के प्रति दिखाया गया मोह हमारी एकता पर हावी होनेवाले विघटनवाद का परिचय देता है । भाषाई समस्या का समाधान ढूँढने में राजनैतिक दल असफल रहे । कारण यह था कि उनमें से बहुत सारे दल इस समस्या को जीवन्त बनाये रखना चाहते थे । समय होने पर इस समस्या को भड़काकर मतदान के अधिकारों को अपने हित में कर लेना उनका लक्ष्य था । इस तरह भाषा, प्रांत, जाति, धर्म और क्षेत्र के आधार पर विघटन की नीति का सूत्रपात परोक्ष रूप से होता गया ।

स्वतंत्र भारत में बिना बिलम्ब के जातीयता की भावना अपनी जड़ें जमाने लगी । सामाजिक जीवन में इसका प्रभाव इतना बढ गया है कि अब हमारे क्रिया कलापों का आधार ही जाति मानी जाती है । इसका परिणाम यह हुआ कि लोग जातियों के आधार पर संगठित होने लगे, जो आगे चलकर देश की अखण्डता केलिए हानिकारक सिद्ध हुआ । इस प्रकार छिद्र-शक्तियों का प्रभाव बढता गया और केन्द्रीय सरकार ने इन विपत्तियों की गहराई को समझ लिया तो, 1961 में लोकसभा में इन छिद्र शक्तियों को दबाने केलिए दो बिल प्रस्तुत किये । इसके अलावा राष्ट्रीय अखण्डता सम्मेलन आयोजित किया गया । "सम्मेलन ने इस सत्य की ओर संकेत किया कि राजनेताओं और राजनैतिक दलों ने अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु साम्प्रदायिकता क्षेत्रवाद और भाषावाद को भड़काने में विशेष भूमिका अदा की है । इसलिए सम्मेलन ने उनकेलिए एक व्यवहार-संहिता तैयार की ।" लेकिन राजनैतिक दलों ने उक्त

---

1. The conference took note of the fact that the politicians and political parties played a considerable role in fomenting communalism, regionalism and linguism to serve their own ends, and therefore, it evolved a code of conduct for them. D.c. Gupta - Indian Government and Politics - P:325.

व्यवहार संहिता का पालन नहीं किया । केन्द्रीय या राज्य सरकारों ने समिति की सिफारिशों को लागू करने का प्रयास नहीं किया । इसका भी कारण इन राजनैतिक दलों की स्वार्थलोलुपता ही है । ये समस्याएँ हल करने की नहीं, उससे लाभ उठाने की सोचते हैं ।

राजनीतिज्ञों और पूंजीपतियों के समान जनता और प्रजातंत्र व्यवस्था के शोषण में लगे एक और वर्ग है सरकारी अफ़सर । सरकार द्वारा इनकी नियुक्ति जनता की सेवा केलिए होती है । "लेकिन इस वर्ग ने स्वार्थ की लडाई के रूप में एक नया रूप धारण कर लिया हूँ । नौकरशाही अफसरशाही बन गयी, जिसने राजनैतिक आकांक्षाओं केलिए भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद, साप्रदायिकता की नई रूढियों को जन्म दिया[1]।" और राष्ट्रीय विकास के कार्यक्रम इनके हाथों व्यक्तिगत स्वार्थ के शिकार हो गये । प्रत्येक सरकारी संस्था घटिया राजनीति का अखाडा बन गया । "जवहरलाल नेहरू ने जिस संकीर्ण समाजवादी व्यवस्था की स्थापना की थी, नेता और बाबू लोगों ने अपने ग्राहकों, ठेकेदारों, व्यापारियों, व्यवसायियों और बडे किसानों केलिए उसका दुरुपयोग किया[2]।"

---

1. डॉ. कीर्ती केसर - समकालीन कहानी के विविध संदर्भ, पृ.56

2. The Netas and Babus manipulated the complicated socialist control set up by Jawaharlal Nehru to their clients, contractors, traders, businessmen and large farmers.
Mark Tully - From Raj to Rajiv - P: 46

स्वाधीन भारत के प्रथम आम चुनाव में कांग्रेस को भारी सफलता मिली । तत्कालीन स्थितियाँ ऐसी थीं कि कांग्रेस के नाम पर किसी झाड़ू को भी चुनाव में खड़ा कर दें, तो वह भी जीतकर आयेगी । इस अनुकूल स्थिति से लाभ उठाकर बेईमान और चरित्रहीन आदमी राजनीति में प्रवेश पाये और सत्ता की कुर्सियाँ हथियाने लगे । यहाँ से चुनाव में क्रय विक्रय का धंधा शुरू हो गया था । बड़े-बड़े राजनेता चुनाव में सफलता प्राप्त करने केलिए धर्मनिरपेक्षता एवं राष्ट्रीय एकता की दुहाई देते रहे थे और स्वार्थवश असामाजिक तत्वों को प्रोत्साहन देते रहे । इन हलचलों के बीच लोग असमंजस में पड गये । और "वोट बिक रहा था एक ओर सुन्दर सपनों के वादों पर, दूसरी ओर नकद रूपयों पर, शराब पर और न जाने किस किस पर । उपजातियों के चौधरी, संप्रदायों के नेता, मुल्ले-महन्त सभी अपना-अपना पार्ट अदा कर रहे थे । टैक्सियाँ, लौड-स्पीकर, हैंडबिल - इन सब पर खर्च ही खर्च । और नारे लगाते हुए जुलूस, जिन्हें जुटाने में पैसा खर्च करने पड़ते थे ।"[1] इसका नतीजा यह हुआ कि पैसे केलिए राजनीतिज्ञ पूँजीपतियों, उद्योगपतियों और कालेबाजारियों की शरण में आ गये । वे तो पहले ही सहायता करने केलिए तैयार हो खड़े थे । क्योंकि यह भी धंधा है, क्रय-विक्रय है । चंदे के रूप में वे जितने देते थे, उसे दुगना लाभ पैदा करने की पूँजी ही मानते थे । इस प्रकार राजनीतिज्ञ पैसा लेकर उनके हाथों बिक गये और धीरे-धीरे देश की सारी योजनाएँ पूँजीपतियों के अनुकूल बनायी जाने लगीं ।

---

1. डॉ. बैजनाथ प्रसाद शुक्ल - भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना, पृ.226

राजनेता और पूंजीपतियों के बीच की साँठ-गाँठ ने काले बाज़ार को बढावा दिया । "पंडित नेहरू ने कहा था कि आज़ाद हिन्दुस्तान में कालाबाज़ारी करनेवाले को निकट के बिजली के खम्भे पर लटकाकर मार दिया जायेगा । पर व्यवहार में 1947 से लेकर 1964 तक, जब तक पंडित नेहरू आज़ाद हिन्दुस्तान के प्रधानमंत्री रहे हैं, और इस काल में हिन्दुस्तान का सारा बाज़ार कालाबाज़ारी करनेवालों से भर गया था, कहीं एक भी कालाबाज़ारी उस तरह पकडा नहीं गया, वैसी सजा देने की बात तो जबानी बातें हैं, जबानी राजनीति की ।" कालेबाज़ारियों से राजनेताओं की समझौतावादी नीति ने इस विपत्ति को बढ़ावा दिया और आगे चलकर यह नीति समाज की आर्थिक स्थिति केलिए खतरनाक सिद्ध हुई ।

राजनेताओं में व्याप्त सत्तालोलुपता, विलासिता और अर्थलिप्सा ने धीरे धीरे शासन व्यवस्था को भ्रष्ट किया । पचासों के उत्तरार्द्ध तक पहुंचते पहुंचते शासन में व्याप्त भ्रष्टाचार की चर्चा खुलेआम होने लगी । और इसपर जाँच-पड़ताल केलिए आयोग नियुक्त करने को सरकार बाध्य हो गयी । लेकिन खेद की बात है कि वैधिक जांच आयोग द्वारा स्पष्ट रूप से साबित होने के बाद भी नेहरूजी अपने निकट के आदमियों की गलतियों को स्वीकार करने केलिए तैयार नहीं हुए थे । "उनके प्रति जो भी स्वामिभक्त रहे, उन सबको उन्होंने संरक्षण की छत्र-छाया बढ़ा दी, उन्हें चारों तरफ के आक्रमण से बचा लिया[2] ।" भ्रष्टाचार दूर करने केलिए नियुक्त संतानम कमेटी

---

1. डॉ.लक्ष्मीनारायणलाल - निर्मूल वृक्ष का फल, पृ.14

2. He extended his protective umbrella to all those to remained personally loyal to him, shielded them from attack from all quarters.
V.K. Murthi - In the larger personal interest - P:45

ने विविध क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार की ओर इशारा किया था और उन्हें दूर करने के उपायों की सूचना भी दी थी । लेकिन खेद की बात है कि "संतानम कमेटी द्वारा सिफारिश की गयी कुछ कार्य-प्रणाली स्वीकार की गयी, जबकि सार्वजनिक कार्यकर्ताओं से संबद्ध मुख्य सिफारिशें अस्वीकार की गयी ।"[1] स्वीकृत सिफारिशों के कार्यान्वयन में भी कोई ध्यान नहीं दिया गया और समस्याएं ज्यों की त्यों रह गयीं ।

पहले आम चुनाव के समय विपक्षी दलों का प्रभाव नहीं के बराबर था, यद्यपि स्वतंत्रता के पहले ही शिक्षित युवकों का दिल साम्यवाद की ओर आकृष्ट हो गया था और भारत में कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हो गयी थी । पहले आम चुनाव के बाद पार्टियों की संख्या बढ़ने लगी । लेकिन स्वतंत्रता-संग्राम के संदर्भ में किये गये त्याग और बलिदान के कारण भारत की जनता के मन में कांग्रेस के प्रति आभार की भावना थी । इसलिए प्रजातंत्र-शासन की इस व्यवस्था में भी स्वाधीन भारत में चुनाव शुरू से ही सिद्धांतों पर आधारित न होकर व्यक्तियों पर आधारित हो गया ।

भारतीय प्रजातंत्र के इतिहास में एक और अप्रत्याशित घटना हुई । प्रजातंत्र के सिद्धांतों के अनुसार चुनाव के द्वारा जनता ने भारत के इतिहास में पहली बार कम्युनिस्ट पार्टी को केरल में

---

1. While a few procedures recommended by Santhanam committee are accepted, the very important recommendations of the committee regard to public men have not been accepted.

   Surendranath Divedi - Administration, Politics and Development in India (Edited by: C.N.Bhalrao) P:229.

सत्ता में प्रतिष्ठित किया । खेद की बात है कि कांग्रेस के नेता यह सह नहीं पाये थे । और कम्युनिस्ट पार्टी को सत्ता से हटाकर नेहरूजी ने प्रजातंत्र प्रणाली पर करारी चोट पहुँचायी । राजनैतिक स्वार्थपूर्तिकेलिए राजपाल के कार्यालय का दुरुपयोग यहीं से शुरू हुआ था ।

चौथे आम चुनाव के बाद स्थितियों में परिवर्तन आ गया । सात राज्यों में कांग्रेस को सफलता नहीं मिली । कुछ विपक्षी दलों ने कहीं-कहीं दस से ज़्यादा पार्टियों को मिलाकर सरकार बना ली । इनके बीच सिद्धांतों की एकता नहीं थी । सत्ता और पद के मोह ने इन्हें मिलाया था । इसलिए दल-बदल की राजनीति यहाँ से शुरू हो गयी थी । सत्ता और पद मिलने की संभावना धुंधली पड़ने पर पार्टी एवं व्यक्ति गुट बदलने लगे । इस प्रकार "मार्च 1967 और 1972 के बीच की अवधि में विभिन्न राज्यों की सरकार (बिहार, गुजरात, पंजाब, मैसूर, मणिपुर, त्रिपुरा एवं पश्चिम बंगाल) दो दर्जन बार से ज्यादा सत्ता से गिर गयीं और लगभग पन्द्रह बार राष्ट्रपति शासन की व्यवस्था की गयी ।[1]" यह तो राजनीति के क्षेत्र में दल बदल की व्याप्ति को स्पष्ट करने केलिए पर्याप्त है । स्वाधीन भारत के इतिहास में हुई अन्य उल्लेखनीय घटनाएं चीन और पाकिस्तान के साथ युद्ध, आपातकालीन स्थिति और जनता पार्टी के सत्ता में आने की रहीं ।

---

1. During march 1967 to march 1972 governments in different states (Bihar, Gujrat, Panjab, Mysore, Manipur, Tripura and West Bengal) fell from power more than two dozen times. President rule was introduced about fifteen times.

D.C. Gupta - Indian Government and Politics - P:132.

स्वाधीनता के इन तीन दशकों में सामाजिक जीवन और उसकी मान्यताओं में बडा भारी परिवर्तन आया । जिस स्वप्न को लेकर लोग स्वतंत्रता-संग्राम में कूद पडे थे उसे टूटते देखकर राजनीतिज्ञों और दलों से लोगों की आस्था उठ गयी । "इसी समय राष्ट्रीय क्षितिज पर अंधेरे की रेखाएँ खिंचने लगती है । संविधान ने जिस समाज रचना का सपना सामने रखा था, वह मिटते दिखाई देता है, क्योंकि वे नेता, जो भविष्य निर्माण केलिए उपस्थित थे, भ्रष्ट हो गये थे।[1] मतलब है कि "राजनीति दलीय और व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति का साधन बन गयी और इस प्रकार समाज में राजनेताओं के एक विशिष्ट वर्ग का प्रादुर्भाव हुआ । इस वर्ग के व्यक्तियों में आडम्बर का बोलबाला है - कथनी और करनी में पूर्ण विरोध है[2]।" इस प्रकार परिस्थितियों और मान्यताओं में हुए परिवर्तन नये मूल्यों के विकास के कारण बन गये ।

मूल्य परिवर्तन पर विचार करने से पहले यह देखना है कि मूल्य से क्या तात्पर्य होता है । "अस्थायी रूप से मूल्य की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है कि वह एक समूह का वांछनीय विशिष्ट संकल्पना है, जो अपेक्षापूर्ति हेतु उपलब्ध साधनों और तरीकों के बीच में से चुनाव पर प्रभाव डालती है । जबकि मूल्य संकल्पना है, वे कर्म के आधार भी बन जाते हैं[3]।" प्रत्येक समाज में व्यवहार से

---

1. कमलेश्वर - नयी कहानी की भूमिका, पृ.13
2. डॉ.राकेशयाम कौशिक - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास का शिल्प विकास, पृ.5।
3. A value may be tentatively defined as a conception characteristic of a group which is desirable and which influences a selection from among the available modes and means to satisfy the needs. While values are concepts they constitute the base of action.

   B. Kuppuswamy - Social changes in India - P:67

संबन्धित कतिपय मान्यताएँ होती हैं । यही मूल्य के आधार है । "मूल्य समाज की वह आधारशिला है जिसपर सभ्यता और संस्कृति का भव्य प्रासाद निर्मित होता है । समाज के निर्माण में मूल्यों ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है[1]।" "मानव जीवन के संदर्भ में "मूल्य" मनुष्य की वह सांस्कृतिक पूंजी है जिसके आधार पर समाज विशेष का स्तर जाना जाता है । वास्तव में मूल्य समाज के जीवन में सामाजिक, धार्मिक, और नैतिक पृष्ठभूमि लिये एक वैचारिक इकाई जिसका विकास व्यक्ति से समाज की ओर होता है, जिसके आधार पर हम औचित्य-अनौचित्य का निर्जय करते हैं और जिसका अनुसरण करते हुए समाज का जीवन व्यवस्थित रूप से चलता है और हम सुख का अनुभव करते है[2]।"

मूल्य बनते और मिटते आये हैं । "सामाजिक मूल्य न तो शाश्वत होते हैं और न ही निरपेक्ष । सामाजिक मूल्यों में बराबर परिवर्तन होता रहता है । यह परिवर्तन देश, काल, वातावरण, आर्थिक स्थिति आदि के आधार पर होते हैं[3]।" "मनुष्य के आन्तरिक बेचैनी से पूर्ण जीवन के स्तर पर कोई भी मूल्य प्रश्नचिह्नातीत नहीं होता[4]।" स्थितियों में परिवर्तन होने पर मान्यताएँ बदल जाती हैं । मान्यताओं के बदलने पर उसपर आधारित मूल्य अर्थ खो बैठते हैं । नयी स्थितियों के अनुसार नये मूल्यों का विकास होता है । स्वातंत्र्योत्तर काल में यही स्थिति हुई थी,

---

1. हेमेन्द्रकुमार पानोरी - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्यसंक्रमण, पृ.2
2. डॉ. लक्ष्मीसागर वर्ष्णेय - द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ.3।
3. डॉ. हरदयाल - साहित्य और सामाजिक मूल्य, पृ.18
4. वही, पृ.23

क्योंकि वह विविध दृष्टियों से संक्रमण का काल रहा । किसी भी देश के इतिहास की परीक्षा करते समय एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था की ओर बढ़ते उस देश की सामाजिक स्थितियों में और जीवन दृष्टि में एक तरह का परिवर्तन देखना स्वाभाविक है । संक्रमण काल की इन स्थितियों की जांच करते समय विदित होता है कि व्यक्ति और समाज की दृष्टि पूरी तरह से प्रभावित होती रहती थी । पुरानी मान्यताओं को तिलांजली देते हुए परिस्थिति जन्य नई आवश्यकताओं की पूर्ति केलिए नई मान्यताओं को स्वीकार करने केलिए समाज विवश हो जाता है । नई मान्यताएं उपयोगिता पर आधारित होकर अपने सैद्धांतिक पक्ष खो बैठती हैं । सिद्धांतों से कट जाने पर इसे साधारणत: "च्युत मूल्य" का नाम दिया जाता है और जो समाज इन च्युत मूल्यों को उपयोगितावाद के आधार पर स्वीकारता है, उस समाज को मूल्यच्युति का शिकार समाज माना जाता है ।

परन्तु मूल्यच्युति परंपरागत दृष्टि से च्युति होने पर भी नई दृष्टि से एक उभरती हुई मान्यता है । इसकारण संक्रमण कालीन समाज में उभरनेवाली नयी मान्यताएँ "मूल्यच्युति" न होकर नये मूल्य बन जाते हैं । स्वाधीनता-प्राप्ति के उपरांत इस देश में अनेक नये मूल्यों का विकास हुआ है, जो च्युति को विधिवत् स्वीकार लेते हैं और जनजीवन के अस्तित्व केलिए इनको अनिवार्य समझने लगते हैं । थोडा-सा झूठ बोलना, थोडी-सी बेईमानी करना, आवश्यकता पडने पर घूस लेना और देना, काम चलाने केलिए किसी भी प्रकार के समझौते करना आदि कुछ ऐसी मान्यताएँ हैं, जो नये

मूल्यों के स्तर पर उभर आयी हैं । स्वातंत्र्योत्तर कालीन समाज में कुछ मान्यताओं को विधिवत् स्वीकृति मिल गयी है । इसी परिप्रेक्ष्य में राजनीति, समाजनीति और जीवन दृष्टि पनपती हैं और इसकी छाया में नये मूल्यों की परिकल्पना की जाती है ।

परंपरागत मूल्य और नये मूल्यों का संघर्ष

समय की गति के साथ सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में होनेवाले परिवर्तन स्वीकृत धारणा एवं मान्यताओं पर प्रश्नचिह्न लगा देते हैं और नयी मान्यताएँ स्वयं उभरने लगती है । इस तरह नयी मान्यताएँ स्वीकृत होकर मूल्य के रूप में प्रतिष्ठा पाती है । लेकिन परिवर्तन की यह प्रक्रिया झट से नहीं होती कि पुराने मूल्य एकदम नष्ट हो पायें । इसका मुख्य कारण यह है कि परंपरागत मूल्यों की जडें जनमानस में इतनी गहरी होती हैं कि उसे लोग एकदम उखाडकर फेंक नहीं पाते । इसका एक और कारण यह है कि पुरानी पीढ़ी उतनी शिक्षित नहीं है और रूढिगत मूल्यों से उनकी आस्था उतनी जल्दी हिलनेवाली नहीं है । जबकि शिक्षित नई पीढ़ी परिवर्तनों को आसानी से अपना पाती है और स्थितियों के अनुसार अपने को बदल लेती है। पुरानी मान्यताओं को स्वीकार नहीं पाती । फलस्वरूप ऐसी स्थिति हो जाती है कि पुराने मूल्य पूरी तरह से तिरस्कृत नहीं होते और नए मूल्य पूरी तरह स्वीकृत भी नहीं होते । इस कारण कभी-कभी नये मूल्यों का पुराने मूल्यों से टकराव भी होता है । इदारणार्थ भारतीय समाज के संदर्भ में धर्मनिरपेक्षता, छुआछूत तथा क्षेत्रीयता और वर्गनिषेध आधुनिकता की मांगें हैं किन्तु जड परंपराओं से ग्रस्त समाज इन सब मूल्यों को सहज रूप से स्वीकार

करने को तैयार नहीं।[1]"

एक रोचक बात यह है कि ऐसे भी कुछ वर्ग मिलते हैं जो एक ओर से पूरी तरह आधुनिक दिखाई देते हैं तो दूसरी ओर पूर्णत: परंपरागत। "प्रेम, विवाह और नैतिकता के नूतन मूल्यों को स्वीकारकर भी जाति पाति, छुआछूत, वर्गविद्वेष आदि के पुरातन मूल्य इस वर्ग का भी पीछा नहीं छोड़ता। इनकी संपूर्ण जीवन-पद्धति इस पुरातनता और आधुनिकता के द्वन्द्व में संलिप्त रहता है[2]।" इसके अलावा संयुक्त परिवार के टूटने और नारी शिक्षा के फलस्वरूप पारिवारिक संबन्धों में भी मूल्यों का संघर्ष दिखाई पड़ता है। "संयुक्त परिवार के टूटने से व्यक्ति अनेक स्तरों पर अलग हो गया है। विश्वसमाज का स्वप्न देखनेवाला मानव आज इन लघुपरिवारों में भी संतोष और आत्मीयता पाने में असमर्थ है। माता-पिता पुत्र की पदोन्नति से प्रसन्न ही होते हैं। लेकिन बहू-बेटे रिटायर पिता की उपस्थिति घर में सह नहीं पाते।[3]" व्यक्ति स्वातंत्र्य की भावना और व्यक्तिवाद ने मनुष्य की अहंवृत्ति को उत्तेजित कर दिया है। और "आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में मानव की इच्छाएँ, आकांक्षाएँ, अपेक्षाएँ बढने लगी हैं, पर जब व्यक्ति की लक्ष्यपूर्ति में परंपरागत समाज व्यवस्था व परंपरागत मूल्य बाधक बनने लगे तो वह विद्रोही, द्वन्द्वी बन गया और अपनी लक्ष्यपूर्ति केलिए संघर्ष करने लगा। इस नव चिन्तन व नव मूल्यपरिग्रहण की प्रक्रिया में व्यक्ति केलिए समाज की जीर्ण-शीर्ण रूढियों, परंपराओं, नैतिक

---

1. डॉ. पुष्पपाल सिंह - संचेतना (जून 1980), पृ.24
2. वही, पृ.25
3. डॉ. ज्ञानआस्थान - हिन्दी कथा साहित्य - समकालीन संदर्भ, पृ.85

बन्धनों से द्वन्द्व अथवा संघर्ष अनिवार्य बन गया ।"[1]

स्त्री-शिक्षा के प्रचार के साथ-साथ नारी स्वतंत्रता संबन्धी मूल्य में परिवर्तन आ गये । शिक्षित नारी नौकरी ग्रहण करके आर्थिक रूप से स्वतंत्र हो गयी । अब उसे पुरुष के अधीन रहना स्वीकार्य नहीं है । पति को चुनने में भी स्त्री स्वतंत्रता चाहती है । विवाह संबन्ध में समर्पण की भावना नहीं रही और सतीत्व को उतना महत्व नहीं दिया जाता । इसलिए विवाह अब समर्पण न होकर जीवन भर जीने का समझौता है, जिसमें बराबरी के स्तर पर पति-पत्नी जीते हैं । कुछ कारणोंवश उसे तोडा भी जा सकता है[2] ।" आजकल जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में स्त्री, पुरुष के समान आगे आती है । "वह जानती है कि वह पुरुष के स्तर पर है, उसके बराबर है, उसके अधीन नहीं है[3] ।" इसके अलावा पति-पत्नी के बीच तीसरे की उपस्थिति के भी कई उदाहरण मिलते हैं । लेकिन इन स्थितियों से समझौता करना भी आसान नहीं है । क्योंकि पारिवारिक संबंधों से संबद्ध पुराने मूल्यों से लोग अभी पूर्ण रूप से मुक्त नहीं है । इससे संबन्धों के बीच में उत्पन्न तनाव और संबन्ध विघटन की स्थिति मूल्यों के टकराव को सूचित करती है । यह मूल्य-संघर्ष की स्थिति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिलक्षित होती है ।

---

1. मंजुला गुप्ता - हिन्दी उपन्यास - व्यक्ति और समाज का द्वन्द्व, पृ.12
2. डॉ. ज्ञानवती अरोडा - समकालीन कहानी में बदलते पारिवारिक संबन्ध, पृ.101
3. She realises, she is on level with man, his equal and not subordinate.
   Dr. Girija Khanna, Mariamma A Varghese - Indian Women Today - P: 203.

उक्त विवेचन से व्यक्त होता है कि मूल्यों में परिवर्तन होने पर भी समाज पुराने मूल्यों से पूर्ण रूप से मुक्त नहीं होता और नये मूल्यों को पूर्ण रूप से स्वीकार भी नहीं पाता । इसलिए मूल्यों की टकराहट या मूल्यों के बीच संघर्ष की स्थिति बनी रहती है । मूल्यों का यह संघर्ष प्रत्येक संदर्भ में विद्यमान है।

युगचेतना और अनास्था का विकास

प्रत्येक कालखण्ड में सामाजिक जीवन को प्रभावित एवं संचालित करनेवाली विचारधारा युगचेतना को रूप देती है । स्वातंत्र्योत्तर युग में त्याग, सेवा और आत्मसमर्पण जैसे मूल्यों का ह्रास हो गया । भारतीय समाज पाश्चात्य प्रभाव से रंगता जा रहा है । पाश्चात्य आधुनिकता का अर्थ है - यान्त्रिकता, बौद्धिकता और उपयोगितावादी दृष्टि । स्वतंत्र भारत की स्वाधीन चेतना का बोध, समाजवादी समाज की भावना, राष्ट्र निर्माण का स्वप्न तथा नैतिक एवं सांस्कृतिक उत्थान की सारी प्रत्याशाएँ धूमिल होती जा रही है ।[1] स्वाधीनता-प्राप्ति के साथ व्यक्ति चेतना का विकास हुआ । प्रत्येक वर्ग अपने हितों के संरक्षण की चिंता करने लगा । फलत: व्यक्ति, वर्ग एवं राष्ट्र के हितों के बीच संघर्ष की भूमिका तय हो गयी । यह देश की अखण्डता केलिए हानिकारक सिद्ध हुआ । और यहीं से चुनाव की राजनीति में लाठी, जूता और काले धन को प्रश्रय मिलने लगा । जनतंत्र की व्यवस्था असफल, अराजक और दिशाहीन होती गयी । एक बार हाथ में आयी

---

1. हेमेन्द्रकुमार पानोरी - हिन्दी उपन्यास मूल्य संक्रमण, पृ.236

कुर्सी को बनाये रखने केलिए कोई भी घृणित मार्ग अपनाने में राजनीतिज्ञ हिचकते नहीं। इस प्रकार "युगचेतना और युग धर्म घर-घर पहुँचकर जनता को जगा रहे हैं - समय रहने चेतो, भविष्य की बात सोचो, जब तक तुम्हारे हाथों में सत्ता है, अधिकार हैं, आत्मोद्धार कर लो।[1]"

जनता ने देखा कि धन और कुर्सी केलिए नेता अपनी ईमानदारी और अपने आप को ही बेच देते हैं। जनसेवा की राजनीति भ्रष्ट और खोखली हो चुकी है। दुख की बात यह है कि जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है, जहाँ इस घटिया राजनीति का प्रवेश न हुआ हो। ऐसी स्थिति में व्यवस्था से जनता का विश्वास नष्ट होना स्वाभाविक बात है। "स्वातंत्र्योत्तर भारत की त्रासदी ही यह है कि यह समाज राजनेताओं के द्वारा दिखाये गये स्वप्नों और उनके द्वारा दिये गये आश्वासनों की दौड में थक चुका है। अब न तो उसमें इस प्रकार की दौड दौडने की शक्ति रह गयी है न ही ऐसी खोखली दौड का विरोध करने का सामर्थ्य ही।[2]" खोद की एक और बात यह है कि हमारी नई पीढ़ी ने केवल एक मार्ग-भ्रष्ट समाज को ही देखा है। "नयी पीढी एक धोखे का शिकार हुई है। झूठे नारे और वादों के अँधेरे में रखकर उसके साथ विश्वासघात किया गया है[3]।"

---

1. डॉ. पुरुषोत्तम दुबे - व्यक्ति चेतना और स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास, पृ.386
2. डॉ.मोहिनी शर्मा - हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य, पृ.184
3. डॉ.चन्द्रभान रावत,डॉ.रामकुमार खण्डेलवाल - समकालीन लेखन एक वैचारिकी, पृ.72

इसके अलावा दिशाहीन शिक्षा-पद्धति के कारण शिक्षित युवकों के बीच बेरोज़गारी बढ़ती गयी । उन्होंने देखा कि योग्य व्यक्ति को कहीं उचित स्थान नहीं मिल रहा है । इन सब की प्रतिक्रिया के रूप में व्यवस्था के प्रति अनास्था का विकास हुआ जो किसी पूर्वाग्रह का नतीजा न होकर परिस्थितिजन्य है, बढ़ती असामानता, साधनहीनता और सामाजिक न्यायहीनता का प्राकृतिक परिणाम है ।

मूल्यों के प्रति निषेधात्मक दृष्टि और व्यावहारिक नीति का विकास

लोगों ने सोचा था कि आज़ादी मिलने पर शोषण समाप्त होगा और किसान एवं मज़दूरों की स्थिति सुधर जाएगी । लेकिन देखा गया कि शोषण का रूप बदलकर और तीव्र हो गया । देश की संपत्ति कुछ ही लोगों के हाथों में टिककर रह गयी । देश की आर्थिक स्थितियों में सुधार लाने की योजनाओं के बावजूद गरीबों की हालत बुरी होती गयी । शिक्षित नवयुवकों में बेकारी की समस्या जटिल होती गयी । उन्होंने देखा कि नौकरी मिलने केलिए योग्यता ही सबकुछ नहीं है, कुछ और चाहिए । अयोग्य व्यक्तियों को अवैध मार्ग से नौकरी और तरक्की पाते हुए उन्होंने देखा । नई पीढ़ी के सामने न तो कोई आदर्श था न कोई उच्च मूल्य । ऐसी स्थिति में मूल्यों के प्रति निषेधात्मक दृष्टि का विकास एक स्वाभाविक बात है । इस निषेधात्मक दृष्टि ने मूल्य-विघटन को और तीव्र कर दिया है । जब व्यक्ति व्यवस्थिति से अधिक तंग आता है और उसके मन में मूल्यों के प्रति निषेधात्मक दृष्टि का विकास होता है तो वह व्यावहारिक नीति अपनाने केलिए विवश हो जाता है ।

स्वातंत्र्योत्तर भारत में पाश्चात्य भोगवादी विचारधारा का प्रभाव उल्लेखनीय है । इसके कारण व्यक्ति-स्वतंत्रता, अर्थ केन्द्रिता और सत्तालोलुपता बढ़ती जा रही । इसने नई समस्याओं को जन्म दिया है । लेकिन "समस्याओं के साथ ही आदमी के अपने-अपने हैं, आकांक्षाएँ हैं और अच्छे से अच्छे जीने की लालसा है । इसलिए आज की प्रतिद्वन्द्विता के इस युग में आदर्शों और प्राचीन मूल्यों की गुंजाइश ही नहीं रही है । यथार्थ से समझौता कर लेना ही व्यक्ति की नियति बन गयी है ।"[1]

आज व्यावहारिक जीवन में अर्थ का महत्व बढता जा रहा है । समाज में प्रतिष्ठा का आधार भी अर्थ हो गया है । यह चिंता भी पनपती गयी कि अर्थ है तो सबकुछ संभव है, अर्थाभाव में आदमी अपने को पंगु पाता है । इसलिए अधिक से अधिक अर्थोपार्जन केलिए लोग घृणित कार्य करने केलिए तैयार हो गये । इसमें नैतिक-अनैतिक और वैध-अवैध की चिंता न रह गयी । इस चिंता ने भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया । और लोग आदर्श छोड्कर व्यावहारिक होते गये ।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद जन्मी हुई एक पीढी हमारे सामने है जो एक ओर विभाजन के रक्तपात से आहत हुई तो दूसरी ओर मूल्यशोषण से बनी स्थितियों से । यह पीढी नैतिकता और अनैतिकता के बीच कोई अन्तर नहीं देख पाती । निराशा और कुंठा से आक्रांत नयी पीढी रुग्णता का शिकार बनती गयी और उसकी आँखों के सामने निराशा का अन्धकार छा जाने लगा । कर्मण्यता अपनी पराकाष्ठा पर पहुँचकर अकर्मण्यता बन जाती है ।

---

1. डॉ. मोहिनी शर्मा - हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य, पृ.19।

अगर यह सत्य है तो लाख कोशिशों के बावजूद जब नई पीढी अकर्मण्य रह जाने केलिए बाध्य हो गयी, वह अपने अस्तित्व को भूलने केलिए नालायक तरीकों का सहारा लेने लगी ।

शराब, नशाबंदी और नशीली पदार्थों का उपयोग आदि से अपने वर्तमान को भुलाकर निषेध के अन्धकार में छिपाने की कोशिश वे करते रहे । जहाँ एक स्वस्थ परंपरा की प्रतीक्षा थी, वहाँ युवा पीढी का एक वर्ग इसका शिकार बनता गया । दूसरी ओर युवापीढी की क्रियात्मकता आतंकवाद को स्वीकारता हुआ बगावत कर बैठी । अलग अलग राज्यों की स्थापना की माँग और उसके पीछे शहीद होने की अभिलाषा इस निराशा का ही परिणाम है । स्वाधीनता-प्राप्ति के उपरांत उभरती हुई चेतना ने इस तरह युवा पीढी को संतुलित जीवन से वंचित कर दिया । और इस प्रवंचना का परिणाम है आक्रोश, विद्रोह, नशाबंदी, पलायन बालाबाजारी, स्मग्लिंग आदि । नैतिक और अनैतिक के बीच भी कोई अन्तर न देख पाने के कारण स्वर्ग और नरक और उसपर नियंत्रण रखनेवाले ईश्वर की संकल्पना में भी युवा पीढी के मन में धुंधला पड़ने लगा ।

स्थितियों के विवेचन से व्यक्त होता है कि व्यावहारिक नीति का विकास परिस्थितियों के प्रभाव का स्वाभाविक परिणाम है । जब समाज आम तौर पर व्यावहारिक नीति को अपनाता है तब मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध आदमी टिक नहीं पाता और वह व्यावहारिक होने केलिए विवश हो जाता है ।

इस प्रकार व्यावहारिक नीति को प्रश्रय मिलता है । क्योंकि जो समाज के साथ चलता है और समय की गति के अनुसार अपने को बदल पाता है, उसका ही अस्तित्व स्वीकार्य हो जाता है । इसलिए नई पीढ़ी मूर्तिभंजक बन बैठी तो उसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है ।

❦❦❦❦❦❦❦❦❦❦❦

दूसरा अध्याय

साठोत्तरी उपन्यासों की रचनात्मक भूमिका और राजनैतिक चेतना

दूसरा अध्याय

साठोत्तरी उपन्यासों की रचनात्मक भूमिका और राजनैतिक चेतना

साठोत्तरी उपन्यासों की विशेषताएँ और विशेष प्रवृत्तियाँ

साठोत्तरी उपन्यासों पर ध्यान देने पर यह बात स्पष्ट होती है कि इनमें जनजीवन की पहचान अधिक निकट से और गहराई से हुई है । इनमें आदर्शवाद और रोमांटिक भावबोध की प्रवृत्तियाँ दिखायी नहीं देतीं । यथार्थ के प्रति आग्रह और स्थितियों से जूझती ज़िन्दगी की विवशता का चित्र इन उपन्यासों को जीवन्त बनाता है । प्रेमचन्द युगीन आदर्शवाद, यशपाल जैसे उपन्यासकारों में निहित साम्यवादी चेतना, इलाचन्द्र जोशी या जैनेन्द्र की मनोवैज्ञानिक विश्लेषणात्मक प्रवृत्तियाँ और अज्ञेय जैसे उपन्यासकारों की रचनाओं में प्राप्त, लीक से हटकर चलनेवाली व्यक्तिवादी चेतना आदि का ह्रास होता गया ।

"1953-54 के आस-पास उपन्यास की कथागत भंगिमा बदलने लगी । स्वतंत्रता के पहले के उपन्यास नागरिक जीवन से विशेष रूप से जुडे हुए थे, लेकिन स्वतंत्रता के बाद विभिन्न उपेक्षित अंचलों की ओर भी कथाकार की दृष्टि गयी । इस तरह आंचलिक उपन्यासों का श्रीगणेश हुआ । अस्तित्ववादी चिंतन के प्रभावस्वरूप को लेकर भी उघाडने लगा । नगरीकरण, औद्योगीकरण के फलस्वरूप नगरों और महानगरों में पूँजीपतियों द्वारा किये जानेवाला शोषण उपन्यासकारों से अनदेखा नहीं रहा । परिवार, मुहल्ले और गाँव के स्तर पर उभरती हुई संबन्धहीनता और हृदयहीनता भी उपन्यास के कथ्य का अंग बनी है । स्त्री-पुरुषों के संबन्धों में जो आमूल परिवर्तन हुआ उसे तथा सेक्स के प्रति आज की मान्यताओं और दृष्टिकोण को भी देखने में आज का उपन्यास किसी तरह से असमर्थ नहीं है ।[1]" कथ्य और शिल्प की दृष्टि से ये उपन्यास उपरंपरागत रूढियों से मुक्त हैं ।

साठोत्तरी उपन्यासों की प्रवृत्तियों के विश्लेषण से व्यक्त होता है कि मानव जीवन को भौगोलिक खण्डों या अंचलों में बाँटकर अध्ययन करने की प्रवृत्ति, इतिहास-पुराण को समकालीन सही संदर्भ में देखने-समझने का प्रयास, मानवीय ज़िन्दगी को राजनैतिक विडम्बनाओं के बीच पहचानने की कोशिश और महानगरीय घुटन और त्रासदी में दम घुटते, तडपते मानव के तडपन को वाणी देने का प्रयास प्रमुख रहे हैं । इसका मतलब यह नहीं है कि अन्य प्रकार की रचनाएँ नहीं हुई है । पुरानी परंपरा से जो लेखक अपने को मुक्त न कर पाते थे, वे समाजवादी, साम्यवादी एवं मनोविश्लेषणात्मक

---

1. डॉ. प्रेमकुमार समकालीन हिन्दी उपन्यास कथ्य विश्लेषण, पृ.35

उपन्यास लिखते रहे । युगीन रचनाओं की मुख्य प्रवृत्तियों के आधार पर साठोत्तरी उपन्यासों की चार धाराएँ हैं । वे हैं - ग्राम्य चेतना से आंचलिक उपन्यास, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर लिखित ऐतिहासिक उपन्यास, राजनैतिक उपन्यास और नगरबोध से जुडे हुए उपन्यास ।

"स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब देश की एकाग्रता भंग हुई, एकता की अपेक्षा अनेकता की प्रवृत्ति बढ़ी और हर किसी का ध्यान अपने प्रदेश, जाति वर्ग, धर्म और संस्कृति पर आ टिका, तब हिन्दी साहित्य में एक नई प्रवृत्ति-आंचलिक उपन्यास का उदय हुआ, जिसका चरमोद्देश्य था - किसी विशेष अंचल अथवा प्रदेश को लेकर उसके जीवन का यथार्थ और वैज्ञानिक चित्र प्रस्तुत करना ।"[1] इसमें अंचल-विशेष की आशा-आकांक्षाएं, विशेषताएँ ईमानदारी से चित्रित होती है । "उस अंचल-विशेष के प्रति आत्मीयता आंचलिक उपन्यासकार केलिए आखिरी शर्त है ।"[2] अंचल तक सीमित रहकर लोगों के जीवन को गहराई के साथ चित्रित करने का प्रयास आंचलिक उपन्यासों में दिखाई देता है । "उससे उस प्रदेश-विशेष की विशिष्टताओं से युक्त जनजीवन का इस भाँति चित्रण किया जाता है कि जिससे पाठक का ध्यान उन अनूठी एवं निराली बातों की ओर बरबस चला जाता है, जो केवल उसी प्रदेश-विशेष में पायी जाती हैं तथा जिनके कारण हमें उस प्रदेश विशेष की दूसरे सभी प्रदेशों से भिन्नता एवं विलक्षणता का बोध भी हो जाता है ।"[3] उसमें अंचल विशेष की बोलचाल की भाषा का प्रयोग होता है । "सर्जनात्मक तत्व की

---

1. डॉ. रणवीर रांग्रा - समकालीन हिन्दी उपन्यास की भूमिका, पृ.13
2. डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय - हिन्दी के आंचलिक उपन्यास, पृ.17
3. डॉ. इन्दिरा जोशी - हिन्दी में आंचलिक उपन्यास उद्भव और विकास, पृ.17

प्रधानता की दृष्टि से आंचलिकता एक विशेष प्रकार के औपन्यासिक दृष्टिकोण के रूप में स्वीकार की गयी[1]।" इन उपन्यासों में अंचल के स्थूल रूप और सूक्ष्मबोध दिखाई देते हैं। फणीश्वरनाथ रेणु, शिवप्रसाद सिंह, राही मासूम रजा, नागार्जुन आदि कुछ ऐसे उपन्यासकार हैं जिन्होंने अंचलों को विशिष्ट दृष्टि से परखने की कोशिश की है।

इतिहास को समकालीन सही संदर्भ में परखने का प्रयास भी प्रस्तुत कालखण्ड में हुआ है। इसकी सहज परिणति है "ऐतिहासिक उपन्यास"। "ऐतिहासिक उपन्यास का लक्ष्य भी इतिहास के लक्ष्य के ही समान अतीत के जीवन के शाश्वत सत्यों का उद्घाटन करना है तथा विविध मानवीय संवेदनाओं का विस्तार कर भावनाओं एवं विचारों के बीच सामंजस्य स्थापित करना है। किन्तु इतिहास के समानांतर लक्ष्य रखते हुए भी ऐतिहासिक उपन्यास इतिहास नहीं है[2]।" ऐतिहासिक उपन्यासकारों का लक्ष्य घटनाओं का वर्णन न होकर उसकी पुनर्स्सर्जना है। ये उपन्यास इतिहास के माध्यम से समकालीन समस्याओं पर प्रकाश डालते हैं। इसलिए "आज तो ऐतिहासिक उपन्यास केवल अतीत से संबद्ध नहीं होता, उनमें आधुनिक युगबोध विद्यमान रहता है[3]।"
डॉ॰ हज़ारीप्रसाद द्विवेदी जी से लिखित "वाणभट्ट की आत्मकथा" और "चारुचन्द्र लेखा" इस परंपरा के उल्लेखनीय उपन्यास हैं। लेकिन वर्तमान की जकट साहित्यकारों पर मज़बूत होती गयी कि अतीत में विचरनेवाले ऐतिहासिक उपन्यास के प्रति उत्साह कम होता गया।

---

1. डॉ॰नगीना जैन - आंचलिकता औरहिन्दी उपन्यास,पृ॰2-3
2. डॉ॰गोविन्द जी - ऐतिहासिक उपन्यास प्रकृति एवं स्वरूप,पृ॰128
3. डॉ॰विजयश्री बरहाटे - हिन्दी उपन्यास सातवाँ दशक,पृ॰45

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद स्वतंत्र रूप से विकसित होनेवाली एक प्रमुख शाखा के रूप में राजनैतिक उपन्यासों का मूल्यांकन किया जा सकता है । राजनैतिक उपन्यासों में समसामयिक युग की राजनैतिक समस्याओं, आन्दोलनों और विचारधाराओं की अभिव्यक्ति होती है । साधारणतया उन उपन्यासों को जिनमें कथावस्तु का आधार राजनैतिक आयामों से घिरा होता है, राजनैतिक उपन्यास का नाम दिया जाता है । "राजनैतिक उपन्यास अपने अतिव्याप्त रूप में युगचेतना के इसी रूप को ग्रहणकर सामाजिक परिपार्श्व में मनुष्य के संघर्षशील व्यक्तित्व को प्रस्तुतकर उसकी व्याख्या करता है ।[1]" राजनैतिक उपन्यासों का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है । इसके अन्दर मानव और समाज को प्रभावित करनेवाली सभी युगीन समस्याओं की चर्चा राजनीतिक आधार पर होती है । ऐसे उपन्यास कभी-कभी किसी राजनैतिक दल या पार्टी के आदर्शों एवं लक्ष्यों के प्रचार में लग जाते हैं । लेकिन साठोत्तर कालीन राजनैतिक उपन्यासों में मतवाद का आग्रह प्रबल नहीं है । मुख्य रूप से इनमें राजनीति एक उदार भूमिका अदा करती हुई संवेदना के विविध पक्षों को संजोती हुई आगे बढ़ जाती है ।

साठोत्तरी उपन्यासों के विविध पहलुओं के विवेचन से विदित होता हैकि नगरबोध एक प्रमुख आयाम है । घर में पराया और भीड में अकेला एवं निस्सहाय महसूस होना नगरबोध की पहचान है । यह बोध नगरीकरण की प्रक्रिया से जुडा हुआ है । प्रस्तुत उपन्यासों में परिवेश के अन्तर्विरोधों के शिकार बने मनुष्य के जीवन की अभिव्यक्ति मिलती है ।

---

1. वृजभूषण सिंहल आदर्श - हिन्दी राजनैतिक उपन्यासों का अनुशीलन, पृ.36-37

साठोत्तरी उपन्यासों पर विचार करते समय अस्तित्ववादी चेतना पर आधारित रचना को भी शामिल करने का प्रयास दिखाई पडता है । निर्मल वर्मा का "वे दिन", अज्ञेय का "अपने अपने अजनबी" अस्तित्ववादी चेतना को उभारने के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं । लेकिन सार्त्रे के ये दर्शन भारतीय परिवेश के अनुकूल नहीं लगता और इस कारण एक प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में इसका स्वांशीकरण हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में नहीं हो पाया ।

उपर्युक्त विवेचन से पता चलता है कि कथ्य और दृष्टि में ये पूर्ववर्ती उपन्यासों से भिन्न है और प्रवृत्तिगत विशेषताओं के कारण अपना एक अलग अलग अस्तित्व रखते हैं । यथार्थ के प्रति आग्रह, अभिव्यक्ति की ईमानदारी और तटस्थ दृष्टि इनकी उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं ।

उपन्यासकार और सामाजिक चेतना

प्रत्येक कालखण्ड में समाज में प्रचलित मान्यताओं, लोगों की आशा-आकांक्षाओं और स्थितियों का चित्र तत्कालीन साहित्य में मिल जाता है,जो साहित्यकार की सामाजिक चेतना की ओर संकेत करता है । "सामान्यत: सामाजिक चेतना से हम किसी देश के काल-विशेष से संबन्धित मानव समाज में अभिव्यक्त परिवर्तनशील जाग्रति समझते हैं[1]।" यह जाग्रति साहित्यकार की

---

1. डॉ. अमरसिंह जगराम लोधा - हिन्दी उपन्यास में सामाजिक चेतना, पृ.1

प्रतिबद्धता से संबद्ध है । क्योंकि, "साहित्य बहुधा अपने देश-काल से प्रभावित होता है, जब कोई लहर देश में दौडती है, साहित्यकार केलिए उससे अविचलित रहना असंभव हो जाता है और उसकी विशाल आत्मा अपने देश-बन्धुओं के कष्टों से विकल हो उठती है[1]।" और यह दु:ख व्यापक रूप लेकर रचनाओं में अभिव्यक्त होता है । दूसरे शब्दों में कहें तो "जागरूक साहित्यकार अपने परिवेश की सामान्य-असामान्य स्थिति, तिक्तता-मधुरता, सहजता-तनाव आदि को महसूस करता है और भोगता हुआ शब्दबद्ध करता है[2]।" इसलिए "समय के प्रति सचेत रहना, एक रचनाकार केलिए गहरे दायित्वों से भर जाना है, क्योंकि वह जिस संग्राम केलिए जिस हथियार का इस्तेमाल करता है वह समय सीमित नहीं, बल्कि इतिहास संपन्न है[3]।"

साठोत्तरी उपन्यासों की पृष्ठभूमि पर ध्यान देने से पता चलता है कि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद की स्थिति यों ने मध्यवर्गीय साहित्यकार, खासकर युवा साहित्यकार के मन में विद्रोह तथा घृणा का भाव पैदा कर दिया है । युवा साहित्यकारों की पीढ़ी का यह भी दुर्भाग्य रहा कि उनके सामने कोई आदर्श नेतृत्व न रहा और कोई आदर्श स्थिति न रही । "ये युवा लेखक अपने अनुभव-विश्व तथा संवेदनाओं के माध्यम से जीवन और उसके नये आयामों की खोज कर रहे हैं । हर बात को, हर व्यथा को, जीवन के हर पहलू को स्वयं भोगकर साहित्य चिंतन के माध्यम से प्रस्फुटित करना चाहते हैं[4]।" दैनिक जीवन की सच्चाइयों से

---

1. प्रेमचन्द - कुछ विचार, पृ.25-26
2. डॉ. हेमराज निर्मम - हिन्दी कथा साहित्य में भारत विभाजन, पृ.9
3. प्रभातकुमार त्रिपाठी - तीसरा साक्ष्य, पृ.89
4. डॉ. दंगल झाल्टे - उपन्यास समीक्षा के नये प्रतिमान, पृ.15

मुँह मोड लेना इन लेखकों को भाता नहीं। वे जीवन की सच्चाई को गहराई से पकडना चाहते हैं। "आज का मनुष्य बीसवीं सदी में खो गया है। हर तरह से वह टूट ही टूट रहा है। अपरिलक्षित बोझ को अपने कंधे में ढोते-ढोते वह थक गया है। व्यक्तित्व के पूर्णत्व की खोज में वह आधा-अधूरा ही रह गया है। आज का साहित्यकार उसका सर्वसाक्षी होने के नाते अपनी कृतियों के माध्यम से उस हताश, हतबल तथा निराश व्यक्ति के खोये हुए व्यक्तित्व का रूपायतन करने का अथक प्रयत्न कर रहा है। वह एक नया धर्म चलना चाहता है तथा पीडितों के प्रति सहानुभूति उसकी आस्था के नये चरण हैं[1]।"

नयी पीढी का "लेखक सामाजिक परिवर्तन की गतिशीलता से आक्रांत है; एक अत्यंत गतिशील यथार्थ को पकडने में जुटा है[2]।" इनकी दृष्टि प्रमुख विशेषता यह है इसमें मतवाद, पूर्वाग्रह और आदर्शवाद को स्थान नहीं है। "आधुनिक लेखन परिवेशगत यथार्थ को अपने भीतर रूपांतरित करता हुआ उसे सृजित करता है। बाह्य और भौतिक फैलाव को भीतर ले जाकर अभिव्यक्त करने की यह रचनात्मक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के अन्तर्गत अद्वितीय आधुनिक स्थितियों का एहसास रचनाकार के हर स्तर (उसकी संवेदना, रूपबन्ध और मुहावरे) पर होता है। ये स्थितियाँ, मानव स्थितियों से, मानव-मुक्ति की आकांक्षाओं से, अपनी अस्मिता को पहचानने की छटपटाहट से संबद्ध होकर विविध रूपों में अभिव्यक्त होती है[3]।" रोमांटिक एवं आदर्शवादी रचनाकारों के

---

1. डॉ. दंगल झाल्टे - उपन्यास समीक्षा के नये प्रतिमान, पृ.16
2. अज्ञेय - भवन्ति, पृ.7।
3. नरेन्द्र मोहन - आधुनिकता और सामाजिक संदर्भ, पृ.2।

ठीक विरुद्ध जीवन की नंगी सच्चाइयों से बौद्धिक रिश्ता जोडने में नयी पीढी के रचनाकार सफल निकलते हैं । व्यक्ति की मानसिक विकृतियों या विद्रूप कुंठाओं की संभावनाओं से ये रचनाकर मुँह नहीं मोडते । इस प्रकार रोमांटिक विचारधारा के साथ-साथ घोर वैज्ञानिक यांत्रिकता का विरोध भी इनकी रचनाओं में दृष्टिगत होता है । "इन विचारधाराओं के बीच कहीं मानवीय संवेदना की अस्मिता एक जीवन्त प्रश्न के रूप में खडी रही है । यह एक रचनात्मक तलाश है जिससे समय का प्रतिनिधि उपन्यासकार जूझता रहता है[1]।" समकालीन रचनाओं में सामाजिक स्थिति या मानवस्थिति को उजागर करनेवाले, स्थितियों और चरित्र के टकराव से बने अनुभव और विचारों को अभिव्यक्ति मिली है । इसलिए "उपन्यास आज मानव की अपनी परिस्थितियों के साथ उसके संबन्ध की, अपने परिवेश के प्रति उसके दृष्टकोण के उत्तरोत्तर विकास की अभिव्यक्ति बन गया है[2]।"

साठोत्तर कालीन साहित्य पर नज़र डालने पर व्यक्त होता है कि इधर जीवन और साहित्य के बीच नया संबन्ध स्थापित हुआ है, जिसकी जड़ें परिवेश की गहराइयों तक पहुंचनेवाली है । नये परिवेश में मनुष्य अन्तर्विरोधों के शिकार बनते गये । प्रत्येक संवेदनशील साहित्यकार ने इस नये परिवेश को भोगा और समझा । उनकी मानसिक विक्षुब्धता और प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति जीवन की कटु सच्चाइयों को आत्मसात करके प्रकट हुई । इस संदर्भ में यह कहना असंगत न होगा कि आलोच्यकालीन उपन्यासों में परिवेश से प्रभावित जीवन के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करनेवाले

---

1. सकलदीप सिंह - आधुनिकता पर कुछ नोट्स (नईधारा - दिसंबर 1983), पृ.4
2. डॉ. रणवीर रांग्रा - समकालीन हिन्दी उपन्यास की भूमिका, पृ.9

रचनाकार की और परिवेश एवं प्रतिक्रियाओं के बीच जूझनेवाले व्यक्तियों की अभिव्यक्ति मिलती है ।

नगरबोध और बदलती दृष्टि

नगरबोध आधुनिक संवेदना से जुडा हुआ एक प्रमुख आयाम है । यह परिस्थितियों की देन है । अपने ही घर में मेहमान जैसे लगना और परिस्थितियों से जुड न पाने की विवशता नगरबोध की पहचान है । "पिछले महायुद्धों के बीच विकसित होने वाली भारतीय मानव-चेतना ने आज़ादी की प्रसन्नता के साथ ही विभाजन का अभिशाप भी झेला है । यांत्रिकता, संशय, भ्रष्टाचार और असंतोष की व्यापकता के साथ ही आस्थाओं के टूटते, विश्वासों को बिखरते और संबन्धों को छिटकते देखा है - इन पीडाओं के संत्रास में उनकी आत्मा झनझना उठी है, और आज हम देखते हैं कि संपूर्ण मानसिकता में तनाव, आतंक और विश्वासहीनता समा गई है ।[1]" सदियों से पालित विश्वासों और आस्थाओं की नींव हिल गयी । मनुष्य को मनुष्य पर जो आस्था थी वह निरर्थक सिद्ध हुई । देश की स्वतंत्रता केलिए जिन लोगों ने अपना सबकुछ न्योछावर कर दिया था, उन्हें बडा सदमा लगा ।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद शिक्षा के प्रति ग्रामीण लोगों के मन में भी आकर्षण शुरू होने लगा । यंत्रीकरण के साथ-साथ गाँव के किसान लोग बेरोज़गार होते गये । नगरों में कारखानों की स्थापना से शहरीकरण की प्रक्रिया ज़ोर पकडने लगी और

---

1. डॉ. ज्ञान आस्थान - हिन्दी कथा साहित्य समकालीन संदर्भ, पृ.44

नगर, महानगर में बदलते गये । नौकरी की तलाश और शहरीय ज़िन्दगी की चमकदमक ने शिक्षित ग्रामीण युवकों को महानगरों में लाकर खडा कर दिया । शहर में आकर ये युवक अपने को अकेलेपन से घिरा हुआ महसूस करने लगे । क्योंकि "अकेलों की भीड से अकेलापन नहीं मिटता, किन्तु अकेले के आत्मदान से मिटता है ।"[1] लेकिन शहर की भीड आत्मीयता की प्रतीक्षा व्यर्थ है । जहाँ रिश्तों का आधार अर्थ है वहाँ आत्मदान का प्रश्न ही नहीं उठता । ऐसी स्थितियों से गुज़रनेवाले आदमी को लगता है कि उनके सुख-दुखों को बाँटने केलिए कोई नहीं है । "महानगरीय जीवन में दो प्रकार का अलगाव और परायापन देखा जा सकता है । प्रथम तो अपने परिवेश से कट जाने और उस चिर-परिचित जीवन-मूल्य छूटने का दर्द है और दूसरे, महानगर की भागम भाग और व्यस्त ज़िन्दगी में एक-दूसरे से बात न कर सकने, एक दूसरे के साथ तादात्म्य न हो पाने का अलगाव और परायापन है ।"[2]

मनुष्य को अजनबी और अकेला बनाने में राजनीति और भ्रष्टाचार ने जो भूमिका अदा की है वह विशेष उल्लेखनीय है । महानगरों के अन्तर्गत भौतिक संपन्नता और सोफिस्टिकाटेड लाइफ का मोह इतना बढता जा रहा है कि मानवीय संबन्धों के स्थान पर इनकी प्राप्ति ही व्यक्ति केलिए प्रमुख बन गयी है इन ऊपरी एवं तथाकथित मूल्यों की प्राप्ति केलिए सही मानवीय संबन्धों की आहुति दी जा रही है ।"[3] युवा पीढ़ी ने देखा कि राजनीति का प्रभाव

---

1. अज्ञेय - आत्मनेपद, पृ·262
2. डॉ· पुष्पपाल सिंह - समकालीन कहानी सोच और समझ, पृ·86
3. माधुरी शाह - कमलेश्वर का कथा साहित्य, पृ·205

सब कहीं व्याप्त है । नौकरी मिलने केलिए, पदोन्नति केलिए और यहाँ तक कि किसी सरकारी दफ्तर से प्रमाण पत्र की प्रतिलिपि मिलने केलिए सिफारिश और पैसे की राजनीति चलती है । "ऐसी स्थिति में सिफारिश या पैसे से हीन व्यक्ति सब प्रकार से योग्य होते हुए भी अयोग्य है और फलत: वह अलगावग्रस्त है - राजनीतिक स्तर पर, योग्यता के स्तर पर और निजी आत्मा के स्तर पर ।[1]"

स्थितियों और चिन्तन में हुए परिवर्तन से संबन्धों में अलगाव प्रकट होने लगा । संयुक्त परिवार टूट गये । संबन्धों के आधार बदल गये । सहानुभूति, आत्मीयता और मानवीयता की भावना का कोई मूल्य नहीं रह गया । माँ-बाप, पति-पत्नी और बेटा-बेटी एक साथ रहते हुए भी एक दूसरे से दूर होते गये, अपने अपने घेरे तक सीमित रह गये । उनके बीच का संबन्ध अजनबीपन में बदल गया । व्यक्ति अपरिचय, संत्रास और घुटन का शिकार होता गया । स्त्री-शिक्षा के प्रचार और उससे उत्पन्न स्वतंत्रता और समानता की भावना ने पारिवारिक संबन्ध विघटन को और त्वरित कर दिया । "आधुनिक परिवार में नारी पुरुष की समर्पिता न होकर तुल्य अधिकारोंवाली जीवन-संगिनी है[2] ।" अब वह पराश्रित होकर घर तक सीमित न रहकर, धनोपार्जन एवं अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति केलिए बाहर निकलकर काम करने लगी । यहाँ से स्त्री-पुरुष संबन्धों के आधार भी बदलने लगे । सतीत्व और समर्पण की भावना को अब उतना महत्व नहीं दिया जाता । परिवार को परंपरागत महत्व देने से नयी स्त्री ने इनकार किया । परिवर्तित

---

1. डॉ. बैजनाथ सिंह - अलगाव दर्शन और साहित्य, पृ.205

2. In a modern family women is not a devotee of man, but an equal partner with equal rights.
Vidhya Bhushan Sachidev - Introduction to Sociology P:272.

परिवेश ने पति-पत्नि के संबन्ध में तनाव की स्थिति उत्पन्न कर दी । अपने जीवन-साथी को स्वयं चुनने की वृत्ति बढने लगी । अपनी अपेक्षाओं की पूर्ति के लायक न साबित होने पर पति को छोडने में ये नारी हिचकती नहीं । तन और मन की ज़रूरतों की पूर्ति केलिए कुछ भी करने को ये तैयार हो जाती हैं । ऐसी स्थिति में पति-पत्नी और बच्चों के बीच का संबन्ध औपचारिक रह जाता है । अपने पास सबकुछ होने पर भी उसे खालीपन या अभाव का बोध सताता रहता है और वह टूटता जाता है । पति-पत्नी के बीच तीसरे की उपस्थिति भी सामान्य बात हो गयी है । "आधुनिकता एवं समानता की आड में महिलाओं में बढ़ता स्वैराचार, यौन विकृतियों के परिणाम स्वरूप पश्चिमी ढाँचे से टूटता भारतीय गृहस्थ जीवन आज की बडी समस्या बन बैठे हैं[1] ।"

औद्योगीकरण की प्रक्रिया से उत्पन्न स्थितियों व्यक्ति को लगने लगा कि उसके व्यक्तित्व का कोई अर्थ नहीं है । मनुष्य अपने वैयक्तिक तथा सामाजिक जीवन में यांत्रिक प्रक्रिया का एक पुर्जा बनता जा रहा है[2] ।" राजनीति ने उसे व्यक्ति से "वोटर" बना दिया है । "विज्ञान ने व्यक्ति को एक वस्तु या पशु के रूप में परिभाषित कर दिया है । यही वे स्थितियां हैं जिनमें व्यक्ति संत्रास का अनुभव कर रहा है।[3]" पिछले महायुद्धों और विभाजन में हुई नरहत्या और युद्धों में आणविक हथियारों के प्रयोग ने मनुष्य के अस्तित्व पर ही प्रश्न-चिह्न लगा दिया था । "जिस मानव ने जिस व्यक्ति विकास पर आधारित जिस यंत्र सभ्यता के सहारे जिस प्रकृति पर विजय पाकर अपनी उत्कृष्टता सिद्ध की है, वही मानव उसी यंत्र के कारण उसी प्रकृति के सामने नगण्य हो गया है

---

1. डॉ॰दंगल झाल्टे - उपन्यास समीक्षा के नये प्रतिमान, पृ॰16
2. इन्द्रनाथ मदान - आज का हिन्दी उपन्यास, पृ॰92
3. चन्द्रभानु रावत, रामकुमार खण्डेलवाल - समकालीन लेखन एक वैचारिकी, पृ॰58

कि उसके व्यक्ति-जीवन की अनुभूतियाँ कोई अर्थ नहीं रखतीं - इस विराट न - कार को निगलने केलिए बाध्य होने पर अगर उसकी आँधियाँ विद्रोह करती हैं तो वह समझ में आ सकना चाहिए ।"[1]

महानगरों में "गति ही जीवन है । रुकने का अर्थ पिछड़ापन है[2] ।" रहने केलिए मकान मिलने की समस्या और खाने एवं अन्य आवश्यकताओं की सामग्रियाँ जुटाने की लम्बी कतारों महानगरीय जीवन को त्रासद बना देती हैं । इनके राजनेताओं की स्वार्थपूर्ति हेतु होनेवाली हड़ताल, जुलूस, बन्द आदि भी नगरीय जीवन को दूभर करने में उल्लेखनीय भूमिका निभाती हैं । बढ़ती जनसंख्या और औद्योगिक प्रगति के कारण उत्पन्न प्रदूषण और पर्यावरण के संकट भी भीषण रूप धारण कर रहे हैं । इन सबके बीच "मनुष्य अपनी पहचान खोता गया । हमारा वर्तमान जाति-उपजाति, समता-विषमता में विभाजित है । हमारा धर्म अन्ध-विश्वासों से ग्रसित है । हमारी राजनीति स्वार्थ में विभाजित है । हम केवल विभाजित ही विभाजित हैं[3] ।" मनुष्य की आत्मीयता उससे छीनती जा रही है । "स्थितियाँ कुछ इस प्रकार की है कि वह एक नारा, झंडा, हथियार, जानवर बनके तो रह सके, लेकिन अपनी तमाम अच्छाई-बुराई, दोस्ती-दुश्मनी के साथ उसका आदमी बना रहना मुश्किल हो गया[4] ।"

---

1. अज्ञेय - आत्मनेपद, पृ.269
2. डॉ.प्रेमकुमार - समकालीन साहित्य चिंतन, पृ.13
3. महादेवी वर्मा - संस्कृति के स्वर, पृ.9
4. डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ - संकेतना {जून 1980} पृ.33

आवश्यकताओं की पूर्ति के अभाव में मनुष्य काअस्तित्व ही कुंठित हो जाता है । उसमें पल्लवन की संभावना भी नहीं रह जाती, क्योंकि वह सिर्फ जीने केलिए तरस्कर मर जाता है । इसलिए नगर-बोध की मानसिकता में कहीं कहीं व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह का स्वर मिलता है और मानव-मुक्ति की कामना भी । कहीं ज़िन्दगी को अभिशाप महसूस कर उसे कोसने और यथार्थ मुँह मोडनेवाली पलायन की वृत्ति मिलती है । इनमें स्थितियों के विरुद्ध कुछ न कर पाने की विवशता आदमी की नियति बनकर रह जाती है । स्थितियाँ व्यक्त करती हैं यह नगरबोध पाश्चात्य अनुकरण न होकर भारतीय परिवेश की ही देन हैं ।

राजनीतिक हस्तक्षेप और सामाजिक जीवन की दुर्गति

स्वातंत्र्योत्तर काल में राजनीति का प्रवेश जीवन के हर क्षेत्र में हो गया है। प्रजातंत्र की स्थापना से लोगों का राजनीति से सीधा संपर्क हो गया और राजनीति जीवन को सीधे प्रभावित करनेवाला तत्व बन गयी । "आज की ज़िन्दगी का हर स्तर राजनीति का इतना गहरा दबाव झेल रहा है कि राजनीतिक समझ के बिना सामाजिक जीवन की समझ ही संभव नहीं रह गयी ।"[1] चुनाव, सामाजिक विकास योजना, सहकारिता, भूमि सुधार और पंचायत के द्वारा ग्रामीण जीवन पर भी राजनीति का प्रभाव पडा । "इसका यदि एक ओर यह परिणाम हुआ कि राजनीतिक जागरूकता सभी स्तरों और वर्गों के व्यक्तियों में आ गयी तो दूसरी

---

1. प्रेमकुमार - संकेतना (जून 1978), पृ. 17

और इसका एक दुष्प्रभाव यह भी हुआ कि प्रत्येक क्षेत्र में भ्रष्टाचार की अपरिमित वृद्धि हो गयी[1]।" राजनीतिक दलों और नेताओं की जनसेवा भाषण और वक्तव्य तक सीमित है। इनका लक्ष्य चुनाव जीतने और सत्ता हथियाने मात्र रह गया है। "आज भ्रष्टाचार और काले बाज़ारी जीवन के लगभग सारे क्षेत्र में घुस गये हैं। व्यापार-व्यवसाय और उद्योग के साथ-साथ कानून, चिकित्सा और पत्रकारिता जैसे उदात्त कार्यक्षेत्र भी इस रोग के प्रभाव से बच नहीं पाये[2]।"

स्वतंत्रता-प्राप्ति, प्रजातंत्र की स्थापना, ज़मीन्दारी उन्मूलन और पंचवर्षीय योजनाओं से साधारण जनमानस आन्दोलित हो चुके थे और समता एवं खुशहाली से युक्त भविष्य के सपने देख रहे थे। लेकिन "देखा गया कि जो सत्ता की कुर्सियों में आसीन हैं उन्हें अपने देश के लोगों की उन्नति से ज्यादा अपना स्थान बनाये रखने की चिन्ता है। गरीबी की काली छाया, बेरोजगारी और उत्तरोत्तर बढती महंगाई इस देश को तंग करते देखा गया[3]।"

---

1. डॉ. अरुण चतुर्वेदी - गाँधीवादी विचारधारा और हिन्दी उपन्यास, पृ.275

2. Today corruption and blackmarketing have invaded nearly every walk of life. commerce and industry and other numerous professions including the noble ones like law, medicine and journalism are stricken with this fell diseases
K.T. Mohan -Independence to Indira and after - P: 142-143

3. The people who occupied seats of power, seemed to be concerned more about retaining their position than with the prosperity of their fellow countrymen. The spectre of poverty, unemployment, spiralling prices seemed to haunt the land.
Sarala Jagmohan - Twentyfive years of Indian Independence - P:28.

जो सत्ता या कुर्सी हथियाने में असफल रहे, वे सरकार के कटु आलोचक बन बैठे । लेकिन देखा गया कि जब सत्ता इन आलोचकों के हाथों में आ गयी तो वे वही कार्य करने लगे, जो उनके पूर्ववर्ती ने किया था ।

सरकारी कार्यालय भी राजनीति के प्रभाव से मुक्त न रहे । "नौकरशाही का लक्ष्य, विशिष्ट वर्ग के समान त्वरित गति से अपने ही रखरखाव और अधिकारों को कायम रखना हो जाता है । प्रत्येक नौकरशाह में अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु, मतलब है कि पदोन्नति और आगे बढ़ने की दौड में राज्य के साधन का उपयोग करने की प्रवृत्ति विकसित होती है ।[1]" इसलिए देश की उन्नति केलिए उठाये गये अनेक कदम अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाये । नौकरशाही में भ्रष्टाचार व्याप्त होने का एक और कारण यह रहा है कि "एक ही दल के अधिपत्य की व्यवस्था-मतलब है कि कांग्रेस सरकार के लगातार शासन, के परिणामस्वरूप आपसी फायदाहेतु राजनीतिज्ञों और नौकरशाहों के बीच सहयोग की स्थापना की स्थिति हुई ।[2]" इस प्रकार राजनेताओं की स्वार्थ नीतियों ने देश की प्रगति में बाधा पहुँचायी है । यहाँ सिद्धांतों और योजनाओं की कमी नहीं रही । लेकिन भ्रष्ट नेताओं की अदूरदर्शिता के कारण इनका कार्यान्वयन नहीं हो पाया ।

---

1. As in the case of elites the goal of bureaucracy rapidly becomes its own self maintance and perpectuation. The individual bureaucrat develops the tendency to make the purpose of state his own private end - the race for promotion and getting ahead:-
Krishna Chaithanya -The Sociology of Freedom P:236.

2. The one party dominance system has meant the uninterrupted rule of Congress party, which has resulted in a situation of collaboration between the politicians and the bureaucerates for metual advantages.
C.P. Bhambri - Public Administration in India- P: 18

देश की प्रगति केलिए सार्वजनिक क्षेत्र में लगायी गयी पूंजी का अधिकांश भाग प्रतिष्ठित व्यक्तियों द्वारा लूट लिया गया । यह एक स्वीकृत सत्य है कि अधिकांश कारखाने और उद्योग-धंधे जो सार्वजनिक क्षेत्र में है, घाटे पर चल रहे हैं । उनमें उत्पादन बढाने केलिए उचित कदम नहीं उठाये जाते । ज्यादातर क्षेत्र में उत्पादन क्षमता के अधिकतम चालीस प्रतिशत को काम में लाया जाता है । देखा गया है कि कहीं कहीं निजी क्षेत्र के व्यक्तियों को लाभान्वित करने केलिए सार्वजनिक क्षेत्र में उत्पादन कम कर दिया जाता है । बदले में इन उच्च पदाधिकारियों को सरकारी नौकरी से अवकाश प्राप्त होने पर निजी क्षेत्र के उद्योग-धंधों में भारी वेतन के साथ नौकरी मिल जाती है । इस प्रकार व्यक्तिहित केलिए देशहित की कुरबानी की गयी । इसके अलावा "सार्वजनिक क्षेत्र के, उत्पादन ने नगरीय जनता केलिए विलासिता की वस्तुओं के उत्पादन की ओर मुड़कर सरकारी कोष के दुरुपयोग को और बढावा दिया ।"[1]

राजनैतिक दुष्प्रभाव से अधिक पीडित है, युवा पीढी । शिक्षा के क्षेत्र में राजनीति का प्रवेश और उससे उत्पन्न अनुशासन-हीनता पिछले दशकों में चर्चा के प्रमुख विषय रहे । स्वार्थपूर्ति हेतु विद्यार्थियों को गुमराह करने में राजनीतिज्ञों का बडा हाथ रहा । शिक्षा-संस्थाओं के वातावरण ही राजनीति से प्रदूषित हैं । राजनीति का असर विद्यार्थियों तक सीमित नहीं है ।

---

1. The shocking misuse of public fund was further aggravated by diverting the productions of public sector into the manufacture of luxury goods for urban population.

Ramesh Thaper - Indian Dimension - P:189

अध्यापकों और शोध-संस्थाओं पर भी व्याप्त है । राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण योग्य व्यक्ति सब कहीं पीड़ित है ।

राजनैतिक प्रभाव का एक और दुष्परिणाम यह हुआ कि सामाजिक जीवन में साम्प्रदायिक भावना का विष फैला दिया गया । संविधान के आधार पर भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश घोषित किया गया था । लेकिन देखा गया कि स्वार्थी एवं अदूरदर्शी राजनेता धर्मनिरपेक्षता की दुहाई देते रहे और चुनाव जीतने केलिए साम्प्रदायिकता को बढावा देते रहे । कहीं-कहीं साम्प्रदायिक दलों से समझौता करते रहे । इस तरह सामाजिक मैत्री एवं शांतियुक्त वातावरण पर खतरा आ पहुँचा ।

वर्तमान भारतीय सामाजिक जीवन पर नज़र डालने पर व्यक्त होता है कि ऐसा कोई क्षेत्र नहीं है, जो राजनीति के दुष्प्रभाव से मुक्त हो । एक बडी सीमा तक भारतीय समाज की वर्तमान शोचनीय अवस्था के उत्तरदायी ये आदर्शहीन, भ्रष्ट, स्वार्थपरता के रक्षक राजनेता ही हैं । इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद लोगों में राजनीतिक जागरण प्रमुख मात्रा में होने लगा है । "लेकिन स्वतंत्रता आन्दोलन के सामने देश की गरीबी, अशिक्षा, सामाजिक विषमता तथा जड़ता को दूर करने का जो प्रमुख उद्देश्य था, वह अभी अधूरा है, और एक प्रकार से राजनैतिक स्वतंत्रता के बाद इन कार्यों ने और भी महत्व और तात्कालिकता प्राप्त की है ।[1]" क्योंकि राजनैतिक आज़ादी से

---

1. नेमीचन्द्र जैन - अधूरे साक्षात्कार, पृ.158

आर्थिक स्वतंत्रता की प्राप्ति हो पायी । लोग गरीबी, आर्थिक विपन्नता, बेरोजगारी आदि के शिकंजे से अपने को मुक्त नहीं कर पाये । वास्तव में आज़ादी की लडाई शोषण के विरुद्ध आर्थिक स्वतंत्रता केलिए लड गयी थी ।

भाई-भतीजावाद का विकास और राजनीति के प्रति बुद्धिजीवियों की विमुखता

भारत की राजनीति में भाई-भतीजावाद की शुरुआत स्वाधीनता-प्राप्ति के साथ ही हुई थी । आज मामूली सरकारी कर्मचारी की नियुक्ति से लेकर राजपाल की नियुक्ति तक, तबादला से लेकर तरक्की तक, ठेकेदारी से लेकर लाइसेंस और पेरमिट के आबंटन तक, कारखानों से लेकर अनुसंधानशाला तक में भाई-भतीजावाद व्याप्त है । देश के बडे नेताओं की करनियों में ही इसके उदाहरण देख सकते हैं । मंत्रिमंडल के सदस्यों के चयन से लेकर उनके भ्रष्टाचार के विरुद्ध की जाँच-पडताल तक में यह नीति रही है । इसमें जाँच-पडताल की बात विशेष उल्लेखनीय है । इस बात पर निर्णय लेने का अधिकार पूर्णतया मंत्रिमंडल के नेतृत्व पर निर्भर है । "विगत पच्चीस वर्षों में की गयी जाँच-पडतालों का सर्वेक्षण व्यक्त करता है कि इस निर्णय-अधिकार का प्रयोग पक्षपाती ढंग से किया गया है । यदि अपराधी तत्कालीन सत्ताधारी दल का सदस्य रहा तो जाँच-पडताल अनिच्छा से की गयी या विलम्ब के साथ ।"[1] कहीं-कहीं जाँच-

1. A survey of enquiries held in the last twentyfive years shows that the discretion has invariably been exercised in a partisan manner. They were set up reluctantly or belatedly if the offender belonged to the same political party as the regime of the day.

A.G. Noorani - Ministers Misconduct - P:2

पड़ताल ही नहीं की गयी । जाँच-पड़ताल के आधार पर अपराधियों के विरुद्ध कदम उठाने की बात तो दूर रही ।

इन कारणों से प्रजातंत्र शासन में न्याय और नीतियुक्त फैसले असंभव हो गये हैं । "प्रजातंत्र में, विशेषकर भारत जैसे विकासमान देश में जो अपनी गरीबी और निरक्षरता, अभावों और तनावों से युक्त है, प्रजातंत्र के सफल तत्वों पर जनसाधरण को राजनैतिक शिक्षा देना प्रार्थमिक महत्व की बात है ।[1]" लेकिन राजनैतिक शिक्षा की बात तो दूर रही, साक्षरता का दर भी आशाजनक नहीं है । राजनेता जनता से दूर, हाथ आये सत्ता को अपने परिवार तक सीमित रखने के षड्यंत्र रचते रहे ।

समकालीन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त राजनीति के "इस भ्रष्ट रूप से जनसाधारण त्रस्त हो गया । प्रशासनिक सेवाओं में व्याप्त राजनैतिक दबाव और भ्रष्टाचार, खासकर मध्य-वर्गीय व्यक्ति का रोजाना अनुभव बन गया है । इस संदर्भ में शिक्षित एवं राजनीति के प्रति जागरूक व्यक्ति राजनीति से अपने को अलग रखने का प्रयास करने लग जाते हैं । "छोटी छोटी संस्था से लेकर लेकर राष्ट्रपति तक के चुनाव में जिस प्रकार के उपायों का अवलंबन किया जाने लगा, उनसे प्रबुद्ध कर्मशील नागरिक अत्यंत क्षुब्ध हो गये । इसका एक दुष्परिणाम यह हुआ कि ईमानदार,

---

1. In democracies, and especially in democracies of developing areas like India, with their poverty and illiteracy, their scarcities, the political education of ordinary citizen in the fundamental principles of success of democratic governments become a matter of first importance.

V.K.K. Menon - Inida since Independence - From preamble to the present - P: 47

समर्थ और योग्य व्यक्ति राजनीति से विमुख हो गये।[1]" इस प्रकार बुद्धिजीवियों के ऐसे वर्ग का उदय हुआ जो आज की भ्रष्ट राजनीति के प्रति मन ही मन घुटता रहा है, और अपने को उससे अलग रख एक प्रकार के नपुंसकत्व का भाव स्वीकारने केलिए विवश हो गया। इस तरह एक "नॉन पोलिटिकल" वर्ग का विकास हुआ, जिसके सदस्य अधिकतर मध्यवर्गीय परिवारों से आनेवाले व्यक्ति रहे। क्योंकि वह, यह महसूस करने लगा कि राष्ट्र के निर्माण में उचित योगदान देने की क्षमता रखते हुए भी, अपने वर्ग की बात कभी भी समकालीन परिस्थिति में स्वीकार्य नहीं हो सकती। जब हज़ारों, लाखों मतदाता अपने मतदान के अधिकार को बिना सोचे-विचारे या डर या आतंक के कारण किसी उम्मीदवार को देने केलिए उतारू हो हाते हैं, वहाँ लाखों बार सोचने के बाद दिया जाने वाला बुद्धिजीवी का वोट कोई महत्व नहीं रखता। क्योंकि मतदान का मूल्य, चाहे बुद्धिजीवी का हो चाहे मूर्ख का, समान होता है।

इस देश के भविष्य को मटमैला करने में इस राजनैतिक विमुखता ने बहुत ही प्रमुख और परोक्ष भूमिका अदा कर दी। वैसे राजनेता तो इस प्रकार की राजनीतिक विमुखता से संतुष्ट रहे। सोचने समझनेवाले वर्ग को सक्रिय राजनीति से दूर रखने में वे अपनी भलाई का मार्ग सोचते रहे। इस विडम्बनात्मक स्थिति का बहुत ही दुखद परिणाम दिखाई दे रहा है।

---

1. डॉ. अरुणा चतुर्वेदी - गाँधीवादी विचारधारा और हिन्दी उपन्यास, पृ.257

साम्प्रदायिकता का विकास और राजनैतिक अवसरवादिता का प्रभाव

साम्प्रदायिकता के विकास पर चर्चा करने से पहले यह देखना अपेक्षित है कि साम्प्रदायिकता का क्या मतलब है । किसी व्यक्ति के मन में अपने धर्म के प्रति मोह, उसके परिरक्षण एवं उसके सदस्यों की प्रगति में दिलचस्पी आदि के रूप में इसकी व्याख्या की जाती है । लेकिन यह एक जटिल तथ्य है जिसके मूल में अनेक तत्व हैं । खेद की बात है कि अपने धर्म के प्रति मोह साधारणत: अन्य धर्मों के प्रति घृणा के रूप में प्रकट होता है । इसलिए "साधारण शब्दावली में साम्प्रदायिकता से तात्पर्य उस प्रतिकूल भावना से है, जिसमें किसी अन्य धार्मिक समुदाय और उससे संबद्ध व्यक्तियों के प्रति भरसक आक्रामकता से युक्त शत्रुता है ।[1]"

भारत में साम्प्रदायिकता का बीज अंग्रेज़ों के शासनकाल में ही बोया गया था । उनकी नीति ही फूट डालकर शासन करने की थी जो "डिवाइड एण्ड रूल" नाम से प्रसिद्ध है । कुछ अदूरदर्शी एवं स्वार्थी लोग इनके चंगुल में फँस गये और वे साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने लगे । "फ्रीडम एट मिडनाइट" के लेखक लारि कालिन्स् एवं डोमिनिक लापयर के अनुसार इस समस्या की जड भारत के तीन सौ दशलक्ष हिन्दुओं और एक सौ दशलक्ष मुसलमानों का पुराना विरोध है ।

---

1. In common parlance, Communalism was understood to mean a sentiment of enimity towards other religious communities with prejudice against and possible aggressiveness towards the individuals belonging to them.

D.C. Gupta - Indian Government and Politics - P:293.

परंपरा, विरोधी धर्म और आर्थिक असमानता से पोषित होकर एवं फूट डालकर शासन करने की ब्रिटिश नीति से, प्रखर रूप से उत्तेजित होकर उनके विरोध खौलने के हद तक पहुँच गये थे।" साम्प्रदायिकता का असर इतना बढ गया था कि स्वाधीनता-प्राप्ति के पहले ही भारत का विभाजन हुआ। विभाजन के संदर्भ में हुई घटनाएँ सूचित करती है कि साम्प्रदायिकता कितना खतरनाक हो सकती है, यह कैसे मनुष्य को पशु बना देती है।

स्वाधीन भारत धर्मनिरपेक्ष घोषित किया गया। लेकिन घोषणा से क्या होता है? साम्प्रदायिकता की भावना ज़ोर पकडती गयी और अवसरवादी एवं स्वार्थी राजनीतिज्ञ उसे बढावा देते रहे। तेज़ परिवर्तनशील समाज में, मुसलमान समाज में व्याप्त रूढिवादिता का परिणाम यह हुआ कि आर्थिक रूप से और शैक्षिक रूप से पिछड गये। इसलिए सरकारी सेवा एवं वाणिज्य में उनको पर्याप्त स्थान नहीं प्राप्त हुआ। इसके परिणामस्वरूप अल्पसंख्यक मुसलमानों के मन में कुंठा, निराशा, असुरक्षा और नफरत की भावना पैदा होने लगी। उन्हें यह महसूस होता रहा कि उन्हें उचित अवसर नहीं दिये जा रहे हैं और बहुसंख्यक वर्ग के लोग उनको अपने पैरों तले कुचल रहे हैं। स्थितियों को प्रोत्साहित करने में भारत के साम्प्रदायिक राजनीतिज्ञों के साथ पाकिस्तान के हाथ समान रूप से रहा। परिणामस्वरूप एक प्रकार के आक्रमण की भावना जन्म ले गयी।

---

1. The root of the problem was the age old antagonism between India's 300 million Hindus and 100 million Moslems. Sustained by tradition, by antipathetic religions, by economic differences, subtly excacerbated through the years by Britan's own policy of Devide and Rule their conflict had reached boiling point.
Larry Collins & Dominique Lapierre - Freedom at Midnight - P: 7

स्थितियाँ यहाँ तक पहुँचीं कि हिन्दुओं ने भी मुसलमानों के विरुद्ध उग्रवादी रूख अपनाया ।

हिन्दु महासभा, आर्य समाज, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसे संगठन ने इसे और तीव्र कर दिया । उन्होंने पाश्चात्य संस्कृति को ही नहीं बल्कि मुसलमानों के संस्कृति को भी पराया घोषित किया । देश विभाजन के बाद इन संगठनों की उग्रवादिता और बलवती हो गयी । ये हिन्दु विश्वासों, मूल्यों एवं संस्थाओं पर ओज और कट्टरता के साथ ज़ोर देने ही नहीं लगे, बल्कि उसने इसे लागू करने एवं प्रचरित करने केलिए सुनियोजित आन्दोलन भी शुरू किया ।[1]" इसने परिस्थितियों को और जटिल बना दिया । "यदि कोई हिन्दु सोचता है कि मुसलमान उसकी अपेक्षा घटिया है, या कोई मुसलमान यह सोचता है कि हिन्दू काफिर है, या कोई सवर्ण हिन्दु किसी वाल्मीकी या आदिवासी को मानव समझने से इनकार करता है तो यह संप्रदायवाद को बढ़ावा देनेवाली बात है[2]।" इतिहास साक्षी है कि जब कभी किसी वर्ग ने औरों पर अपना प्रभुत्व ज़माने की कोशिश की है तब संघर्ष अवश्य पैदा हुआ है ।

लेकिन इस समस्या को हल करने में केंद्र और राज्य सरकार की असफलता के कारण साम्प्रदायिकता बिना हल के बनी रही । विवेकपूर्ण ढँग से समस्या को परखने की कोई कोशिश नहीं की गयी ।

---

1. The chauvinism of these organisation became stronger after the partition of the country, and not only were Hindu believes, values and institutions emphasised with grater vigor and fanaticism, well planned movements were started to enforce and propagate them.

D.C. Gupta - Indian Government and Politics - P: 299.

2. जगजीवन राम - भारत में जातिवाद और हरिजन समस्या, पृ. 56-57

बडे रहस्य की बात यह रही कि साम्प्रदायिक दंगों को उकसाकर हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच शाश्वत रूप से वैर पैदा कर सत्ता को बनाये रखने की कोशिश कांग्रेस पार्टी के नेताओं ने बड़ी चतुराई से प्रस्तुत की थी । और जब कहीं स्फोट की स्थिति आ जाती, कांग्रेसेतर पार्टियों को दोषी ठहराया जाता । दु:ख की बात है कि साम्प्रदायिकता को अपनाकर राजनीति को बढावा देनेवाले दल और संस्थाएं हैं । राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसी संस्थाएं इस साम्प्रदायिकता की आग को बढ़ाने में विशेष रूचि लेती थी, क्योंकि उनका अस्तित्व ही ऐसी बातों पर टिका था[1] ।" देखा गया है कि अधिकांश राजनैतिक दल साम्प्रदायिकता से संदर्भानुसार लाभ उठाते रहे और उसके विरुद्ध वक्तव्य देते रहे । विशेषकर "कांग्रेस पार्टी हमेशा राजनैतिक स्वार्थपरायणता से मार्ग-दर्शित रही । उसने 1959 में केरल की नंपूतिरिपाड सरकार को बर्खास्त करने केलिए मुस्लिम लीग से संबन्ध जोडने से नहीं हिचका । उसने सहज भाव से अपने सिद्धांतों को त्यागकर पंजाब में अकालियों से मिलकर चुनाव लडा । तमिलनाडु में द्राविड मुन्नेट्ट कष़ाम् के साथ गठबन्धन भी किसी भी कीमत पर चुनाव जीतने के उन्माद से प्रेरित था[2] ।" इसी प्रकार महाराष्ट्रा के शिवसेना को बढावा देने में भी कांग्रेस का योगदान कम नहीं है ।

---

1. डॉ. पीताम्बर सरोदे - आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक एवं आर्थिक चेतना, पृ.140

2. The Congress party was always guided by political expediency. It didn't hesitate to align with Muslim League in 1950 in dissolving the Nampoothiripad Government in Kerala. It readily surrendered its principles and fight along with Akalis in Panjab. Alignment with Dravida Munneta Kazhagam in Tamil Nadu was also dictated by craze to win at any cost.

V.K.Murthi - In the Larger Personal Interest - P: 93.

साम्प्रदायिकता के समान जातिवाद का असर भी बहुत खतरनाक है । "जातिवाद की प्रवृत्ति ने स्वतंत्रता के बाद और भी जडें जमाई है । सभा सम्मेलन या मंच पर दिये जानेवाले वक्तव्यों से जातीयता भले ही नष्ट हो गयी हो, लेकिन जाति के आधार पर ऊँच-नीच, छोटा-बडा आदि की भावनाओं से हम त्रस्त है[1]।" आजकल लोग जाति के आधार पर दल बनाते हैं और उन्हें सांस्कृतिक संगठन का बाना पहनाते हैं । लेकिन राजनीति और चुनाव में इनका असर उल्लेखनीय है । ये जातिवाद को बढ़ावा देते हैं और देशहित को भुला देते हैं । "जाति सोपान तंत्र ने कमज़ोर वर्गों, विशेष रूप से हरिजनों के बौद्धिक विकास को अवरुद्ध कर दिया है । भारत के गाँवों में ऐसी बात युगों से होती आयी है और अभी तक इसमें बहुत कम परिवर्तन हुआ है । कोई अन्तर पडा है तो केवल इतना कि शोषण के रूप बदल गये हैं । रूढिवादी और समृद्ध जमींदार संगठित हो गये हैं । उन्होंने इस बात को महसूस किया है कि ग्राम समाज पर अपना वर्चस्व बनाये रखने केलिए उन्हें सत्ता के तंत्र में नियंत्रण बनाये रखना होगा । पंचायतों और विकास खण्डों में उन्हीं की बात सुनी जाती है । अपने क्षेत्रों की राजनीति पर उनका प्रभाव है और वे सत्ता तंत्र पर नियंत्रण रखने केलिए स्वयं राजनीति में कूद पडे हैं[2]।"

स्वाधीन भारत के तीन दशक का इतिहास व्यक्त करता है कि राजनीतिक दल एवं राजनीतिज्ञ सांप्रदायिक एवं जातीय संस्थाओं के हाथों बिक गये हैं । धर्मनिरपेक्षता एवं राष्ट्रीय एकता की दुहाई देनेवाले बडे-बडे नेता और राजनीतिक दल चुनाव जीतने केलिए इन छिद्र शक्तियों को प्रोत्साहन देते रहते हैं ।

---

1. डॉ. पीताम्बर सरोदे - आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक एवं आर्थिक चेतना, पृ.139
2. जगजीवन राम - भारत में जातिवाद और हरिजन समस्या, पृ.90

इस प्रकार राजनीति अवसरवादिता से मे दूषित हो गयी है । यह अवसरवादिता सांप्रदायिकता और जातीयता को और शक्तिशाली बना रही है, जो देश के विकास में ठेस पहुँचानेवाले तत्व सिद्ध हुए हैं । इस अवसरवादिता ने देश की अखण्डता और एकता को क्षति पहुँचायी है । अब लग रहा है कि जाति और धर्म के चंगुल से मुक्त समाज केवल सपना ही रहेगा । क्योंकि राजनीतिक दलों से यह प्रतीक्षा करना असंभव है कि वे धर्मगत, जातिगत, क्षेत्रगत और भाषागत अन्तरों को भूल पायेंगे । वस्तुत: राजनैतिक अवसरवादिता और राष्ट्र-हित के प्रति अनास्था देश को पुन: खण्डों में बाँटने की स्थिति की सृष्टि में सहयोग की भूमिका अदा कर रही है । यह बडा ही दुर्भाग्यपूर्ण सत्य है ।

तीसरा अध्याय

प्रतिनिधि रचनाएं और राजनैतिक जीवन के बदलते आयाम

तीसरा अध्याय

प्रतिनिधि रचनाएं और राजनैतिक जीवन के बदलते आयाम

उपन्यासों का कथ्य

प्रतिनिधि रचनाओं के रूप में प्रस्तुत जिन तेरह उपन्यासों का कथ्य है, वह आम तौर पर स्वाधीन भारत की राजनीति से संबद्ध है । इनमें से पाच उपन्यास स्वाधीन भारत के तीन-चार दशक की कहानी प्रस्तुत करते हैं, जबकि तीन उपन्यासों की कथावस्तु आपातकालीन स्थिति और जनता सरकार के सत्ता में आने तक सीमित है । चार उपन्यास चुनाव और सत्ता की लडाई पर केंद्रित है । एक उपन्यास में नक्सलवादी आन्दोलन की अभिव्यक्ति मिलती है । व्यंग्य और प्रतीक के माध्यम से रचनाकारों ने अपने उपन्यास को अधिक मार्मिक बनाने का प्रयास किया है । इनमें से अधिकांश उपन्यासकार नई पीढ़ी के हैं और प्रमुख उपन्यासकार होने का कोई दावा भी वे प्रस्तुत नहीं करते ।

परन्तु राजनैतिक उपन्यासों की प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए साहित्यिक मूल्यों की अपेक्षा सामाजिक जीवन की स्थितियों की ओर आलोचक का ध्यान प्रखर होने लगता है । साठोत्तरी उपन्यास की प्रवृत्तिगत दिशाओं का निर्धारण करने में ये उपन्यास इस हद तक सहायक हुए हैं कि समाज राजनीति से किस तरह आतंकित होता रहा है । प्रतिबद्धता के स्वर को उभारने की अपेक्षा आख्यानपरक ईमानदारी को स्वीकारने में, स्थितियों की विश्वसनीयता को बनाये रखने में, यथार्थबोध को प्रतिष्ठित करने में और पीड़ित जनता की मनोवृत्ति को समझाने में इन लेखकों का ध्यान अधिक उन्मुख हुआ है ।

1. एक और मुख्यमंत्री

यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र" का "एक और मुख्यमंत्री" स्वतंत्रता के पश्चात देश के राजनैतिक क्षेत्र में व्याप्त विघटनशील तत्वों और उससे उत्पन्न समस्याओं का मार्मिक और यथार्थपरक चित्रण प्रस्तुत करता है । इसमें स्वतंत्रताप्राप्ति से लेकर तीसरे आम चुनाव तक के कालखण्ड का चित्र है । उपन्यास का घटना-चक्र अरविंद नामक मध्यवर्गीय, शिक्षित एवं महत्वाकांक्षी युवक पर केन्द्रित है ।

अरविंद का पालन-पोषण उसके बड़े भाई चांद द्वारा होता है, जो मामूली सरकारी कर्मचारी है । चांद अरविंद को अपने बेटे की तरह प्यार करता है । विश्वविद्यालय से डिग्री प्राप्त करने के बाद भी अरविंद बेकार, घर में पड़ा

रहता है । आर्थिक तंगी के कारण चांद की बीबी अरविंद के प्रति कटु हो जाती है और भला-बुरा सुनाती है तो वह कहता है "जमाना आने दो भाभी, आकाश के तारे भी तोड़कर ले आऊँगा । किसी भी तरह महान बनकर दिखा दूँगा ।" घर की स्थिति से तंग आकर एक दिन वह घर छोड़कर चला जाता है । शहर पहुँचकर वह विभाजन से पीड़ित हिन्दू शरणार्थियों की सेवा में लग जाता है और हिन्दू संगठन के नेताओं से संपर्क में आ जाता है । एक बार प्रतिशोध की आग में तड़पते भीड़ के सामने ओजस्वी भाषण देकर उन्हें शांत कर देता है । भाषण सुनकर नेता लोग भी आतंकित रह जाते हैं और धीरे, धीरे अरविंद जन नेता बन बैठता है । वह दिन-प्रतिदिन लोगों का विश्वास प्राप्त करता है । इस बीच ठाकुर नरेन्द्रसिंह की कोठी में दो आदमियों की हत्या होती है । अरविंद अपने प्रभाव से ठाकुर को बचा लेता है और निरीह धूड़सिंह को जेल भेज देता है । उसके विरुद्ध गवाही देता है और उसे फाँसी की सजा मिलती है । अरविंद ठाकुर से हज़ारों रूपये ऐंठ लेता है और अपनी आर्थिक स्थिति को सुधार लेता है ।

अरविंद गुलाब नामक अपहृता लड़की से शादी कर आदर्शवाद का ढोंग रचता है । इसके द्वारा वह जीत लेता है । अरविंद के इस कदम की खूब तारीफ की जाती है । अरविंद के प्रभावशाली व्यक्तित्व से आकर्षित होकर कांग्रेज़ के नेता उसे कांग्रेस में शामिल होने का निमंत्रण देते हैं । अरविंद को भी मालूम होता है कि अपनी

---

1. यादवेन्द्र शर्मा चन्द - एक और मुख्यमंत्री, पृ.7

महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति हिन्दू संगठन द्वारा नहीं हो पायेगी । वह ठीक अवसर की प्रतीक्षा में रहता है । इस बीच गाँधीजी की हत्या होती है । यह घटना अरविंद केलिए वरदान बन जाती है । कांग्रेस नेताओं से गुप्त समझौता करने के बाद गाँधीजी को श्रद्धांजली अर्पित करने केलिए आयोजित खुली सभा में अरविंद घोषित करता है कि गाँधीजी की हत्या का दायित्व हिन्दू महासभा पर है और वह हिन्दू महासभा से अपने को अलग कर रहा है । दूसरे ही दिन वह कांग्रेस में शामिल होता है ।

स्वतंत्र भारत के प्रथम आम चुनाव में अपनी लोकप्रियता के कारण अरविंद को टिकट मिल जाती है । "वैधानिक और अवैधानिक जितने ही तरीके संभव हो सकते थे, वे प्रजातंत्र के प्रथम निर्वाचन में उपयोग किये गये । नोट बाँटे गये । मंदिर-मस्ज़िदों को चंदा बाँटा गया । नोट के बदले मिले बोट ।"[1] परिणामस्वरूप अरविंद भारी बहुमत से विजयी होता है । अरविंद विधायकों की स्थिति का अध्ययन करता है और भूतपूर्व गृहमंत्री दीनाराम चौधरी से समझौता करके उसका समर्थन करता है । दैनिक पत्रों के संपादकों को बुलाकर नोट बाँटता है और पत्रों द्वारा दीनाराम केलिए अनुकूल वातावरण की सृष्टि करता है । फलत: दीनाराम चौधरी मुख्यमंत्री बन जाता है और अरविंद को गृहमंत्री का पद मिल जाता है । शपथ-समारोह के पश्चात मुख्यमंत्री के साथ प्रधानमंत्री से मिलने जाता है और अपने पत्रकार मित्र की सहायता से प्रधानमंत्री के साथ अपना फोटो प्रकाशित कराकर यह ढोंग रचने में सफल हो जाता हैकि प्रधानमंत्री

---

1. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - एक और मुख्यमंत्री, पृ.84

उससे बहुत प्रभावित हैं । इसकी बहुत प्रभावशाली प्रतिक्रिया होती है और अरविंद का दबदबा व प्रभाव बढ़ जाता है । मुख्यमंत्री तक अरविंद से आतंकित रह जाता है ।

सेठ प्रीतमचन्द के कारखाने में हडताल होती है । अरविंद के माध्यम से समझौता हो जाता है और उसकी वाह वाही होती है । अब वह पूंजीपतियों, तस्करों और काले-बाजारियों से संबन्ध बढाकर धन कमाने में लग जाता है । अपने भाई चांद को इसमें लगा देता है । तस्करी पकडनेवाले ईमानदार पुलिस अधिकारियों का तबादला कर देता है । आगे चलकर अरविंद इतना निर्मम बन जाता है कि उससे संबद्ध कालेबाजारी में लगे सेठ चंदूलाल पकडा जाने पर अपना पोल खुल जाने के भय से हवालत में ही उसकी हत्या करवा देता है । दूसरे दिन पत्रों में समाचार छपता है कि दिल के दौरा पड़ने के कारण हवालत में सेठ चंदूलाल की मृत्यु हो गयी है ।

अरविंद अपनी पहली प्रेमिका शची से भी संबन्ध रखता है । उसे एक पब्लिक स्कूल में अध्यापिका का काम दिलाता है और धीरे धीरे राजनीति के क्षेत्र में लाता है । महेन्द्र नामक प्राध्यापक से उसकी शादी भी करवा देता है । अपनी प्रतिभा और निकडम के बल पर अरविंद अधिक लोकप्रिय बनता जाता है । दूसरा आम चुनाव निकट आता है तो अरविंद अपने समर्थकों को टिकट दिलाने की कोशिश करता है । बहुत कोशिश के बावजूद वह शची को टिकट नहीं दिलवा पाता । हारकर वह शची को कांग्रेस छोडकर स्वतंत्र रूप से चुनाव लडने का

उपदेश देता है । गुप्त रूप से सेठों से मिलकर शची की विजय निश्चित कर देता है ।

चुनाव में अरविंद भारी बहुमत से विजयी होता है, शची भी । लेकिन मुख्यमंत्री चौधरी साहब हार जाते हैं । अब की बार तिकडम से अरविंद मुख्यमंत्री बन जाता है । कुछ दिनों के बाद शची फिर कांग्रेस में आ जाती है और अरविंद उसे उप-शिक्षा मंत्री बना देता है । अरविंद अब प्रतियोगियों को पदच्युत करके उनके मुँह बंद करने की कोशिश करता रहता है । धीरे-धीरे अरविंद के प्रति सत्तालोलुप कांग्रेसी विधायकों के मन में असंतोष भर जाता है और वे अरविंद से अधिकार छीनने के षड्यंत्र रचने लगते हैं । अरविंद भी सजग रहता है । कालचक्र सरकता रहता है ।

एक बार फिर चुनाव निकट आता है । वरिष्ठ नेताओं के प्रयत्नों से कांग्रेस दल के नेता आपसी मतभेद भूलकर चुनाव अभियान में लग जाते हैं । कांग्रेस को एक बार फिर बहुमत प्राप्त होता है । लेकिन अरविंद को मालूम होता है कि सदस्य नेता के रूप में उसको नहीं चाहते । अरविंद अपने विरोधियों को मुख्यमंत्री नहीं बनने देता । वह शची को नेता के रूप में प्रस्तुत करता है और वह मुख्यमंत्री बन जाती है । शची के माध्यम से अरविंद शासन करने लगता है । लेकिन धीरे-धीरे शची, अरविंद के विरोधियों के जाल में फँस जाती है और अरविंद को धिक्कारती है । अरविंद आहत हो जाता है । और शची को पदच्युत करने की कोशिश करता है । लेकिन केन्द्रीय नेताओं के

सम्मुख समझौता करने केलिए वह विवश हो जाता है । अगले चुनाव के इंतजार में रह जाता है ।

चुनाव होता है और उसमें अरविंद को विजय प्राप्त होती भी है । लेकिन एक बार फिर शची मुख्यमंत्री बन जाती है । अरविंद को अब मालुम होता है कि कांग्रेस में रहकर एक बार फिर मुख्यमंत्री बनना असंभव है । इसलिए वह षड्यंत्र रचता है, विपक्षी दलों से समझौता करता है और यह कहकर कांग्रेस छोड देता है कि अब कांग्रेस भ्रष्टाचार में डूब गया है और उसमें प्रगतिशीलता तक नहीं रह गयी है । कांग्रेस के द्वारा देश का विकास असंभव है । अरविंद एक बार फिर मुख्यमंत्री बन जाता है । कांग्रेस के नेता आहत हो जाते हैं । सत्ता का संघर्ष जारी रहता है । धीरे-धीरे अरविंद की तबीयत खराब होने लगती है और वह अपने कुकर्मों की यादों से डर जाता है । उसे लगता है कि कोई उसे मारने पर तुला है । वह इतना भयभीत होता है कि आत्महत्या कर लेता है । दूसरे दिन सभी दलों के शोक-संदेश छपते हैं जिसमें केवल अरविंद के गुणगान ही थे ।

2· सबहिं नचावत राम गोसाई

स्वतंत्रता-पूर्व के कुछ वर्षों से लेकर वर्तमान समय तक के सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विशेषकर राजनीति में व्याप्त विसंगतियों का चित्र है, भगवतीचरण वर्मा का उपन्यास "सबहिं नचावत राम गोसाई" । परचून की दूकान चलानेवाला लाला

घीसाराम एक-एक पैसा इकट्ठा करके धन कमाता है । एक दिन अपने बेटे के हाथों पिटा जाने पर सबकुछ बेटा मेवेलमल को सौंपकर वह तीर्थयात्रा पर निकलता है । मेवेलाल महाजनी का धंधा शुरू करता है और निकडमबाज़ी से एक ही साल के अन्दर लखपति बन जाता है । म्युनिसिपालिटी जमीन पर कब्जा करके चंदे के धन से मंदिर बनवाता है और धंधे को धर्म से जोड़कर धन कमाने लगता है । धीरे-धीरे शहर के धनी व्यक्तियों में उसकी गणना होने लगती है ।

मेवेलाल अपने बेटा राधेश्याम को ऐ·सी·एस· पास कराने केलिए विलायत भेज देता है । लेकिन जहाज़ में राधेश्याम की मुलाकात एक बडे उद्योगपति के बेटे जैसुखलाल से होती है । उससे प्रेरणा पाकर राधेश्याम पढ़ने का इरादा छोड देता है और "फ्लवर मिल" की मशीन खरीदकर लौटता है । अंग्रेज़ी पढा-लिखा राधेश्याम अंग्रेज़ी अफसरों से दोस्ती जोड लेता है और दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान सैनिकों को आटा और तेल सप्लाई करके करोडों कमाता है । साथ-साथ ब्लैक-मार्केटिंग भी शुरू करता है । भारत स्वतंत्र होने पर राधेश्याम खद्दर पहनने लगता है और कांग्रेस में शामिल होता है । क्योंकि जैसुखलाल ने राधेश्याम को उपदेश दिया था - "आगे चलकर देखना, यही कांग्रेसवाले मिनिस्टर बनेंगे और राज करेंगे । और इनका हमला हम पैसेवालों पर होगा । इस सबके पहले हम लोग खुद कांग्रेसमैन बन जाएँ फिर देखें यह कैसे हमपर हमला करते हैं ।" भारत छोड़कर

1· भगवतीचरण वर्मा - सबहिं नचावत राम गोसाईं, पृ·39

जानेवाले उद्योगपतियों से सस्ते मूल्यों पर मिल वगैरह खरीदकर राधेश्याम "दुनिया के बडे उद्योगपतियों" में स्थान पाता है ।

डाकू नाहरसिंह का पोता जबरसिंह आशा से मामा रघुराजसिंह के यहाँ आता है । पढाई के बाद वह इण्टरमीडियट कॉलिज में प्रोफसर बन जाता है । मामा रघुराजसिंह काग्रेस के सक्रिय नेता होने के कारण उनके यहाँ राजनैतिक कार्यकर्ताओं की बैठक हुआ करती थी । जबरसिंह अपनी होशियारी के कारण काग्रेस में अपना स्थान बना लेता है । काग्रेस कमेटी के चुनाव में गुण्डागर्दों के सहारे पंडित सदाशिव गौतम की सहायता करता है । "करो या मरो" आन्दोलन में जेल भी जाता है । इस कारण स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पहले आम चुनाव में जबरसिंह को टिकट मिल जाती है । और रायबहादुर राजा गंभीरसिंह को पराजित करके वह एम॰एल॰ए॰ बन जाता है । गंभीरसिंह की बेटी धनवंतकुंवर से उसकी शादी होती है । बिना विलम्ब के सदाशिव गौतम की सहायता से वह उपमंत्री बन जाता है ।

अगले चुनाव में जबरसिंह अपने राजनीतिक गुरू सदाशिव गौतम को ही धोखे से हरा देता है और गृहमंत्री बन जाता है । अब तक जबरसिंह राजनीति का मंजा हुआ खिलाडी बन चुका था । जबरसिंह जानता था कि राजनीतिक सत्ता किस तरह कायम रखी जाय । और उसने देखा कि आदर्शवाद का युग देश के स्वतंत्र होते ही समाप्त हो गया है । अब आदर्श एक नारा भर रह गया है, अगली चीज़ है अपनी सत्ता की रक्षा, और सत्ता की रक्षा केवल पैसे के बल पर ही हो सकती है[1]।" इसलिए

1॰ भगवतीचरण वर्मा - सबहिं नचावत राम गोसाई, पृ॰97

जबरसिंह की दोस्ती सेठ राधेश्याम से हो जाती है ।

धनवंतकुंवर के दूर के रिश्ते में "भतीजा रामलोचन पाण्डे, जबरसिंह की सहायता से थानेदार चुन लिया जाता है । अपनी योग्यता और गृहमंत्री के अपने आदमी समझे जाने कारण तरक्की कर वह लखनऊ शहर में कोतवाल बन जाता है । धनवंत कुंवर की अपनी कोई संतान नहीं है, और वह अपने पति की अनैतिक वृत्तियों से दु:खी रहती है । वह रामलोचन पाण्डे को अपना बेटा-सा मानती है और रामलोचन भी धनवंत कुंवर के प्रति श्रद्धा का भाव रखता है ।

सेठ राधेश्याम कृषि अनुसंधानशाला और ट्रेक्टर फेक्टरी खोलना चाहता है । ट्रेक्टर फेक्टरी में करोड रुपयों का शेयर लेने केलिए गृहमंत्री जबरसिंह द्वारा सरकार पर दबाब डालता है और विजयी भी होता है । फेक्टरी एवं अनुसंधानशाला की स्थापना केलिए सस्ते दाम देकर किसानों की भूमि हडप लेना चाहता है । किसान लोग विरोध प्रकट करते हैं । मज़दूर नेता कामरेड रवीन्द्र और किसान नेता मार्तंड अपने नेतृत्व में भूमि-आवप्ति के खिलाफ प्रदर्शन आयोजित करते हैं । यह देखकर सेठ राधेश्याम दोनों नेताओं को अपने घर बुलाकर शराब पिलाता है और दो-दो हज़ार रुपये देकर उन्हें खरीद लेता है। राधेश्याम की पत्नी गंगादेवी, जबरसिंह की पत्नी धनवंत कुंवर को दावत देती है और अस्सी हज़ार रुपये मूल्य के हीरे का "नेकलेस" भेंट देती है । धनवंतकुंवर इसे घूस समझ लेती है और भेंट को अस्वीकार करती है । गंगादेवी धनवंतकुंवर का अपमान करती है । इसमें धनवंतकुंवर बहुत दु:खी होती है । यह जानकर रामलोचन पाण्डे इस अपमान का बदला लेना चाहता है ।

सेठ राधेश्याम एक "स्मग्लिंग केस" में फँस जाता है तो उसे दबाने केलिए गृहमंत्री जबरसिंह उससे संबद्ध फाइल रामलोचन को सौंपता है कि वह उसकी जाँच-पड़ताल करे । जबरसिंह की इच्छा के विरुद्ध रामलोचन, राधेश्याम को गिरफ्तार करके जेल में बंद करता है । रामलोचन की इस हरकत से जगरसिंह उससे नाराज़ हो जाता है और उसको सस्पेण्ड कर दिया जाता है । पत्रकार मित्र जैकृष्ण और कवि झंझाक्त की प्रेरणा से रामलोचन पाण्डे नौकरी से इस्तीफा दे देता है और जबरसिंह के विरुद्ध चुनाव लड़ता है । जबरसिंह केलिए सेठ राधेश्याम पानी की तरह रुपये बह देता है । लेकिन चुनाव में रामलोचन पाण्डे विजयी होता है और विपक्षी दल का महत्वपूर्ण सदस्य बन जाता है । अब सेठ राधेश्याम नये मुख्यमंत्री जटाशंकर बाजपेयी को खरीदने के चक्कर में है ।

3. काली आँधी

राजनीति के क्षेत्र में स्त्री के प्रवेश करने से पारिवारिक संबन्धों में उत्पन्न तनाव और घुटन का चित्र कमेश्वर कृत "काली आँधी" के प्रदूषित वातावरण में उभरता है । खजुराहे में टूरिस्ट होटल चलानेवाला जग्गी बाबू (जगदीश वर्मा) अपनी पत्नी मालती को प्रेरणा देकर राजनीति में ले आता है । वह मालती को भाषण लिखके देता है और हिम्मत बाँधता है । इस प्रकार "मालती जी एक धमाके के साथ राजनीति में आई, सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ती हुई । जहाँ से उन्होंने शुरू किया वहाँ से पीछे मुड़कर देखने की ज़रूरत उन्हें नहीं पड़ी । पहला चुनाव उन्होंने

म्युनसिपल बोर्ड कमेटी का लडा हंगामा बहुत हुआ[1]।
लेकिन जग्गी बाबू मालती की सफलता पर खुश होता है और कहता है कि देश के निर्माण में औरतों को आगे आना चाहिए। लेकिन यहाँ से समस्याएँ शुरू होती हैं। मालती को लेकर समाज में तरह तरह की अफवाहें फैल जाती है, विशेषकर जग्गी बाबू के होटल को लेकर। मालती बदलती जाती है। वह अपने परिवार से ज़्यादा अपनी इमेज के प्रति सजग होती है और पति से होटल बंद करने केलिए हठ करती है। लेकिन जग्गी बाबू उसके लिए तैयार नहीं होता।

"सफलता मालती जीके कदम चूमती चली गयी। आवाज़ गूँजती रही, एक चुनाव से दूसरे चुनाव तक चुंगी की मेम्बरी से पार्लियामेंट के चुनाव तक[2]।" मालती की सफलता के साथ जग्गी बाबू पीछे छूटता गया। विवश होकर जग्गी बाबू होटल बंद करके बेटी लिल्लि को लेकर धर छोड्के चला जाता है। लिल्ली को पंचमढी के स्कूल और वहीं के होस्टल में भर्ती कराता है। और वह भोपाल के "गोल्डन सन" होटल में असिस्टेंड मैनेजर बन जाता है। फिर वहीं मैनेजर हो जाता है। खामोशी के कुछ वर्ष बीत जाते हैं।

---

1. कमलेश्वर - काली आँधी, पृ.5
2. वही, पृ.6

लोकसभा चुनाव में मालती को भोपाल क्षेत्र मिल जाता है । अब तक मालती राजनीति में निपुण खिलाडी बन चुकी थी । चुनाव क्षेत्र के कुछ प्रभावशाली स्थानीय सामाजिक और राजनीतिक नेताओं से बात करने केलिए सोचते वक्त मालती अपने कार्यकर्ताओं से कहती है - "उन्हें जीतना मुश्किल नहीं होगा । वक्त आने दीजिए अभी से अगर उन लोगों को यह अंदाज़ हो गया कि हमें उनकी ज़रूरत है तो उन्हें जीतना मुश्किल हो जाएगा । उन लोगों को यह एहसास होना चाहिए कि उन्हें हमारी ज़रूरत है ।

चुनाव क्षेत्र के एक छोटे-से मकान में मालती का चुनाव कार्यालय खोला जाता है । लेकिन विपक्षी उम्मीदवार चन्द्रसेन के लोग चुनाव कार्यालय को लूटकर आग लगा देते हैं । इसके बाद नेता की सुरक्षा को ध्यान में रखकर पुलिस के सलाह के अनुसार मालती का चुनाव कार्यालय होटल गोल्डन सन में खोला जाता है । वहाँ जग्गी बाबू से मिलकर मालती चौंक जाती है , लेकिन शीघ्र संभलती है । मालती मोहल्ले के प्रभावशाली व्यक्तियों को वश में कर अपने कार्यकर्ता बना लेती है । उन कार्यकर्ताओं को अपने भाषण से जीत लेती है - "देखिए, हमें विरोधी दलों के हथकण्डे नहीं अपनाने हैं । चुनाव एक पवित्र कार्यक्रम है ! हम जनता के पास अपना असली कार्यक्रम लेकर जाएगी और जनता की समझ पर निर्भर करेंगे ! पैंतरेबाजी और उठापटक का सवाल नहीं है । हम जातियों के आधार पर भी चुनाव नहीं लडेंगे क्योंकि, हमारी नीति किसी खास जाति केलिए नहीं है, पूरी जनता केलिए है[1] ।"

---

1. कमलेश्वर - काली आँधी, पृ.15

लेकिन यह कहने की बात रही । करनी से इसका कोई संबन्ध नहीं था । मालती देखती है कि गाँव और शहर में बनियों का प्रभाव है तो वह लाला दीनानाथ को, जिसका बनियों पर बडा असर है, उम्मीदवार बना देती है । सारे बनिये लाला दीनानाथ के इर्द-गिर्द जमा होते हैं तो पूर्व समझौते के अनुसार वह मालती के समर्थन में चुनाव क्षेत्र से पीछे हटता है । गाँव के लोगों को जीतने केलिए रामायण-पाठ का प्रबन्ध किया जाता है । उसमें भाग लेने केलिए भारी संख्या में एकत्रित लोगों के बीच जाकर श्रद्धा का भाव प्रकट करके मालती उनको जीत लेती है ।

विरोधी दल के लोग जाति के नाम पर वोट माँगने लगते हैं । "इस्लाम खतरे में" - कहकर सांप्रदायिक भावना जगाते हैं । शहर में सांप्रदायिक दंगे होते हैं । मालती अपने कार्यकर्ताओं के साथ दंगाग्रस्त इलाकों के लोगों को सान्त्वना देने जाती है, तो बीच में मारपीट होती है और पत्थर से मालती के माथे पर चोट लगती है । बाद में पता चलता है कि लोगों की सहानुभूति जीतने केलिए मालती के ही कार्यकर्ताओं की कार्रवायी थी ।

विपक्षी दल के लोग, महिला समाज की ओर से एक पर्चा बाँटते हैं, जिसमें मालती और जग्गी बाबू संबन्ध को लेकर मालती पर कीचड उछालने की कोशिश की गयी थी। उसमें कहा गया था कि "महिलाओं की कलंक मालतीजी को वोट न दें । हमारी परंपरा सीता, पद्मिनी, लक्ष्मीबाई

और सरोजिनी नायडू की है।[1]" लेकिन मालती झुकनेवाली नहीं थी। वह अपने विरुद्ध किये गये आरोपों के उत्तर देने केलिए जग्गी बाबू को भी मंच पर ले जाती है और अपनी सफाई पेश करती है। इसका असर जनता पर खूब पड़ता है।

इन्हीं दिनों छुट्टियाँ होने के कारण जग्गी बाबू लिल्ली को पंचमढी से ले आता है। इधर चुनाव के नशे चढने जा रहे थे। लोग व्यस्त थे। लिली भी दिलचस्पी से यह सब निहारती रहती है। आखिर चुनाव हो जाता है और मालती की जीत होती है। नागरिकों की ओर से गोल्डन सन में अभिनन्दन समारोह आयोजित किया जाता है। उस समारोह में लिल्ली, मालती से ओटोग्राफ लेने जाती है, लेकिन मालती उसे नहीं पहचानती। दिल्ली जाने से पहले मालती को गुरूसरनजी से पता चलता है तो वह जग्गी बाबू के कमरे में जाती है और दोनों को उसके साथ दिल्ली जाने का अनुरोध करती है। लेकिन स्थितियाँ इतनी बदल चुकी थीं कि ऐसा हो पाना असंभव था। मालती दिल्ली की ओर रवाना होती है और जग्गी बाबू लिल्ली को लेकर पंचमढी की ओर।

मालती की राजनीतिक सफलता से उसके पारिवारिक जीवन में उत्पन्न तनाव और उससे पीड़ित जग्गी बाबू एवं मालती के मानसिक द्वन्द्व और संघर्ष का मार्मिक चित्र उपन्यास में उभरता है।

---

1. कमलेश्वर - काली आँधी, पृ.68

वैद्यजी के पुत्र हैं बद्री और रुप्पन । बद्री पहलवान और गुण्डा है जबकि रुप्पन छंगामल इन्टर कॉलिज का छात्र नेता है । उसके अनुसार भारतीय शिक्षा - पद्धति बेकार है । इसलिए वह लडकियों की तलाश में, प्रेम-पत्र लिखने में और पॉलिटिक्स भिडाने में समय बिताता है । शिवपालगंज के दूकानदार उसके हाथों सामान बेचते नहीं, अर्पित करते हैं और इक्केवाले उसे शहर पहुंचाकर किराया नहीं आशीर्वाद मांगते हैं ।

शिवपालगंज में छंगामल इन्टर कॉजिल है जिसकी "स्थापना देश के नागरिकों को महान आदर्शों की ओर प्रेरित करने एवं उन्हें उत्तम शिक्षा देकर राष्ट्र का उत्थान हेतु हुई थी ।"[1] लेकिन आजकल कॉलिज में और कुछ हो या नहीं गुटबन्धी काफी है । "कालिज की प्रबन्ध समिति पर वैद्यजी का दबदबा है । कालिज के अध्यापक पढाने की अपेक्षा राजनीति में तत्पर रहते हैं । क्लास में अध्यापक पढाने के बदले आटा-चक्की की बात करते हैं और विद्यार्थी फिल्मी मागज़ीनों में नंगी औरतों की सूरत देखने में डूबे रहते हैं ।

वैद्यजी के यहाँ एक दरबार बराबर लगा रहता है । छंगामल इंटर कालिज के प्रिंसिपल किसी न किसी बहाने भंग का मजा लूटने केलिए वहाँ उपस्थित होते हैं । प्रिंसिपल हाफ पैंट पहने हाथ में लाठी किये फिरते हैं । उनकी आवेशपूर्ण उक्तियाँ अवधि में होती है । विविध स्कीमें बनाकर सरकारी पैसा हडपने में वे अधिक सामर्थ्य रखते हैं । किसी भी तरीके से वे अपना स्थान

---

1. श्रीलाल शुक्ल - राग दरबारी, पृ॰86

सुरक्षित रखना चाहते हैं, क्योंकि उन्हें चार बहिनों की शादी करवानी है । वे हमेशा खन्ना मास्टर से विरोध प्रकट करते रहते हैं, क्योंकि खन्ना मास्टर अपने को बाइस-प्रिंसिपल बनवाने की माँग पेश करता है ।

शिवपालगंज में बड़े- बड़े नेता आते हैं और भाषण देते हैं कि भारत गाँवों में बसा हुआ है, भारत खेतिहर देश है । आपको खेती करना है, अधिक अन्न उपजाना है । आप अपनेलिए अधिक अन्न उपजाना नहीं चाहते हैं तो देश केलिए उपजाओ । इसके अलावा अधिक अन्न उपजाओ की पोस्टर भी लगाते हैं । पोस्टर में किसान लोग केवल आदमी और औरत की तस्वीर देखते हैं, क्योंकि वे पढना नहीं जानते ।

सनीचर वैद्यजी के यहाँ भाँग पीसनेवाला है, जो वैद्यजी की बैठक में बैठा रहता है । वह मेले के दिन भीड में स्त्रियों के अंशों से खेलता है । यही सनीचर वैद्यजी के इशारे पर गाँव सभा का प्रधान चुन किया जाता है । प्रधान बनकर जितना स्वयं सनीचर प्राप्त करता है, उससे ज्यादा वैद्यजी उसके द्वारा प्राप्त करते हैं । प्रधान बन जाने के बाद उसे वैद्यजी एक दूकान खोल देता है । उसने पान, बीडी से लेकर गाँजा, भाँत और चरस तक बिकते है । होली के दिन कच्ची शराब तक बिकने लगती है । इस बीच शिवपालगंज में चोरी होती है । जोगनाथ पकडा जाता है । जोगनाथ बैद्यजी के आदमियों में से है और इसलिए चौबीस घण्डे के अन्दर जोगनाथ को पकडनेवाले दारोगजी का तबादला कर दिया जाता है । अन्त में विवश होकर दारोगाजी को जोगनाथ से माफी माँगनी पड़ती है ।

गयादीन कॉलिज की प्रबन्ध समिति का उपसचिव है । उसके सामने कॉलिज के अध्यापक शिकायत करते हैं कि प्रिंसिपल हजारों रूपये मनमाना खर्च करते हैं और आडिटवाले एतराज करते हैं, तो गयादीन उत्तर देता है कि जनता के पैसे पर दर्द दिखाना ठीक नहीं है । वह तो बरबाद होगा ही । गयादीन की एक बेटी है, बेला । अब वह बीस साल की है । कुंवरी बनी रहना उसे पसंद नहीं, और रूप्पन से उसकी आँखें चार हो गयी हैं । एक दिन रात को वह रूप्पन के कमरे में आती है और रूप्पन की चारपाई पर बैठ जाती है । दुर्भाग्यवश रूप्पन के स्थान पर बिस्तर पर रंगनाथ होता है और वह भाग जाती है ।

कोआपरेटिव यूनियन में गबन होता है । यूनियन के सुपरवाइसर यूनियन के बीज गोदाम से ट्रक में गेहूँ के बोरे लादकर शहर में बेच डालता है और गायब हो जाता है । उसके बाद यूनियन के मीटिंग में प्रस्ताव पास किया जाता है कि सुपरवाइसर ने आठ हज़ार रूपये की हानि की है और क्षतिपूर्ति केलिए सरकार अनुदान दे । बैद्यजी कहते हैं - "यदि सरकार चाहती है कि हमारी यूनियन जीवित रहे और उसके द्वारा जनता का कल्याण होता रहे तो उसे ही यह हर्जाना भरना पड़ेगा ।"[1] गबन के नाम पर वैद्यजी मैनेजिंग डाइरेक्टर के पद से इस्तीफा दे देते है । शारीरिक बल पर बद्री पहलवान यूनियन का डाइरेक्टर बन

---

1. श्रीलाल शुक्ल - रागदरबारी, पृ·86

जाता है । बद्री पहलवान बेला को अपनाना चाहता है । यह जानकर बैद्यजी बिगड जाते हैं । अन्त में निस्सहाय होकर अन्तर्जातीय विवाह को आदर्श घोषित करते हैं और गयादीन से बद्री और बेला की शादी की बात करते हैं । लेकिन गयादीन इसकेलिए तैयार नहीं होता ।

छंगामल इंटर कॉलिज में वार्षिक परीक्षा होती है । खन्ना मास्टर एक लडके को नकल करता हुआ पकडता है । लडका मास्टर को खिडकी से बाहर फेंकने की धमकी देता है । और कहता है कि प्रिंसिपल के पक्ष के होने के कारण वह पकडा गया है । खन्ना मास्टर जाकर प्रिंसिपल से रिपोर्ट करता है । लेकिन प्रिंसिपल रिपोर्ट लेने से इन्कार करते हैं और कहते हैं कि खन्ना मास्टर जहाँ पहुँच जाता है वहाँ कोई न कोई मुसीबत आ जाती है । इसी पर खन्ना और प्रिंसिपल के बीच मारपीट होती है और पुलिस बुलाई जाती है । खन्ना मास्टर कॉलिज से बाहर कर दिया जाता है । वह डिप्टी डाइरेक्टर ऑफ एजुकेशन के पास जाकर शिकायत करता है तो वह कहता है - "यह भी कोई बात हुई - यही तो सभी कॉलिजों में होती है तुम्हारे तो एक आदर्श कॉलिज है जी ।"

कॉलिज की प्रबन्ध समिति का चुनाव होता है । वैद्यजी गुण्डों की सहायता से पिस्तौल के बल पर चुनाव जीतते हैं ।

---

1. श्रीलाल शुक्ल - राग दरबारी, पृ.353

चुनाव के खिलाफ विरोधी दल शिकायत पेश करता है । इसके बारे में जो इन्क्वयरी होनेवाली थी, उसको वैद्यजी रुकवा देते हैं । खन्ना मास्टर और मालवीय से बलात् इस्तीफा दे देते हैं । रूप्पन बाबू इसका विरोध करता है और वैद्यजी उसे उत्तराधिकार से वंचित कर देते हैं ।

मास्टर खन्ना के स्थान पर अध्यापक बनने का अवसर रंगनाथ को मिलता है । प्रिंसिपल रंगनाथ को मज़बूर करते भी हैं । लेकिन रंगनाथ तैयार नहीं होता । प्रिंसिपल को कहना पड़ता है "बाबू रंगनाथ तुम्हारे विचार ऊँचे हैं । पर कुलमिलाकर उससे यही साबित होता है कि तुम गच्चे हो ।"[1]

ये सारी घटनाएँ रंगनाथ के सम्मुख घटित होती हैं और वह एक तटस्थ दर्शक मात्र रह जाता है । इन घटनाओं के द्वारा भ्रष्टाचार के कुचक्र में फँसे हुए शिवपालगंज की ज़िन्दगी का और विशेषकर निजी मैनेजमेंट में चलाई जानेवाली कॉलिजों की आज की हालत का व्यंग्यात्मक स्वरूप उभरकर सामने आता है ।

5. कटरा बी आर्जू

आपातकालीन पृष्ठभूमि पर लिखा गया राही मासूम रज़ा का उपन्यास है "कटरा बी आर्जू" । इलहाबाद के "कटरा मीर बुलाकी" नामक काल्पनिक मुहल्ला उपन्यास का केन्द्र है।

---

1. श्रीलाल शुक्ल - राग दरबारी, पृ.374

"लेखक उस मुहल्ले के अनेक सामान्य लोगों के सुख-दु:ख की ज़िन्दगी का वर्णन करते हुए उन्हें आपात-काल के दबाव से गुजरता है और आपातकाल की भयानक विसंगतियों और राजनीति के छल-छद्मों का उद्घाटन करता है ।"[1]

कटरे में ज्यादा निम्न मध्यवर्गीय एवं मज़दूर लोगों के परिवार है । इसमें एक शम्सू मियाँ का परिवार है, जो अपनी बीबी और महनाज एवं शहनाज नामक दो बेटियों के साथ रहता है । वह स्थानीय राजनेता एवं कांग्रेस एम॰पी॰ गौरीशंकर पाण्डे के नेशनल गैरेज में मैकानिक है । उसकी स्थिति यह है कि दिन-भर काम करने के बावजूद, दो वक्त का भरपेट खाना नहीं जुटा पाता । उसका जवान बेटा सुखमय जीवन का सपना देखकर पाकिस्तान चला गया था । महनाज विधवा है और शहनाज की शादी बद्रुल हसन "नायाब" मछलीशहरी से तय हुई है । लेकिन दाक्त देने केलिए मछलीशहरी के पास पैसा न होने के कारण अभी तक शादी नहीं हो पायी है । मुहल्ले का दूसरा परिवार भोलू पहलवान का है जिसकी कटरे में चाय की दूकान है । पहले वह पहलवानी करता था । पहलवान के परिवार के दो सदस्य हैं - देशराज और बिल्लो । देशराज के माँ-बाप हिन्दु-मुस्लिम दंगे में मारे गये थे और बचपन से ही पहलवान उसे अपने पुत्र की तरह पालता था ।

देशराज, शम्सू मियाँ का शिष्य और नेशनल गैरेज में मैकानिक है । बिल्लो, पहलवान की विधवा बहिन की बेटी है । इन दोनों के पालन पोषण केलिए ही पहलवान ने शादी नहीं की

1॰ डॉ॰ रामदरश मिश्र - हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, पृ॰173

थी । देशराज और बिल्लो की शादी बहुत पहले ही तय हुई थी । लेकिन अभी तक इसलिए शादी नहीं हुई थी कि बिल्लो शादी के पहले ही अपना एक घर बनाना चाहती है । इस सपने की पूर्ति केलिए वह कटरे में "जनता लाँड्री" चलाती है । और एक-एक पैसा बचाकर वह डाक घर में जमा करती है । वह पहलवान और देशराज से भी धुलाई केलिए पैसा लेती है ।

कटरे का एक और परिवार बाबूराम "आज़ाद" का है । वह निष्ठावान कांग्रेज़ी है । उसका बेटा कवि था और पुलिस ने उसे नक्सली कहकर गोली से मार दिया था । अब बाबूराम अपनी पुत्रवधु और पोता आशाराम के साथ रहता है । आशाराम पत्रकार है और वामपंथी विचारधारा रखनेवाला है । विश्व-विद्यालय में पढ़ते वक्त प्रेमा नारायण आशाराम की प्रेमिका रही । राजनैतिक मतभेद के कारण दोनों एक दूसरे से अलग हो गये । प्रेमा नारायण अब आकाशवाणी में न्यूसरीडर है । इनकम टैक्स देनेवाला भिखारी इतवारी बाबू, पुलिस दारोगा जगदम्ब प्रसाद आदि भी कटरे के रहनेवाले हैं । कटरेवाले चाहे गरीब क्यों न हो, आपसी प्यार और संबन्धों में सहजता की उनमें कमी नहीं है । उनमें धार्मिक भेद-भाव नहीं । वे एक दूसरे के सुख-दु:ख में भागीदार है ।

"जिस दिन शहनाज और मास्टर बद्रल हसन "नायाब" मछली शहरी की शादी तय हुई, उसी रात उन्होंने इस कटरे का नाम बदलकर "कटरे बी' आर्ज़ू" रख दिया । यूँ भी वह बहुत दिनों से देखते चले आ रहे थे कि उनके कटरेवालों के पास और तो कुछ नहीं पर आर्ज़ुएँ बहुत हैं ।" वह कटरे के नामपट्ट में चाकू से

---

1. राही मासूम रज़ा - कटरा बी' आर्ज़ू, पृ.11

"कटरा बीं आर्जू" लिख देता है । कटरे से रोज़ गुज़रनेवाला पत्रकार आशाराम यह नाम पढता और पसंद करता है । वह इस नाम पर एक लेख लिखता है । संपादक को लेख पसंद आता है और इसपर एक सीरियल लिखने की फरमाइश करता है और आशाराम इसमें जुट जाता है ।

"कटरे बीं आर्जू" नाम से सरकार को परेशानी होती है कि यह सरकार का तख्ता उलटने की किसी साजिश का " लोड नाम" न हो । इसे लेकर खुफिया पुलिस के कार्यालय में के·बी·ए· फाइल" खुल जाती है और पुलिस आशाराम के पीछे पड जाती है । आशाराम को इन सबका पता नहीं चलता । इस बीच आशाराम की प्रेरणा से नेशनल गैरेज के मज़दूर उचित वेतन केलिए हडताल करते हैं । लेकिन वे विजयी नहीं होते । गौरी शंकर पाण्डे मज़दूरों को वश में कर ट्रेड यूनियन बनाना चाहता है, क्योंकि वह सोचता है कि ट्रेड यूनियन नेता होने पर मंत्री पद मिलना आसान है । इसलिए शम्सु मियाँ और देशराज को वह "डिनर" पर बुलाता है और उन्हें ललचाता है । गरीबी के कारण शम्सु मियाँ आसानी से उसके हाथों बिक जाता है । लेकिन देशराज धन और यूनियन सेक्रेटरी पद के मोह में मजदूरों के अधिकारों को बलि देने केलिए तैयार नहीं होता । यहाँ पर शम्सु मियाँ देशराज से अलग हो जाता है और वह गैरीशंकर पाण्डे के मज़दूर यूनियन का प्रेसिडेंट बन जाता है । देशराज नेशनल गैरेज में भूख-हडताल करता है और वह नौकरी से निकाल दिया जाता है ।

देशराज इंदिरा गाँधी की किसी विकास योजना के अन्दर बैंक से कर्ज लेकर "इंदिरा मोटर वर्कशाप" खोलता है । धीरे-धीरे देशराज की आर्थिक स्थिति में सुधार आता है । बिल्लो और देशराज मिकर एक छोटा सा मकान बना लेते हैं और उनकी शादी होती है । इस बीच शम्सू मियाँ की विधवा बेटी महनाज की शादी जोखन से होती है जो उम्र में शम्सू मियाँ ज्यादा कम नहीं है । पहले महनाज की शादी एक दूसरे जवान से तय की थी । उसको देने केलिए बिल्लो और देशराज ने रेडियो, सैकिल, घडी आदि का भी इंतज़ाम किया था । लेकिन दुर्भायवश वह युवक मिसा के अन्दर गिरफ्तार किया गया था ।

इन्हीं दिनों इलाहाबाद हाईकोर्ट के न्यायाधीश जगमोहन का फैसला आता है कि इंदिरा गाँधी का चुनाव गैर-कानूनी है । इसके आधार पर विपक्षी दलों के नेता एवं काग्रेज के कुछ वरिष्ठ नेता इंदिरा गाँधी से त्याग पत्र की माँग करते हैं । लेकिन वे त्याग पत्र देने केलिए तैयार नहीं होती । और प्रस्तुत फैनल से उत्पन्न हलचल से बचने केलिए श्रीमति गाँधी देश में आपातकाल की घोषणा करती है । पहले तो लोगों को लगता है कि इमर्जेन्सी से गरीब लोगों की स्थिति सुधर रही है क्योंकि जो चावल, दाल, मिट्टी के तेल जैसी चीज़ें बाज़ार में न मिलती थीं, अब मिलने लगीं और दूकानों में चीज़ों की मूल्य-सूची भी प्रदर्शित होने लगी थी । बिल्लो और देशराज को यह सब देखकर खुशी होती है । लेकिन वह खुशी क्षणिक थी ।

आपातकाल की घोषणा के बाद के·वी·ए· फाइल केन्द्रीय गुप्तचर विभाग को सौंप दिया जाता है । और जाँच-पड़ताल केलिए एक अधिकारी नियुक्त किया जाता है । वह अपनी तरक्की चाहता है और इसलिए आशाराम को फँसाकर ख्याति प्राप्त करना चाहता है । स्थितियों को बिगड़ते देखकर आशाराम वहाँ से भाग जाता है । जेलखाने को को सुरक्षित महसूसकर वह बिना टिकट के रेल गाडी में सफर करता है । वह पकडा जाता है और व्याज नाम से जेल जाता है । इमर्जेन्सी के पक्ष में बोलने केलिए देशराज, बिल्लो और पहलवान आकाशवाणी में बुलाये जाते हैं । देशराज वहीं गिरफ्तार किया जाता है । आशाराम का पता लगाने केलिए देशराज को इतनी अमानवीय यातना दी जाती है कि वह पागल बन जाता है । और रातोंरात पुलिस उसे कटरे में फेंक आती है ।

महनाज "यूत कांग्रेस" में शामिल होकर देखते देखते नेता बन बैठती है । आकाशवाणी में देशराज से संबद्ध समाचार पढने के कारण प्रेमानारायण गिरफ्तार कर ली जाती है । थाने में पुलिस के जवान एक-एक करके उससे बलात्कार करते हैं । इसके बीच आशाराम अपने को पुलिस के हाथों हवाले कर देता है और कांग्रेस में शामिल होकर श्रीमति गाँधी के पक्ष में प्रचार करने लगता है । हवा को अनुकूल समझकर पडित गौरीशंकर पाण्डे, शिवशंकर पाण्डे मार्ग को चौडा करने की योजना बनाता है । पहले भी वह इसी सोच में था । योजना के अनुसार सड़क के किनारे के मकान गिराये जाते हैं । बदले में दूसरी गली में मकान की एलॉटमेंट आर्डर दी जाती है । लेकिन वहाँ कोई मकान नहीं था ।

मकान केवल कागज़ में था । इस अभियान के दौरान बिल्लो का घर भी गिराया जाता है । बिल्लो अपनी बेटी के साथ बुल्डोसर के नीचे कुचली जाती है । इसके पहले ही उसकी लॉंड्री बिक चुकी थी । इसी प्रकार संजय गॉंधी की नसबंदी योजना के अन्दर अविवाहित मास्टर बद्रल हसन नायाब की जबरदस्त नसवंदी की जाती है ।

आपातकालीन स्थिति की समाप्ति के उपरांत गौरीशंकर पाण्डे स्थितियों को बिगड़ते देखकर कांग्रेस छोड़कर जनता पार्टी में शामिल होता है । चुनाव में "कटरे बी आर्जू" से लड़ने केलिए टिकट मिलती है । आशाराम कांग्रेस का उम्मीदवार हो जाता है । प्रेमा नारायण, आशाराम के विरुद्ध प्रचार करती है । चुनाव में आशाराम हार जाता है और गौरीशंकर पाण्डे विजयी होता है । पाण्डे की सफलता की खुशी में जुलूस निकाला जाता है । पागल देशराज भीड से उत्साहित होकर आगे बढता है और जुलूस के ट्रक के नीचे कुचला जाता है । और कटरेवाले की आर्जुओं की सफलता में एक और प्रश्नचिह्न लगा देता है ।

आपातकालीन परिवेश एक ओर जहां व्यापक चित्र प्रस्तुत किया गया है वहां दूसरी ओर राही मासूम रजा ने व्यक्तियों की सूक्ष्म मनोवृत्तियों और प्रतिक्रियाओं का भी अंकन इस उपन्यास के माध्यम से किया है ।

6. महाभोज

सामंती सभ्यता से पीड़ित सरोहा नामक गाँव में बिसू (बिसेसर) नामक हरिजन युवक की हत्या होती है । उस हत्या को अपने हित में करके लोगों की सहानुभूति जीतने की कोशिश करनेवाले सत्ताधारी एवं विपक्षी राजनीतिज्ञों की कुत्सित वृत्तियों का यथार्थपरक चित्र है मन्नू भंडारी का उपन्यास "महाभो" । सरोहा में सामंती सभ्यता का बोलबाला है, जमीन्दार किसान और मजदूरों का शोषण करते हैं । पुलिस और शासक वर्ग जमींदारों के अत्याचारों का साथ देते हैं । कोई इन जमींदारों के विरुद्ध आवाज उठाता है तो उसे हमेशा केलिए बंद किया जाता है ।

सरोहा गाँव में हाल ही में हरिजन टोले को कुछ झोंपडियों पर आग लगा दी गयी थी । वहाँ के लोगों का अपराध यह था कि उन्होंने सरकार द्वारा निश्चित मजदूरी के दर की माँग की थी । आगजनी के पीछे जमींदार जोरावर का हाथ था, जो मुख्यमंत्री दा साहब की कृपा का पात्र है और वह बच जाता है । विपक्षी दल और सत्ताधारी दल के असंतृप्त गुट इस घटना से लाभ उठाना चाहते हैं । परम्परा के अनुसार जाँच पड़ताल केलिए बडे अफ़सर की नियुक्ति होती है । वे अपने बडपन और मुस्तैदी दिखाने केलिए उन दोनों कॉन्स्टबलों को सस्पेण्ड कर देते हैं, जो आगजनी के वक्त थाने में ड्यूटी पर थे ।

आगजनी से संबद्ध जाँच पड़ताल दिखावा मात्र रह जाती है । बिसू, आगजनी और जमींदारों के अत्याचारों प्रमाण जुटाकर, दिल्ली जाकर नेताओं के सामने ज़मीन्दारों का यथार्थ रूप प्रस्तुत करना चाहता है । बहुत दौड़-धूप करके प्रमाण जुटाता भी है । लेकिन दिल्ली जाने से पहले ही वह मारा जाता है । इस हत्या की खबर फैल जाती है तो खूब हंगामा होता है । सरोहा में डेढ महीने बाद चुनाव होनेवाला है । इसलिए बिसू की हत्या महत्वपूर्ण घटना बन जाती है । विधान सभा की केवल एक सीट पर होने पर भी यह चुनाव बहुत महत्वपूर्ण है । क्योंकि इस सीट केलिए भूतपूर्व मुख्यमंत्री सुकुल बाबू खुद खडा है, सत्तारूढ पार्टि के पूरे अस्तित्व को चुनौती देता हुआ । सुकुल बाबू सरोहा में भाषण देता है, हरिजनों और मज़दूरों से हमदर्दी प्रकट करता है, उनकी लडाई स्वयं लडने का बादा करता है । और कहता है - "मुझे दा साहब से न्याय मांगना है । बातें और आश्वासन नहीं, नौ-नौ आदमियों को मारनेवाला मुजरिम चाहिए । बिसू को मारनेवाला हत्यारा चाहिए ।" भाषण बाद वह सीधे बिसू का घर जाता है, उसके पिता से मिलने केलिए । लेकिन घर बंद मिलता है तो वह निराश होना है । यह सारा दिखावा लोग को अपने वश में करने केलिए किया जाता है । यथार्थ का दूसरा पहलू यह है कि जब सुकुल बाबू मुख्यमंत्री था, तब बिना कोई जुर्म के बिसू गिरफ्तार किया गया था और बिना मुकदमा चलाये चार साल जेल में रखा गया था ।

---

1. मन्नू भंडारी - महाभोज, पृ.3।

दा साहब ने अपने चेला लखन को चुनाव में खडा कर दिया है, सुकुल बाबू के विरुद्ध । इस कारण पार्टी के अन्दर ही तनाव जारी है । लेकिन दा साहब दूसरों के आगे झुकनेवाला नहीं है । वह "मशाल" के संपादक दाता बाबू को अपने यहाँ बुलाकर बातें करता है, पेपर की कोटा बढा देता है और सरकारी विज्ञापन भी । परिणाम स्वरूप मशाल दा साहब के समर्थन और प्रशंसा में लग जाता है । चुनाव जीतने और लोगों का ध्यान बिसू की हत्या से हटाने केलिए दा साहब घरेलू उद्योग योजना की घोषणा करता है और मशाल इसका खूब ढिंढोरा पीटता भी है । दा साहब सरोहा पहुँचकर सीधे बिसू के घर जाता है, बिसू के पिता हीरा को सान्त्वना देता है, उससे गले मिलता है और उसे भी सभा में ले जाकर अपने पास बिठाता है । दा साहब बडे संयम के साथ भाषण देता है, घरेलू उद्योग योजना से होनेवाली प्रगति के रंगीन सपने दिखाता है और इसे बापू के सपने का साक्षात्कार कहता है । साथ ही साथ घोषित करता है कि पुलिस विभाग से सूचना मिली है कि बिसू ने आत्महत्या की है । आगजनी के मुजरिम न पकडे जाने केलिए वह गाँववालों को जिम्मेदार बताता है, क्योंकि गाँववालों ने कोई प्रमाण नहीं दिया था । बीच में एक युवक {बिंदा} कहता है कि बिसू ने आत्महत्या नहीं की है, वह मारा गया है, तो दा साहब प्रमाण पूछता है । वह लोगों को आश्वासन देता है कि वह एक बडे पुलिस अधिकारी को भेज देगा और असली मुजरिम को पकडने केलिए उनकी सहायता करें । घरेलू उद्योग का उद्घाटन दा साहब बिसू के पिता से करवाता है । और इन सारी बातों से गाँव के लोगों को जीतने में वह सफल होता है ।

दा साहब के निदेशानुसार ए·वी· सक्सेना बिसु की मृत्यु के बारे में जाँच-पड़ताल करने केलिए सरोहा आता है । आने से पहले डी·ऐ·जी· सिन्हा उसको बता देता है कि यह आत्महत्या का मामला है, रिपोर्ट भी तैयार है । लेकिन लोगों को विश्वास दिलाने केलिए उनसे बयान लेना है और पूरी तरह लेना है । इससे सक्सेना का उत्साह बुझ जाता है । फिर भी दा साहब के कहे अनुसार वह लोगों से ऐसा व्यवहार करता है कि उनमें किसी प्रकार का आतंक न फैल पायें । फलस्वरूप लोग निडर होकर बयान देते हैं । इससे सक्सेना को मालूम हो जाता है कि यह आत्महत्या का नहीं हत्या का मामला है । सक्सेना इसे लेकर आगे बढ़ता है । जब दा साहब को पता चलता है कि जाँच पड़ताल का रुख बदल गया है और उसका नतीजा अपनेलिए हानिकारक होगा तो इन्क्वयरी का दायित्व सक्सेना से लेकर डी·ऐ·जी· सिन्हा को सौंप देता है । साथ ही साथ जाँच पड़ताल की दिशा को बदल देता है और परोक्ष रूप से संकेत भी करता है कि जिसे मुजरिम ठहराना चाहिए ।

दा साहब के मंत्रिमंडल के सदस्य अव्यवस्था के इस अवसर का फायदा उठाने की कोशिश करते हैं । पाँच मंत्री, शिक्षा मंत्री लोचन भैया के नेतृत्व में पार्टी छोड़कर विपक्षी दल से मिलके सत्ता हाथियाने का प्रयास करते हैं । पार्टी अध्यक्ष अप्पा साहिब उन्हें मनाने का प्रयत्न करता है, लेकिन सफल नहीं होता । कुशल दा साहब इन पाँचों से दो सदस्यों को वश में कर लेता है तो योजन फेल होने और अपने पद नष्ट हो जाने के डर से स्वास्थ्य मंत्री राव और विकास मंत्री चौधरी दा साहब के सामने झुक

जाते हैं । आदर्शवादी लोचन भैया समझौने केलिए तैयार नहीं होता और उसे मंत्री पद से निकाल दिया जाता है ।

विपक्षी नेता स्कुल बाबू के लोग जोरावर को भड़काकर चुनाव में खड़ा होने केलिए तैयार करते हैं । घरेलू उद्योग योजना और एस·पी· सक्सेना द्वारा की जानेवाली इन्क्वयरी के कारण जोरावर पहले ही दा साहब से नाराज़ था । लेकिन दा साहब आगजनी और बिसू की हत्या से संबद्ध फाइल दिखाकर जोरावर को जेलखाने की जिन्दगी की याद दिलाता है । इससे जोरावर डर जाता है और चुनाव लडने के फैसले से पीछे हट जाता है ।

दा साहब की इच्छा के अनुसार डी·ऐ·जी· सिन्हा रिपोर्ट तैयार कर देता है । बिसू की हत्या का जुर्म लगाकर बिसू के मित्र बिंदा को गिरफ्तार कर लिया जाता है । डी·ऐ·जी· सिन्हा को ऐ·जी· का पद मिलता है । और एस·पी· सक्सेना की मुअतली होती है । इस प्रकार दा साहब अपने शत्रुओं को पराजित कर देता है । लेकिन एस·पी· सक्सेना आगजनी और बिसू की हत्या का प्रमाण लेकर दिल्ली केलिए रवाना होता है ।

7· जंगलतन्त्रम्

स्वतंत्र भारत के पच्चीस वर्ष के इतिहास प्रतीकात्मक चित्रण श्रवणकुमार गोस्वामी के उपन्यास "जंगलतन्त्रम्" में जानवरों के माध्यम से हुआ है । इस उपन्यास में समकालीन राजनीति और समाज के भिन्न क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार, शोषण और रिश्वतखोरी का

चित्र, बच्चों के सम्मुख नानी से प्रस्तुत पच्चीस रातों की कहानी के रूप में उभरता है । इस में सिंह राजनेता का, मोर प्रशासक का, नाग पूँजीपति और चूहा आम आदमी का प्रतीक है ।

सिंह, मोर, नाग, चूहा आदि स्वर्गलोक में रहते थे । एक दिन सिंह मोर को, मोर नाग को और नाग चूहे को निगलने की कोशिश करता है तो भगवान शिवजी उन्हें स्वर्गलोक से निकाल देते हैं । शिवजी चूहे को भी अपराधी ठहराते हैं कि वह अत्याचारों को सहता है । स्वर्गलोक से वे मर्त्यलोक पहुँचते हैं । मर्त्यलोक में सिंह अपने को जंगल का राजा घोषित करता है और दूसरों को अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार पद बाँट देता है । किसी के भी सामने नाचने की क्षमता होने के कारण शासनतंत्र संभालने का काम मोर को दिया जाता है । नाग के पास जहर उगलने की खूबी और दो जीभ होने के कारण वह वाणिज्य में सफल होने का योग्य है । अत: वाणिज्य और व्यवसाय का काम उसे सौंप दिया जाता है । दुनिया में सबसे महत्वपूर्ण कार्य सेवा बताकर चूहे को वह काम सौंप दिया जाता है । चूहा अपने को निर्बल और कमज़ोर बताता है तो सिंह जंगतन्त्र की स्थापना की घोषणा करता है - "जंगलतंत्र में सबके अधिकार समान होंगे । न यहाँ कोई छोटा होगा, न बडा । यह सही है कि हम लोगों के बीच चूहा सबसे छोटा, कमज़ोर, पिछडा, अशिक्षित दलित और दु:खी है, इसलिए उसकी उन्नती एवं समृद्धि पर हम सबसे ज्यादा ध्यान देंगे । चूहे की शिकायत को जट से मिटा देना हमारा संकल्प होगा ।"[1]

---

1. श्रवणकुमार गोस्वामी - जंगल तन्त्रम्, पृ·22

"जंगलतंत्र" की घोषणा से मोर और नाग आहत होते हैं और चिंता के कारण उन्हें नींद नहीं आती । वे जंगलतंत्र का विरोध करने केलिए सिंह के पास जाते हैं । सिंह दोनों से अलग अलग मिलता है । मोर शिकायत करता है कि जंगलतंत्र की स्थापना से चूहे को आवश्यकता से अधिक महत्व दिया जा रहा है और वह आगे चलकर किसी को न मानेगा । यह सुनकर सिंह उत्तर देता है - "जिसे उल्लू बनाना होता है उसे कुछ चढ़ाना भी पड़ता है क्या तुम नहीं जानते कि दुधारू गाय की लोग लात भी बर्दाश्त कर लेते हैं ? चूहे के ऊपर हम सबका बोझ है, इसलिए उसे हवा देना ज़रूरी था[1] ।" फिर वह जंगलतंत्र की व्याख्या करता है - "जंगलतंत्र का एक संविधान होगा, जिससे कहा जाएगा - जंगलतंत्र एक ऐसी शासन व्यवस्था है जो जंगल के लोगों की है, जंगल के लोगों द्वारा संचालित है और जंगल के लोगों केलिए है[2] ।" संविधान लिखने का दायित्व मोर को सौंपता हुआ सिंह कहता है "देखो, उसमें यह लिखना कभी मत भूलना कि जंगल की राजभाषा जंगली-भाषा होगी, पर अभी काम चलाने केलिए मोर-भाषा का प्रयोग उस समय तक किया जाएगा जब तक कि जंगली-भाषा का पूरा विकास नहीं हो जाता[3] ।" सिंह मोर को समझाता है कि संविधान में दिये गये आश्वासन देखकर चूहा और उसकी बिरादरी के लोग संतुष्ट रहेंगे । जब तक ये संतुष्ट रहेंगे, हमारे ऊपर किसी प्रकार का भी संकट नहीं आ पाएगा ।

---

1. श्रवण कुमार गोस्वामी - जंगलतंत्रम, पृ.24
2. वही, पृ.24
3. वही, पृ.24

"जंगलतन्त्र" की स्थापना पर नाग आपत्ति प्रकट करता है तो सिंह उसे समझाता है कि धन ही संसार में सबसे बडी चीज़ है । धन कमाने के अनेक उपाय है । वाणिज्य-व्यापार से धन मिलता है । यह दुनिया तो बनियों की है । धन है तो मोर भी और चूहा भी वश में आयेगा । सिंह यह भी कह देता है कि धन से गद्दी भी प्राप्त की जा सकती है । यह सुनकर नाग खुश होकर लौट जाता है ।

जंगलतन्त्र लागू हो जाने के बाद चूहे की परेशानी बढ जाती है । खाने-पीने की और आवश्यक चीज़ें मिलना कठिन हो जाता है और मिलती भी है तो दुगुने दाम पर । विवश होकर वह सिंह के सामने प्रदर्शन करता है और उसके विरुद्ध नारे लगाता है । नारे सुनकर सिंह बाहर आता है और जुलूस को संबोधितकर भाषण देता है । चूहे को आश्वासन देता है कि दोषियों के खिलाफ कडी से कडी कार्रवाई की जाएगी । सिंह मोर को बुलाकर इन सबका कारण पूछता है । लेकिन इसके पहले ही नाग ने धन और नागिन के द्वारा मोर को वश में कर लिया था, और मनमानी ढंग से धंधा करने लगा था ।

मोर चूहे को बुलाकर खूब खिलाता है और उसे विश्वास दिलाता है कि चूहे के शोषण के पीछे सिंह का हाथ है । वहाँ से लौटते वक्त रास्ते में चूहे को नाग मिल जाता है । नाग उसे अपना घर ले जाता है । वह चूहे को खूब खिलाता है और कहता है कि वह चूहे का शत्रु नहीं है । चीज़ों का दाम बढने का असली कारण मोर है, मोर नाग से रिश्वत लेता है और उसे तंग

करता है । सिंह और मोर की नीतियों का पर्दाफाश करने केलिए नाग प्रेम खोल देता है और चूहा संपादक बनकर उसे संभालने लगता है । अगले दिन से सिंह एवं मोर की काली करतूतों का समाचार निकलने लगता है । यह देखकर सिंह जंगलवाणी द्वारा घोषणा करता है कि वह जंगल में मंगलवाद लाना चाहता है । चूहा इसका समर्थन करता है और सिंह की प्रशंसा भी । सिंह बैंकों का जंगलीकरण करता हैं । चूहा इस कदम का भी समर्थन करता है तो नाग अखबार बंद करने की धमकी देता है । लेकिन सिंह चूहे को अखबार के जंगलीकरण करने का आश्वासन देता है ।

इन्हीं दिनों में चुनाव की घोषणा होती है । नाग सिंह के विरुद्ध खडा होता है । लेकिन नाग चुनाव केलिए सिंह को खूब चंदा भी देता है । इन धन के बल पर सिंह चुनाव जीतता है । इसके बीच देश में बाढ़ आ जाती है, तूफान भी । समाचार पत्र द्वारा चूहा, बाढ और तूफान से पीडितों की ओर सबका ध्यान आकर्षित करता है । चारों ओर से रिलीफ के काम केलिए चीज़ें आने लगती है । लेकिन ये सारी चीज़ें सिंह के ही दल के सदस्यों के बीच बाँट दी जाती हैं । यह देखकर चूहा मोर से इसके बारे में पूछता है, तो मोर सिंह का लिखित आदेश दिखाता है । चूहा एक बार फिर सिंह के विरुद्ध लिखने लगता है और सिंह के विरुद्ध जुलूस निकालता है ।

सिंह अखबार पर प्रतिबन्ध लगा देता है । चूहा इसके विरुद्ध जंगल की सबसे बडी अदालत में एक अपील दायर कराता है । इसमें चूहे की जीत होती है । इस अवसर पर जंगलिस्तान जंगल पर आक्रमण करता है । युद्ध के इस अवसर पर एकता और

देश-प्रेम की भावना से प्रेरित होकर सब के सब "जंगल सुरक्षा कोष" को दिल खोलकर दान देते हैं । जंगल की सेना अभूतपूर्व वीरता प्रकट करती है और जंगलिस्तान की बहुत सी ज़मीन पर कब्जा कर लेती है । लेकिन सिंह समझौता करके दुश्मन की भूमि लौटा देता है । जिन्होंने "जंगल सुरक्षा कोष" को दिल खोलकर दान दिया था और जिनके सैनिक बेटे युद्ध के दौरान मारे गये थे, उन्हें घोर निराशा होती है । युद्ध में चूहे के वर्ग के सदस्य अधिक मारे गये थे । अब चूहा समझ लेता है कि सिंह, मोर और नाग तीनों वर्ग उसके शत्रु हैं और चूहा उनके विरुद्ध जुलूस निकालता है । जोश में आकर जुलूस के सदस्य नाग के कुछ माल गोदाम लूटते हैं और उनमें आग लगा देते हैं । मोर और नाग भयभीत होकर सिंह की शरण में आते हैं । चूहे का जुलूस सिंह की राजधानी घेर लेता है और आग लगाने की धमकी देता है । सिंह चूहे को समाप्त करने का आदेश देता है और जंगलवाणी एवं समाचार पत्र के कार्यालयों के समाचार भिजवा देता है - "जेल में प्लेग फैल जाने से अनेक कैदियों की मौत हो गयी है, जिनमें एक चूहा भी था[1] ।"

चूहा स्वर्गलोक पहुँचकर ये सारी बातें शिवजी को बता देता है । बातें सुनकर शिवजी कहते हैं - "तू अपनी शक्ति को पहचान । दूसरों की जय जयकार, करना और किसी के पीछे - पीछे चलने की आदत छोड़ा । जिस तरह झाड़ू से गंदगी दूर की जाती है, उसी तरह तू अपने वोट से उन सबका सफाया कर सकता है - जो तेरे दुश्मन हैं[2] ।" भगवान के उपदेश से उत्साहित होकर दृढ संकल्प के साथ चूहा जंगल की ओर लौटता है ।

---

1. श्रवणकुमार गोस्वामी - जंगलतन्त्रम, पृ.122
2. वही, पृ.125

8. महामहिम

जनता सरकार के शासन काल के आधार बनाकर लिखा गया, किन्तु प्रत्येक सरकार पर लागू उपन्यास है "महामहिम"। उपन्यासकार प्रतीप पंत के शब्दों में "यह उपन्यास राजनीति के चरित्रहीन चरित्र को उजागर करने का प्रयास है। हममें से कोई भी न तो राजनीति से बच सकता है और न राजनीति बुरी चीज़ है। लेकिन राजनीति का इस्तेमाल व्यापक मानव हितों केलिए न करके निजी स्वार्थों, जोड-तोड, सांप्रदायिकता का जहर फैलाने और सत्ता के दुरूपयोग केलिए करना बुरी बात है। यह सिद्धांतहीन और अमानवीय राजनीति है। यह व्यंग्य उपन्यास एक प्रकार से सिद्धांतहीन और अमानवीय राजनीति के प्रति विरोध प्रदर्शन ही है।[1]"

उपन्यास में चित्रित राज्य की राजनीति की बागडोर केन्द्रीय मंत्री राजा चन्द्रिका प्रताप सिंह के हाथ में है। चुनाव में उसकी पार्टी को सफलता मिलती है तो चन्द्रिका प्रताप सिंह सोच में पड जाता है कि मुख्यमंत्री किसे बनायें। फिर इसका दायित्व अपने निकटतम चमचा लुभावन को सौंपता हुआ कहता है - "जितने एम.एल.ए. चुने गये हैं, सबकी इमेज खराब है। इसलिए ऐसा आदमी लाओ जिसकी कोई इमेज ही न हो। न अच्छी, न बुरी। यति ऐसा आदमी जो किसी पद पर न रहा हो।[2]" लुभावन

---

1. प्रदीप पंत - महामहिम, पृ.6
2. वही, पृ.13

मुख्यमंत्री पद केलिए योग्य व्यक्ति की खोज में लग जाता है । अगले दिन सबेरे अपने किसी रिश्तेदार के लड़के को मेडिकल कालिज में दाखिला दिलाने केलिए तोताराम नामक एक व्यक्ति लुभावन के यहाँ आता है । लुभावन को तोताराम मुख्यमंत्री पद केलिए उचित व्यक्ति लगता है । चन्द्रिका प्रताप के बताये गये सारे गुण तोताराम में विद्यमान थे । लुभावन तोताराम को चन्द्रिका प्रताप के यहाँ ले जाता है और चन्द्रिका प्रताप उसे स्वीकृति दे देता है ।

राज्य के चुने गये सदस्यों को पता चलता है कि उनमें से कोई मुख्यमंत्री नहीं होनेवाला है, उस पद केलिए केन्द्र से चन्द्रिका प्रताप का कोई आदमी आ रहा है, तो उसके ही दल के असंतुष्ट सदस्य जटाधर शुक्ल के नेतृत्व में गुप्त मंत्रणा करते हैं । जटाधर शुल्क को मालूम होता है कि वे अल्पमत हैं, और विरोध प्रकट करें तो हार जाएंगे । इसलिए वह अपने सदस्यों को उपदेश देता है कि चुपचाप चार-पाँच मंत्री पद हासिल करना और उचित मौके की प्रतीक्षा करना ही अच्छा है । इसके बाद वह गुप्त रूप से लुभावन से मिलता है । लुभावन उसको उपदेश देता है कि तोताराम को सर्वसम्मति से चुन लो और अपनेलिए कोई महत्वपूर्ण विभाग चुन लो । लुभावन के कहे अनुसार जटाधर शुक्ल ही मुख्यमंत्री पद केलिए तोताराम के नाम का प्रस्ताव रखता है और वह सर्व-सम्मति से चुन लिया जाता है । लेकिन चन्द्रिका प्रताप औरभी चालाक निकलता है । तोताराम मंत्रिमंडल के सदस्यों की सूची में जटाधर शुक्ल का नाम न लगाकर जटाधर के गुट के तीन चार आदमियों का नाम लगा देता है । ऐसा करके चन्द्रिका प्रताप जटाधर शुक्ल के गुट को तोड देता है । खूबी इस बात की है कि

चन्द्रिका प्रताप ने तोताराम के नाम का प्रस्ताव जटाधर शुक्ल से ही कराया था । जटाधर शुक्ल तड़पकर रह जाता है ।

राजनीति की दाँव-पेंचों से अपरिचित तोताराम चीफ सेक्रेटरी के आने पर उठ खड़ा हो जाता है । चीफ सेक्रेटरी उसे बता देता है कि आप राज्य के सबसे उच्च अधिकारी है, इसलिए आपको किसी के भी आने पर खड़ा नहीं होना चाहिए । इसके बाद विधानमंडल के अधिवेशन में राजपाल के आने पर तोताराम उठने को तैयार नहीं होता, किसी के कहने पर भी । इसपर विधानसभा में सत्ताधारी और विपक्षी दलों के बीच मारपीट होती है ।

सार्वजनिक निर्माण और आवास मंत्री जनार्दनसिंह जो जटाधर शुक्ल के गुट का था और मंत्री पद मिलने पर उसे छोड़कर गया था, अब जटाधर से कोठी खाली करवाना चाहता है । जटाधर शुक्ल पुरानी "सुखा सहन कोष" के गबनेवाली फाइल की याद दिलाता है तो जनार्दनसिंह चुप हो जाता है । जटाधर शुक्ल विपक्ष के नेता पंडित परमात्मा प्रसाद से मिलकर तोताराम पर अविश्वास का प्रस्ताव रखना चाहता है । यह जानकर तोताराम राज्यपाल से कहकर विधान सभा का अधिवेशन अनिश्चित अवधि तक स्थगित करा देता है । राज्यपाल ऐसा करने केलिए विवश था, क्योंकि "लोकसभा के चुनाव में जमानत जब्त करा बैठने के बाद जब वह सक्रिय राजनीति से एकदम निष्क्रिय हो गये थे और निठल्लों की भाँति चप्पलें चटकाते फिर रहे थे, तब चन्द्रिका बाबू ने ही उन्हें राज्यपाल के पद पर बैठा कर धन्धे से लगाया था ।"[1]

---

1. प्रदीप पंत - महामहिम, पृ.73

राज्य में भयंकर बाढ आती है । प्रदेश के सिंचाई मंत्री नौरंगीलाल बाढ से पीड़ित लोगों की सहायता केलिए चंदा उगाऊ समितियाँ बनाता है और उसके खास आदमी इन समितियों के अध्यक्ष, सचिव एवं कोषाध्यक्ष के पद संभालते हैं । इनके द्वारा कई लाखों रूपये हडप लेता है । विपक्ष आरोप लगाता है कि नौरंगीलाल और तोताराम ने मिलकर चंदा खा लिया है और बाढ की समस्या हल करने में सरकार विफल रही है । विपक्ष सरकार के विरुद्ध जुलूस निकालता है । जुलूस में पुलिस लाठीचार्ज करती है और गोली चलाती है । जुलूस में कुछ विद्यार्थी भी थे । विद्यार्थियों के प्रति हुए अत्याचार के विरुद्ध विश्वविद्यालय में हलचल मच जाती है । उनकी मांगों में एक यह भी होती है कि बिना परीक्षा के उन्हें पास करा दिया जाय । सरकार के विरुद्ध वे जुलूस निकालते हैं । पुलिस की सहायता से तोताराम उसे भी दबा लेता है ।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अध्यक्ष एवं तोताराम सरकार में सांस्कृतिक मामलों के मंत्री स्वामी ब्रह्मचारी अपने दो-तीन आदमियों को मंत्री पद दिलाने केलिए तोताराम पर दबाव डालता है । तोताराम दबता नहीं है तो ब्रह्मचारी के स्वयंसेवक राज्य में साम्प्रदायिक दंगा भड़काते हैं । ब्रह्मचारी जटाधर शुक्ल से मिलकर तोताराम को पदच्युत करके सत्ता हथियाने की योजना बनाता है । लेकिन लुभावन के कहे अनुसार तोताराम विपक्षी नेता पंडित परमात्मा प्रसाद पर साम्प्रदायिक दंगे के दायित्व का आरोप लगाकर उसे हवालत में कर लेता है । ब्रह्मचारी से गुप्त-समझौता करके उसके आदमी को गृहमंत्रालय सौंप देता है । अगले दिन विधानसभा की बैठक में जटाधर शुक्ल तोताराम को बलपरीक्षा केलिए ललकारता है ।

तोताराम ने इसकेलिए सादे कपडे में पुलिस को दर्शकों के बीच बिठाया था । बलपरीक्षण शुरू होने पर जटाधर शुक्ल सहायता केलिए ब्रह्मचारी और उसके स्वयंसेवकों को देखता है । लेकिन ब्रह्मचारी, जिसने तोताराम से समझौता करके अपने आदमी के एक और मंत्री पद ते किया था, अपने आदमियों के साथ वहाँ से पहले ही खिसक लिया था । बल परीक्षण में जटाधर शुक्ल लहुलुहान बेहोश गिर पड़ता है । तोताराम विजयी होकर बाहर निकलता है ।

९. हज़ार घोडों का सवार

राजस्थान की सामंतवादी पृष्ठभूमि पर लिखित यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र" का एक महाकाव्यात्मक उपन्यास है "हज़ार घोडों का सवार" । बीसवीं शताब्दी के आरंभ से लेकर १९५१ के आम चुनाव तक के सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक स्थितियों का यथार्थपरक चित्र इस उपन्यास में प्रस्तुत है । यह उपन्यास दो पीढियों की कहानी है । यहाँ के ग्रामीण समाज एक ओर सामंतवादी अर्थव्यवस्था से पीडित है तो दूसरी ओर छुआछूत की सामाजिक रूढियों से ।

बीकानेर में रहनेवाला एक चमार है मेघू । वह जूतियाँ बनाकर अपने परिवार का पोषण करता है । गीधू, मेघू का बेटा है । गरीब एवं दलित वर्ग के होने के कारण मेघू अपने बच्चों को शिक्षा नहीं दे पाता । लेकिन मेघू सोचता है कि चमार को भी मनुष्य की तरह जीने का हक है । अपने पिता के प्रगतिशील विचारों से प्रभावित गीधू आत्माभिमानी बन जाता है ।

निम्न-वर्ग की दुर्दशा देखकर दुखी होता है और उसे दूर करने केलिए संघर्ष करता है । उसे मालूम होता है कि अंधविश्वास और रूढियों से लोगों को मुक्ति दिलाना उतना आसान काम नहीं है ।

गीधू का मिलन अलगरजिया बाबा नामक साधू के होता है । अलगरजिया बाबा के क्रांतिकारी विचारों से वह प्रभावित होता है । अलगरजिया बाबा छुआछूत और जाति प्रथा को नहीं मानते थे । वे ईश्वर और धर्म के नाम पर होनेवाले अनाचार और शोषण के विरुद्ध थे । उनके अनुसार आदमी केवल आदमी है और आदमी पर जाति और धर्म लादे जाते हैं । छुआछूत और शोषण से मुक्ति का एकमात्र उपाय आर्थिक निर्भरता है । इसकेलिए व्यवस्था की सारी कुत्सित परंपराओं को जड से उखाडना चाहिए ।

बाबा के विचारों से प्रभावित गीधू हर कहीं अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने लगता है । इसके बीच उसके पिता मेघू की मृत्यु होती है । गीधू कर्ज लेकर पिता के औसार में धन व्यर्थ ही खर्च करने से इनकार करता है । लेकिन मां, पत्नि और समाज के दबाव के कारण सूदखोर से पैसा लेकर अपनी इच्छा के विरुद्ध खर्च करना पडता है । तनतोड मजदूरी करने पर भी वह परिवार का पोषण नहीं कर पाता । कर्ज दिन व दिन बढता जाता है । इन दिनों पूंजीपतियों और धर्म के ठेकेदारों के हाथों अलगरजिया बाब मारा जाता है तो ज़िन्दगी के प्रति गीधू के मन में वितृष्णा पैदा होती है । अभाव मे पीडित घर के

शांतिहीन वातावरण से ऊबकर वह घर छोड़के चला जाता है और सन्यास ग्रहण करता है । साधू होकर भटकता हुआ हरिद्वार के एक आश्रम में पहुँचता है । वहाँ उसे धर्म के नाम पर होनेवाले व्यभिचार और अत्याचार का पता लगता है । साधू-जीवन से भी वह ऊब जाता है और एक दिन आश्रम से भाग जाता है । अपने यथार्थ का पोल खुल जाने के भय से आश्रम का महंत गीधू पर चोरी करके भागने का आरोप कर थाने में शिकायत दर्ज कराता है और गीधू पकडा जाता है । चंद महीने वह जेल में काटता है ।

जेल से सीधे वह घर जाता है और फिर गृहस्थी में जुड जाता है । मामा के साथ खेती करने लगता है । मामा की एक गाय को जमींदार के आदमी पकड ले जाते हैं तो गीधू उसे वापस लेने जाता है। उधर ठाकुर का आदमी सीधू पर लाठी चलाता है तो गीधू उसके हाथ तोड डालता है । इससे भयभीत होकर मामा गीधू को भवलपुर भेज देता है । भवलपुर में आकर गीधू देखता है कि इधर हिन्दू धर्म के लोग विधवाओं को इस तरह तंग करते हैं कि वे मुसलमानों के भटकाव में आकर धर्मपरिवर्तन कर उनकी रखैल बन जाती है । लेकिन उनकी स्थिति में कोई सुधार नहीं आता । गीधू इस धर्म-परिवर्तन का विरोध करता है । विधवाओं को आत्मनिर्भर होने का उपदेश देता है और उनकी सहायता भी करता है । इससे वह मुसलमानों का शत्रु बन जाता है और उसे भवलपुर छोडना पड़ता है ।

घर लौटकर गीधू मज़दूरी करने लगता है । मासी के यहाँ भोजन करता है और समाज से भ्रष्ट घोषित किया जाता है । उसकी बेटी मिनकी की शादी पहले ही ते हुई थी । लेकिन अब वर के घरवाले इस शादी से इनकार करते हैं कि भ्रष्ट पिता की बेटी से शादी करके वे समाज से भ्रष्ट होने नहीं चाहते । परिवार के लोग प्रायश्चित्त करने केलिए गीधू को विवश करते हैं । प्रायश्चित्त है - "पंचो को भोज देना और उनके जूतों को सिर पर रखना"। गीधू को विवश होकर प्रायश्चित्त करना पड़ता है । इस घटना से वह टूट जाता है और घर छोड़कर फौज में भर्ती होता है ।

फौज में काम करते हुए गीधू खूब सैर करता है । बंगाल की दुर्भिक्षा के दौरान गीधू अपनी आँखों से देखता है कि भूख से पीड़ित लोग मुट्ठी भर दाने या दो रोटी केलिए अपनी जवान बेटी को औज़ी अफ़सरों को सौंप देते हैं । वह समझ लेता है कि दुनिया में भूख से बढ़कर कोई समस्या नहीं है । फौज में आना भी उसे व्यर्थ और अर्थहीन लगता है । वहाँ पर किसी से "आज़ाद हिन्द फौज" के बारे में सुनता हैं और उसमें शामिल होना चाहता है । फौज से भागने की कोशिश में मित्र की अप्रत्याशित मृत्यु से उसका मन उब जाता है । युद्धोपरांत फौज से निवृत्त होकर घर आता है । कुछ दिन बाद माँ हीरी की मृत्यु होती है । पत्नी के हठ करने पर फौज की नौकरी से कमाया सारा धन माँ की औसार में खर्च कर देता है । इसके बाद जीविका केलिए पैदल जाकर गाँवों में कम्बल बेचने का काम करता हैं ।

इसी बीच भारत स्वतंत्र होता है और कांग्रीसराज कायम होता है । गीधू और उसके दोस्त विभाजन से पीड़ित लोगों की सेवा में लग जाते हैं । भारत के स्वतंत्र होते ही अंग्रेज़ों के चाटुकार और गरीबों के शोषक सेठ, साहुकार एवं ज़मीन्दार खद्दर की पोशाक पहनकर जनसेवक के मुखौटा ओढकर सामने आ जाते हैं । यहाँ से संसद एवं विधान मंडल चुनाव में टिकट हासिल करने की होड शुरू होती है । धनिक, धन के बल पर लोगों को जीतने की कोशिश करते हैं । गीधू को भी प्रलोभन दिया जाता है । गीधू अपने को बेचने केलिए तैयार नहीं होता । अंत में अपने लोगों की इच्छा के अनुसार और अपनी इच्छा के विरुद्ध हरिजनों केलिए आरक्षित सीट पर गीधू चुनाव लडता है और विजयी होता है ।

विजयी होकर संसद में पहुंचता है तो उसे मालूम होता हैकि इधर दलबाजी, जाति, धर्म, ट्रान्सफर, लाइसेंस और पेरमिट की राजनीति से बढकर और कुछ नहीं होता है । जनसेवा के नाम पर नेतालोग आत्मसेवा करते हैं । पद और सम्मान मिलने पर आदमी बदल जाता है, आदर्श भुला दिया जाता है । सेठ दौलतचंद गीधू को फँसाता है और एक जीप उसे भेंट के रूप में देकर उसे अपनी उंगलियों पर नचाता है । एक हरिजन सदस्य उसे जगजीवन राम के पास ले जाता है । उसे लगता है कि सब कहीं दलबाजी ही है ।

गीधू के चुनाव क्षेत्र के ठाकुर लोग अछूतों को कूवे से पानी देना बन्द कर देता है । गीधू इसके विरुद्ध कदम

उठाता है । अछूतों के ढोंगी नेता चतुर्भुज सेठों से मिलकर गीधू को रास्ते से हटाने की योजना बनाता है और ठाकुर तेजसिंह की गोली खाकर गीधू शहीद हो जाता है । मंत्री और राजनेता गीधू की प्रशंसा में वक्तव्य दे लाडते हैं । सम्मान के साथ गीधू का दाह संस्कार किया जाता है और गीधू की एक मूर्ति स्थापित की जाती है । इन सबके बावजूद उसकी विधवा जानकी और परिवार केलिए वह पुराना मकान का ही सहारा रह जाता है ।

10. दारुलशफा

राजकृष्ण मिश्र का लिखा हुआ "दारुलशफा" आज की सत्तालोलुप राजनीति का पर्दाफाश करनेवाला उपन्यास है । "उपन्यास की कथावस्तु कुछ घण्डों की है और दारुलशफा इसका केन्द्र है । "दारुलशफा" एक स्थान न होकर एक विशेष प्रकार की भोगप्रधान संस्कृति का जीवन्त प्रतीक है[1]।" आज की राजनीति जिस प्रकार विचारों और आदर्शों के स्तर से नीचे उतरकर सत्ता प्राप्ति केलिए किये जानेवाले क्रूर और घृणित जोडतोड की राजनीति रह गयी है, "दारुलशफा" इसका प्रामाणिक दस्तावेज है[2]।"

उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ में बडी हलचल मची हुई है । तीन महीने के राष्ट्रपति शासन के बाद पार्टी का मंत्रिमंडल बनने जा रहा है । दिल्ली से पार्टी अध्यक्ष और

---

1. रामचन्द्र तिवारी - समीक्षा - अप्रैल-जून 1983, पृ.39
2. वही, पृ.39

G 5105

केन्द्रीय मंत्री गुरूपद स्वामी पहुँचे गुरूपद स्वामी राज्य के भूतपूर्व मुख्यमंत्री हैं और उत्सुकदास के राजनैतिक गुरू भी । उत्सुकदास गुरूपद स्वामी के मंत्रिमंडल का सदस्य रह चुका है । मंत्री रहते वक्त गुरूपदस्वामी के आडमें उत्सुकदास ने राजनीति में घिनौने खेल के जरिए पार्टी में महत्वपूर्ण स्थान पाया था और लाइसेंस, कोटा, पेरमिट आदि के अलॉटमेंट द्वारा कालेबाजारियों और ठेकेदारों का अपना आदमी बन गया था और करोडों कमाया था । उत्सुकदास की सहायता से रद्दी खरीदनेवाला कमोडी लाखों का कारोबर करनेवाला कामयाब सेठ बन गया था । उत्सुकदास के हिस्सेदार हैं कृष्णवल्लभ यादव और उसके भाई अफीमखेती और कालेबाजारी करनेवाला यशोधा वल्लभ । कृष्णवल्लभ गुरूपदस्वामी के मंत्रिमंडल में विद्युत मंत्री रह चुका है । यशोधवल्लभ राष्ट्रीय निर्माण संघ के नाम पर भूमिबंधक बैंक से पैसा लेकर बीस एकड में अफीम की खेती करता है । उसके गुण्डों का अपना एक गिरोह है ।

गुरूपद स्वामी के मंत्रिमंडल में रहते वक्त उत्सुकदास कृष्णवल्लभ से मिलकर विद्युत विभाग के दो करोड रूपये का ताँबा, राष्ट्रीय निर्माण संघ के नाम सत्तर लाख रूपये में एलॉट करने केलिए फाइल मुख्यमंत्री को भेजता है । मुख्यमंत्री को बताता है कि ताँबा राज्य के छोटे छोटे उद्योगशालाओं में बाँटने केलिए है । लेकिन ताँबा विदेशी कालाबाजारियों को बेच दिया जाता है । तस्करी पकडने केलिए ईमानदार एवं कर्मठ पुलिस अफसर फूलदास नियुक्त किया जाता है । फूलदास गुरुपदस्वामी के छोटे भाई की पत्नी बाईजी का गोद लिया पुत्र है । राष्ट्रीय निर्माण संघ के दो ट्रक अफीम के बीच छिपाये गये ताँबे के साथ फूलदास द्वारा पकडे जाते हैं ।

यशोधावल्लभ डकैत दुर्लभकाछी के द्वारा फूलदास की हत्या कराता है । अखबारों में ताँबा काँड की चर्चा ज़ोर पकड लेती है ।

उत्सुकदास दिल्ली जाकर नेताओं से मिलता है । और अपनेलिए मुख्यमंत्री पद सुरक्षित कर लेता है । बहुत कोशिश करके मन्त्रिमंडल में कृष्णवल्लभ का नाम भी लगा देता है । प्रधानमंत्री यह आदेश देकर पार्टी अध्यक्ष को लखनऊ भेजते हैं कि मन्त्रिमंडल के नेता के रूप में उत्सुकदास चुन लिया जाय और चुनाव सर्वसम्मति से हो । केन्द्रीय मंत्री गुरुपदस्वामी भी यही चाहता है, क्योंकि वह डरता है कि उत्सुकदास मुख्यमंत्री न हो जाय तो केन्द्र में अपना स्थान सुरक्षित नहीं रहेगा । इसलिए वह किसी भी प्रकार उत्सुकदास को मुख्यमंत्री बनाना चाहता है ।

भ्रष्टाचारी एवं हत्यारों के संरक्षक उत्सुकदास का मुख्यमंत्री बनना, असंतुष्ट गुट के नेता रंगीनराय सह नहीं पाता । वह हरिजन नेता लोबीराम से मिलकर उत्सुकदास के विरुद्ध साजिश करता है । "ताँबा काँड" और और उत्सुकदास से संबद्ध भ्रष्टाचार की सूची तैयार करता है । नेता के चुनाव केलिए आयोजित पार्टी मीटिंग में विस्फोड करने की तैयारियाँ करता है । रंगीनराय मीटिंग के पहले पार्टी अध्यक्ष को बुलाकर चाय पिलाता है और अपने गुट के सदस्यों के साथ उत्सुकदास पर अपनी असंतुष्ट प्रकट करता है ।

उत्सुकदास को अपने विरुद्ध रंगीनराय और लोबीराम की साजिश का पता चलता है, तो वह लोबीराम को जीतने केलिए कामयाब सेठ से पाँच लाख रूपये मंगवाकर, विमलादेवी को रूपये के साथ लोबीराम के यहाँ भेज देता है । लोबीराम तो उत्सुकदास से समझौते केलिए तैयार था, क्योंकि उसे तिजोरियाँ भरने की आशा से अलग कोई आदर्श नहीं है । लेकिन देर तक इंतजार करने के बाद भी उत्सुकदास से कोई सूचना नहीं मिलती तो वह रंगीनराय से जा मिलता है । जब तक विमलादेवी पहुँच जाती है, लोबीराम का रांगीनराय के साथ सौदा हो चुका था । इसलिए लोबीराम विमला देवी से बात करने को भी तैयार नहीं होता । लेकिन विमला देवी हार मानने को तैयार नहीं थी । वह लोबीराम के सामने नंगी हो जाती है और उसे यौन-जाल में फँसाकर ले जाती है । किसी को पता नहीं चलता कि लोबीराम कहाँ है । पार्टी मीटिंग में वह शामिल नहीं होता ।

मीटिंग शुरू होती है । रंगीनराय चुनौती देने केलिए तैयार रहता है । लेकिन उसको पार्टी अध्यक्ष बना दिया जाता है और पार्टी की एकता के नाम पर दूसरों के चुप कर दिया जाता है । फूलदास की हत्या के जिम्मेदार कृष्णवल्लभ यादव को पार्टी की सदस्या से निलम्बित कर दिया जाता है । और उत्सुकदास सर्व-सम्मति से नेता चुन लिया जाता है ।

।।· समय एक शब्द भर नहीं है

नक्सलवाद के आधार और उसकी मूलभूत चेतना को ढूँढने का प्रयास है धीरेन्द्र आस्थाना का उपन्यास "समय एक शब्द भर नहीं है । उपन्यास में आन्दोलन, हड़ताल, पुलिस अत्याचार एवं

सरकार की दमन नीति का चित्र उभारता है । साथ ही साथ मनुष्य की ज़िन्दगी और चिन्तन में परिवर्तन लाने की, समय की क्षमता को भी दर्शाने का प्रयास किया गया है ।

टेकचन्द, एक काग्रेस नेता का बेटा है । बचपन से ही वह असाधारण चरित्र का रहा है । अक्षरमाला पढते समय स्लेट से वह मास्टर का सिर फोड देता है । कॉलिज में पढते वक्त एक दिन वह काग्रेस कमेटी के दफ्तर में जाकर टेकचन्द जैसे सडियल नाम रखने केलिए पिताजी को फटकारता है और कहता है "यह बहुत बडा मजाक है कि आदमी को अपना नाम तक पहले से तय हुआ मिलता है, कि आज़ादी का अर्थ तब तक बेमानी है । जब तक आदमी अपने अस्तित्व को अपनी इच्छा से आकार देने केलिए स्वतंत्र न हो ।"[1]

नक्सलबाडी सशस्त्र किसान विद्रोह के समय नवेन्दुघोष नामक भुवन का एक नक्सली दोस्त कलकत्ता से फरार होकर उसके घर में आता है । भुवन के पिता उसे पुलिस से पकडवा देता है । हवालत में अमानवीय यातनाओं से पीडित होकर वह मारा जाता है । भुवन के पिता घर में इस मौत की खबर देता है और कहता है कि इस वजह से आगामी चुनाव में उसे पार्टी टिकट मिल जाएगी, तो भुवन पिता का कॉलर पकडकर उसके चेहरे पर नफरत से थूकता है और घर छोड देता है । पिता, बाद में एम॰एल॰ए॰ बनता है और नक्सलियों द्वारा मारा जाता है । लेकिन भुवन केलिए पिताकी कत्ल सिर्फ एक खबर थी, जैसे उसे इस खबर से कोई संबन्ध न हो ।

1॰ धीरेन्द्र आस्थाना - समय एक शब्द भर नहीं है, पृ॰10

घर छोड़कर भुवन दिल्ली जाता है । कुछ समय तक एक दफ्तर में काम करता है । फिर वहाँ से निकाल दिया जाता है । इसके बाद चार साल तक वह एक बड़े प्रेस में प्रूफरीडरी करके और अमेरिकन लाइब्रेरी में अध्ययन करके बिताता है । इन चार सालों में वह हिन्दी और दर्शन में एम•ए• करता है । इस कालखण्ड के दौरान वह भूख, ठंड, गर्मी, और कुंठाओं का त्रासदीय दर्द भोगता है और फुटपाथ की ज़िन्दगी से उसका नज़दीकी रिश्ता कायम होता है । दिल्ली से वह मेरठ चला जाता है । सी•डी•ए• में एल•डी•सी• का काम करता है । फिर प्राइवेट स्कूल में अध्यापक बनकर लखनऊ चला जाता है । उधर भी एडजस्ट न हो पाने के कारण कलकत्ता चला जाता है ।

"कलकत्ता राजधानी के लाल किले पर लाल झंडा फहराने की तमन्ना रखनेवाले नक्सलवादी क्रांतिकारियों का केन्द्रस्थान" । उधर एक प्रसिद्ध साप्ताहिक में भुवनकिशोर सहसंपादक नियुक्त किया जाता है । यहाँ संगीता बानर्जी नामक एक लड़की से उसका रोमांस हो जाता है और उससे शादी करने का निर्णय भी लेता है । लेकिन इसके पहले संगीता को पता चलता है कि भुवन नपुंसक है और वह कलकत्ता छोड़ चली जाती है । भुवन टूट जाता है और कलकत्ता छोड़ दिल्ली आ जाता है । इसी बीच कुछ कहानियाँ लिखकर साहित्य के क्षेत्र में नाम कमा लेता है । दिल्ली में रहकर अपनी ही ज़िन्दगी को आधार बनाकर यौन विकृतियों और कुंठाओं का एक उपन्यास लिखता है । उपन्यास खूब बिकता है और संस्करण पर संस्करण छपता है । इस उपन्यास के द्वारा वह विवादास्पद लेखक बन जाता है ।

कुछ न कुछ लिखने के उद्देश्य से भुवन दिल्ली से नैनीताल पहुँचता है । वहाँ उसकी पाठिका एवं आराधिका संध्या रावत उससे मिलने आती है । वह भुवन के अराजक एवं अव्यवस्थित जीवन को व्यवस्था देना चाहती है । लेकिन भुवन इन्कार करता है । क्योंकि मंगीता बानर्जी के सम्मुख उसे अपने पौरूष का पराजय स्वीकार करना पडा था । वह अब उसे दुहराना नहीं चाहता और संध्या से कहता है - "मैं शारीरिक सुख नहीं दे सकता मैं शरीर के स्तर पर पुरूष नहीं हूँ ।"[1]

भुवन का मित्र है, आशू । वह कट्टर मार्क्सवादी है और नैनीताल से हिन्दी साप्ताहिक पत्र नैनी दर्पण निकालता है । उस अखबार के दफ्तर में भुवन की मुलाकात जनवादी कला साहित्य मोर्चा, उत्तराखण्ड के केन्द्रीय कमेटी चीफ मिस रजनी उनियाल से होती है । उनियाल पूछती है - "मिस्टर भुवन मैं ने आपको पढा है और मेरा सवाल है कि मर्द और औरत के जिस्मानी ताल्लुकात के अलावा क्या इतनी बडी दुनियाँ में और कुछ भी ऐसा नहीं रहा जो लेखन और चिन्तन का विषय बन सके ? गरीबी, भुखमरी और बदहाली की शिकार इतनी बडी आबादी में भी आपको बेडरूम की नीली रोशनी में यौन तृप्ति केलिए तडफडाती औरत ही नज़र आती है या फिर नपुंसकता से आक्रांत कोई मर्द कहाँ है वो लोग जो हर शहर में, हर गाँव में और हर मुहल्ले में सरकारी गोलियों से मारे जा रहे हैं आपकी चिन्ता है कि एक बदचलन अमीरजादी की हवस कैसे पूरी हो ? पुलिस के तहखाने में जिस औरत के ऊपर पन्द्रह सिपाही चढ रहे हैं या जिस औरत का स्तन जलती सिगरेट से गोदा जा रहा है वहाँ तक क्यों नहीं जाती आपकी नजर ?"[2] रजनी उनियाल से भुवन प्रभावित होता है

---

1. धीरेन्द्र आस्थाना - समय एक शब्द भर नहीं है, पृ.42
2. वही, पृ.26

और "चिपको मूवमेंट" को आधार बनाकर लिखने केलिए तैयार हो जाता है । भुवन जुलूस की फोटो खींचने जाता है । जुलूस में एक युवति पर पुलिस का अत्याचार देखकर, वह उस पुलिस की हत्या करके भाग जाता है । फिर आशु की प्रेरणा से क्रांतिकारी दल की सभा में भाग लेता है । और जुलूस से संबद्ध रिपोर्ट केलिए वह पहाडियों के नेता ममंगाई की प्रशंसा का पात्र बन जाता है ।

पुलिस सुपरिन्टेंडेंट शमशेर चौधरी का आतंक चट्टान की तरह सख्त और शाश्वत है । चोर, कत्ल और उकैत उसके नाम से काँपते हैं । इसने ही नवेन्दुघोष नामक नक्सलवादी युवक की जबान खोलने की कोशिश में उसे मार डाला था । शमशेर चौधरी की इकलौती बेटी जो अँग्रेज़ी साहित्य में एम॰ए॰ है, एक दिन खाने की मेज़ पर पिताजी से पूछती है - क्या आपने नक्सलवादियों को देखा है ? कैसे होते हैं वे ? बेटी का यह प्रश्न चौधरी को चौकाता है । फिर संभल कर उत्तर देता है कि वे गुण्डे और डकैत होते हैं । फिर इससे संबन्धित जया के प्रश्नों को वह टाल देता है । लेकिन जया की आकांक्षा बढ जाती है और वह उनसे संबन्धित किताबें पढ़कर इतनी प्रभावित होती है कि स्वयं आन्दोलन में शामिल होती है और नेता बने जाती है । उसे रोकने की चौधरी की कोशिशें नाकाम हो जाती है ।

भुवन इस जनआन्दोलन में भागीदार हो जाता है । उसे जीवन का नया अर्थ मिल जाता है । उसे एक प्रकार की मुक्ति का एहसास होने लगता है । यहीं पर सीता बानर्जी भुवन को तलाशती हुई आ मिलती है । वह कहती है - "मैं तुम्हारे बगैर जी नहीं

सकती भुवन ... तुम जैसे भी हो, जो भी हो मुझे स्वीकार हो प्लीस ।" लेकिन अब तक भुवन बहुत आगे बढ चुका था । वह कहता है - "मुझे जाने दो, एक नयी दुनिया मेरे सामने पडी है तुम इस नयी दुनिया का अर्थ समझने कोशिश करो और जब समझ लो तो मुझसे मिलने यहीं आना जहाँ जया है; रजनी है, आशू है, ममगाई है, पुलिस है, जेल है, गोली है, मौत है, मगर भय नहीं है, गलाजत नहीं है । जहाँ समय एक शब्द भर नहीं है[2] ।" मैं तुम्हारा इंतज़ार करूँगा, तुम आना ज़रूर आना । भुवन गीता को सांत्वना देकर जुलुस की ओर चल पड़ता है, जहाँ पुलिस की गोलियाँ चल रही है ।

12. शांतिभंग

आपातकालीन विसंगतियों पर आधारित मुद्राराक्षस का उपन्यास है - "शांतिभंग" । सराय दुर्विजेयसिंह नामक मोहल्ला कथानक का केन्द्र है । "उपन्यास का न तो कोई केन्द्रपात्र है और न ही किसी विशेष समस्या पर उसमें ज़ोर । आपातकाल के पूर्व, आपातकाल के दौरान और आपातकाल के बाद किस प्रकार परिवेश और परिस्थितियों में हेरफेर होता है, समाज के हर वर्ग की चेतना पर इस त्रिकालखण्ड का क्या प्रभाव पडता है, यही समूचा मूल्यांकनपरक जायजा उपन्यास के केन्द्र में है । परिस्थितियाँ

---

1. धीरेन्द्र आस्थाना - समय एक शब्द भर नहीं है, पृ.78
2. वही, पृ.79

और समस्याएँ, विसंगतियाँ और तज्जन्य प्रभाव यथार्थवादी मूल्यांकन पद्धति से प्रभावित होकर अभिव्यक्त हुए हैं।[1]"

सराय दुर्विजेयसिंह निम्न मध्यवर्गीय परिवारों का एक मोहल्ला है। गडहियावाला स्कूल मास्टर नन्द किशोर, रेलवे गार्ड खरे, आदर्शवादी राजनीतिक कार्यकर्ता मुंशीजी, पानी में रंग और गन्ध घोलकर बेचनेवाला हीराम वैद्यजी, कवि मधुरजी, दुर्गा कचौडीवाला, पेडावाली बुआ, पुजारी, नानू बढई, चोर खसीटा आदि सराय के निवासी हैं। प्रतिदिन घर के काम से निवृत्त होने के बाद सराय के आँगन में स्त्रियों की मजलिस लगती है। यहाँ पेडावाली बुआ अपनी सहेलियों के साथ बैठकर मोहल्ले के मामलों की चर्चा करती है। पुजारी की बेटी रज्जो का किसी अन्य जातिवाले के साथ भाग जाना, रुक्की कैसे मुंशीजी की घरवाली हो गयी, बिम्मो महाराजिन का अपने देवर के साथ अवैध संबन्ध आदि उनकी चर्चा के विषय है।

आपातकाल की घोषणा के साथ स्थितियाँ बदल जाती हैं। विपक्षी नेताओं के साथ मुंशीजी भी गिरफ्तार किये जाते हैं। लेकिन कुन्दनलाल रस्तोगी जैसे धनिक एवं कालेबाजारी करनेवाले सरकार से समझौता करके जेल से बाहर आते हैं। आपात्कालीन स्थितियों से बेखबर, सरकार की आलोचना में गजल सुनानेवाले मधुरजी को भी जेल में रहना पड़ता है। वह जेल में उपवास करता है और अधमरी अवस्था में उसे बाहर फेंक दिया

---

1. भैरूलाल गर्ग - प्रकर - फरवरी 1985, पृ.19

जाता है । खरे का बेटा बालकृष्ण पुलिस द्वारा पकडा जाता है, क्योंकि नक्सली राजन के घर की तलाशी करने पर किसी कागज़में बालकृष्ण का नाम मिल गया था । राजन का पता लगाने केलिए बालकृष्ण को थाने ले जाता है । उधर पुलिस द्वारा दूसरों को दी जानेवाली टार्चर देखकर वह घबरा जाता हैं और स्टेशन से भाग जाता है । पुलिस पीछा करती हैं तो उनसे बचने की कोशिश में वह पुल से नदी में गिरकर बिखर जाता है ।

देश भर नसबंदी अभियान जो पकड लेता है । कुछ लोग इस अवसर का दुरूपयोग करके धन कमाने लगते हैं । जबरदस्ती से लोगों की नसबंदी की जाती है । दुर्गा कचौडीवाले को पुलिस धमकाती है कि नसबंदी के प्रमाण-पत्र के बिना अगले दिन से सडक के किनारे कचौडी की दूकान लगाने नहीं देंगी । वह डर जाता है । कहीं से वह जान लेता है कि नसबंदी करने से पुरुषों में कमज़ोरी आती है । इसलिए वह अपनी बीबी को नसबंदी केलिए विवश करता है और नसबंदी में हुई असावधानी के कारण बीबी की मृत्यु होती है । इसी प्रकार मास्टर नन्दकिशोर भी नसबंदी से डरता है और प्रमाण पत्र पाने में असमर्थ रह जाता है । और इसलिए उसे नौकरी से हाथ धोना पडता है ।

पुलिस, स्वाभिमानी खरे की शारीरिक तलाशी की कोशिश करती है तो वह मान की रक्षा केलिए आग में कूदकर आत्महत्या करता है । भूतपूर्व मुख्यमंत्री सदानंद शर्मा पर हुए वधोद्यम से संबद्ध अपराधियों को बिना विलम्ब के पकडने की आज्ञा पुलिस को मिलती है तो वे घसीटे के घर को घेरकर उसे गोली से मार देती है । थाने में अपराधी के शव के रूप में वह दर्शाया जाता है ।

मुंशीजी की पत्नी रुक्की घसीटे की लाश लेने केलिए थाने जाती है । लेकिन वह वापस अपने घर नहीं आती । वह अपने पति को लिखती है कि अब वह उस पवित्र घर में पैर रखने योग्य नहीं रह गयी है ।

वैद्यजी की बेटी रत्तो के ससुरालवाले बाईस हज़ार रुपये नकद की माँग करते हैं । बेचारा वैद्यजी कहाँ से देता ? दहेज विरोधी कानून रत्तो की रक्षा केलिए पर्याप्त नहीं होता । एक दिन ससुराल से खबर मिलती है कि रत्तो जलकर मर गयी है । इसी तरह पुजारी की बेटी गर्भवती होने के बाद छोड दी जाती है ।

आपातकाल की घोषणा के समय मुख्यमंत्री रहता है मदानंद शर्मा । अपने लोगों केलिए भ्रष्टाचार करने में उसे कोई हिचक नहीं महसूस होती । वह अपने हर काम को गाँधीवादी बताता है । दूसरी तरफ आपातकाल के साथ जब राजनीति में संजयगाँधी का प्रभाव बढ जाता है तो "बहुत से लोग यह सोचने लगे थे कि प्रधानमंत्री न सही, उनके बेटे की गाडी में लटक लेना अभी आसान था ।"[1] प्रदेश के काग्रेस अध्यक्ष त्रिलोचन पाण्डे प्रधान मंत्री के बेटे की खुशामद करके मुख्यमंत्री बन जाता है । मदानन्द शर्मा अपने को सत्ता में लगाये रखने केलिए प्रधानमंत्री के बेटे की चप्पल तक उठाने को तैयार हो जाता है ।

---

1. मुद्राराक्षस - शांतिभंग, पृ.144

आपातकाल के उठ जाने और आम चुनाव की घोषणा होने पर सदानंद शर्मा दल बदलकर चुनाव लड़ता है और मुख्यमंत्री बन जा है । केन्द्र में कांग्रेस पार्टी सत्ता से पदच्युद कर दी जाती है । त्रिलोचन पाण्डे को लगता है कि अब पार्टी में रहने से कुछ फायदा नहीं है और पार्टी के अन्दर आन्दोलन छेड देता है कि भूतपूर्व प्रधानमंत्री पार्टी से इस्तीफा दें । फिर एक बार पंडित शर्मा की प्रशंसा में लग जाता है । इसके बाद पार्टी से इस्तीफा दे देता है । "उन्हें उम्मीद थी कि दल-बदल से उन्हें राजमंत्री का पद तो मिलेगा ही । वह संभव नहीं हुआ । मुख्यमंत्री सदानन्द ने अस्थायी तौर पर इंतजाम कर दिया । पिछली सरकार द्वारा किये गये अत्याचारों की जाँच का जो आयोग बनाया उसकी अध्यक्षता वर्माजी को दे दी ।

सरायवालों के अनुभव दिखाते हैं कि सत्ताधारी बदल जाते हैं । लेकिन स्थितियों में कोई परिवर्तन नहीं होता । नीतियाँ वही हैं, केवल टोपियाँ बदल जाती हैं ।

13. प्रजाराम

आपातकाल और जनता शासन के प्रारंभिक छह महीने को आधार बनाकर लिखा गया यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का उपन्यास है "प्रजाराम" । लेखक के अनुसार "प्रजाराम कोई नायक विशेष नहीं है; वह सर्वथा प्रतीक चरित्र है और तत्कालीन

मानसिकता का द्योतक भी है[1]।" 26 जून 1975 को नाइट शो देखकर बाहर निकला तो प्रजाराम को पता चलता है कि समूचे राष्ट्र में इमर्जेंसी लागू हो गयी है । उसने देखा कि इमर्जेंसी शब्द सुननेवालों पर भय उत्पन्न कर देता है । प्रजाराम जानना चाहता है कि इमर्जेन्सी क्या होती है ? इसे क्यों लगाया गया है ! और देश से कहाँ लगाया गया है[2] ?" कहीं से उसे ठीक उत्तर नहीं मिलता, लेकिन डाँट अवश्य मिलता है - "खामोश, साला जेल जाएगा[3]।" तब प्रजाराम को लगता है कि यह इमर्जेन्सी ज़रूर कोई बला है ।

रास्ते में प्रजाराम को इंजनीयर अशुतोष मिल जाता है । प्रजाराम उसे बताता है कि देश में इमर्जेन्सी लग गयी है । अशुतोष तनावों से घिर जाता है । वह तो सिमेंट में राख मिलाके और मज़दूरों की नामावली में एक सौ के स्थान पर पाँच सौ लिखके सरकारी पैसा खूब हड़प लिया करता था । एक बार उसके बनाये गये पुल के टूट जाने पर कुछ लोग नदी में बह भी गये थे । बेचैनी से सीधे जाकर वह अपने दोस्त, संसद सदस्य बी॰नाथ को फोन करके जानना चाहता है कि इमर्जेन्सी लागू होने की खबर सत्य है कि नहीं । लेकिन बी॰ नाथ को पता नहीं था । यह समाचार सुनकर वह भी चौंकता है, क्योंकि वह भी सरकार एवं इंदिरा गाँधी की आलोचना करनेवालों में था । अशुतोष रामेश्वर को फोन करता है, जो माना हुआ चाटुकार है । उसकी पत्नी से पता चलता है कि प्रधानमंत्री की कोठी से फोन आया था और वह

1॰ यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र" - प्रजाराम - लेखकीय वक्तव्य से

2॰ वही, पृ॰2

3॰ वही, पृ॰2

उधर गया है । अशुतोष प्रधानमंत्री की कोठी पर फोन करता है और संयोगवश रामेश्वर मिल जाता है । इमर्जेन्सी के बारे में पूछने पर वह कहता है - "देश में फैल रही अराजकता, लूट-खसोट, महंगाई और भ्रष्टाचार को रोकने केलिए इमर्जेंसी की सख्त ज़रूरत थी ।"[1]

अशुतोष रातों रात अपनी काली करतूतों से संबन्धित फाइलें जला डालता है और सबेरे ही बी·नाथ का घर पहुँच जाता है । बी·नाथ उपदेश देता है कि बचने का एक ही मार्ग है, सरकार और इमर्जेंसी के समर्थन में वक्तव्य दें । वक्तव्य छपवाने केलिए संवादाताओं की तलाश में जाता है तो अशुतोष को मालूम होता है कि अधिकांश पत्रकार और विपक्षी नेता जेल में हो चुके हैं । अशुतोष जल्दी ही रामेश्वर के यहाँ पहुँच जाता है । अब सब कुछ रामेश्वर के हाथों में आ गया था । वह प्रधानमंत्री का निकटतम आदमी है । वह अवसर का खूब उपयोग करने लगता है । अशुतोष इनकम टैक्स रेड से बचना चाहता है, तो रामेश्वर कहता है कि तुम कांग्रेस फंड को इक्कीस हज़ार रुपये दे दो और बीस सूत्रीय कार्यक्रम के बारे में बुकलेट छपवाकर बाँट दो । सारे देश में हिन्दी-अंग्रेज़ी में बुकलेट फैल जाती चाहिए । अशुतोष की रखैल मालिनी पर भी वह नज़र लगाता है । मालिनी तैयार नहीं होती तो रामेश्वर को खुश करने केलिए अशुतोष अपनी सत्रह साल की बेटी को ही सौंप देता है ।

1· यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र" - प्रजाराम, पृ·7

इतने में प्रजाराम को मालूम होता है कि प्रधान मंत्री ने अपने आपको सत्ता में बनाये रखने केलिए इमर्जेंसी लगायी है । इमर्जेंसी के पहले चरण में विकास के कुछ कार्यक्रम ठीक तरह से चलते हैं और आम जनता को कुछ राहत मिलती भी है । मुख्य उपयोगी वस्तुओं का दाम घट गया था, और बाज़ार में सुलभ हो गयी थी । कारखानो और दफ्तरों में काम ठीक से चल रहा था । बीस सूत्रीय कार्यक्रम से आर्थिक प्रगति भी होने लगी थी । लेकिन यह स्थिति तुरन्त ही बदल गयी । अफसरशाही और पुलिस इमर्जेंसी का दुरुपयोग करने लगी । स्वार्थी एवं पापलूसी राजनेता इंदिरागाँधी के सम्मुख स्वामिभक्ति दिखाने केलिए संजय गाँधी को उनके उत्तराधिकारी एवं महान नेता घोषित करने लगे । संजय गाँधी को राजकुमार के समान जनता पर थोपने लगे । राज्यों के मुख्यमंत्री संजय गाँधी केलिए स्वागत समारोह आयोजित करने और उनके पंचसूत्रीय कार्यक्रम का टिंटोरा पीटने में लग गये । लोग युवा नेता के भाषण सुनने केलिए एकत्रित होते हैं, तो वह कहता है - ज्यादा सा ज्यादा पेड लगाइये, नसबंदी कराइए, इसमें देश की खुशहाली है । लोग निराश हो जाते हैं और समझते हैं कि इसको नेता के रूप में हमपर थोपा जा रहा है ।

नसबंदी अभियान के नाम पर जिलाधीश, पुलिस और राजनेता ग्रामीण लोगों को बहुत तंग करते हैं । ज्यादा से ज्यादा नसबंदी कराके एंबासिडर कार पुरस्कार रूप में प्राप्त करने के चक्कर में जिलाधीश अविवाहित युवकों को भी नहीं छोडता । विरोध प्रकट करनेवालों को पुलिस बुरी तरह पीटती है और मिसा या डी.ऐ.आर. के अन्दर बन्द कर देती है । पुलिस की अत्याचारों से स्त्रियां भी नहीं बचतीं । शहर की सुन्दरता बढाने के चक्कर में

गरीब लोगों की झोंपडियाँ बुल्डोसर से गिरायी जाती हैं, विरोध प्रकट करनेवालों को कुचल दिया जाता है । व्यापारी लोग और कालेबाज़ारी करनेवाले काग्रेस पार्टी फण्ड को रुपये देके निश्चिंत हो जाते हैं और मनमानी ढंग से लोगों को लूटने लगते हैं । इस प्रकार इमर्जेंसी का आतंक गरीब लोगों के जीवन को चकनाचूर कर देता है । समाचार माध्यमों पर पहले ही सेंसर लग चुका था और बुद्धिजीवी एवं संपादक लोग जेल में बन्द हो चुके थे । रेडियो और अन्य सरकारी माध्यम इमर्जेन्सी और प्रधानमंत्री एवं संजय गाँधी की योजनाओं की तारीफ में लगे हुए थे । रामेश्वर जैसे चापलूस अमेरिकी जासूसों से मिलकर भारत में सोवियत प्रभाव कम करने केलिए वामपंथियों को मिटाने के प्रयत्न में लग जाते हैं और खूब धन कमाते हैं ।

इंदिरा गाँधी को रिपोर्ट मिल जाती है कि आपातकाल की सफलता से लोग खुश है । इसलिए 28 जनवरी 1977 को प्रधानमंत्री आम चुनाव की घोषणा करती है । लोकनायक जे॰पी॰ के प्रयासों से विपक्षी दल मिलकर "जनता पार्टी" को रूप देते हैं । आपातकाल की बर्बरता से पीड़ित जनता काग्रेस को पराजित करती है । स्वतंत्र भारत के इतिहास में पहली बार काग्रेसेतर सरकार सत्ता में आती है । काग्रेस को हराने केलिए प्रजाराम ने भी खूब प्रयत्न किया था । लेकिन प्रजाराम को यह देखकर दु:ख होता है कि प्रधानमंत्री के चुनाव में ही जनता पार्टी में मतभेद शुरू हो गया है । प्रजाराम को लगता है कि प्रजातांत्रिक विधि के विरुद्ध, बिना चुनाव के मोरार्जी देसाई को दूसरों पर थोपा जा रहा है । प्रजाराम यह भी देखता है कि "काग्रेस हटाओ" के नाम पर

उच्चे लोग भी संसद सदस्य बनके आये हैं । प्रजाराम, जनता पार्टी के सदस्यों को राजघट में बापू के सपने पूरा करने, लोगों की सेवा करने और लोगों को भयमुक्त करने की प्रतिज्ञा लेते देखता है । प्रजाराम को लगता है कि जनता के शोषण के हथियार के रूप में गाँधीजी के नाम का उपयोग होता ही रहेगा ।

अनेक अवसरवादी राजनेता काँग्रेस छोड़कर जनता पार्टी में शामिल हो जाते हैं । अशुतोष जैसे भ्रष्ट कर्मचारी भी जनता पार्टी में शामिल होकर समितियों के अध्यक्ष पद हासिल करते हैं। जनता सरकार जाँच आयोगों की नियुक्ति के द्वारा काँग्रेसी नेताओं से प्रतिशोध में लग जाती हैं । कालेबाजारी, मुनाफाखोरी, रिश्वतखोरी, भ्रष्टाचार और शोषण एकदम बढ जाते हैं । सरकार कहती रहती है कि हमने लोगों को भयविमुक्त किया है और बोलने की स्वतंत्रता दी है । लेकिन यथार्थ में स्वतंत्रता और छूट मिली थी, असामाजिक तत्वों को और वे दुगनी शक्ति से जनता के शोषण में लग जाते हैं । आपातकाल में गाँवों में जिन लोगों को बंधक मज़दूरी से मुक्ति मिली थी, फिर से जमींदार उन्हें गुलाम बना लेते हैं । अब लोगों को लगता है कि इमर्जेंसी की स्थिति ही अच्छी थी । प्रजाराम को लगता है कि नागनाथ के स्थान पर साँपनाथ आ गया है । केवल चेहरे बदल गये हैं, नीतियाँ वही हैं प्रजाराम एक बार फिर सरकार की नीतियों के विरुद्ध जुलूस का नेतृत्व करता है और पुलिस से पिटकर घायल हो जाता है ।

राजनैतिक जीवन का चित्र

वर्तमान समाज में, जनजीवन का राजनीति से इतना निकट संबन्ध हो गया है कि चाहकर भी हम राजनीति से अप्रभावित नहीं रह सकते । अर्थात् राजनीति हमारे जीवन को रूपायित करनेवाले परिवेश का एक प्रमुख तत्व बन गया है । इसलिए साहित्य में भी राजनीति का स्थान प्रमुख हो गया है । सामान्य रूप से देखा जाता है कि "उपन्यास मानव संबन्ध और परिस्थितियों का स्वरूप है, जो व्यक्ति का पुनरन्वेषण कर समाज में उसकी स्थिति का अंकन करता है ।"[1] इसलिए उपन्यास का राजनीति से संबद्ध होना स्वाभाविक है । विशेषकर राजनैतिक उपन्यासों में तो वर्ण्यवस्तु का आधार ही राजनैतिक आयामों से घिरा होता है । इनमें सम-सामयिक युग की राजनैतिक समस्याओं, आन्दोलनों और विचार-धाराओं की अभिव्यक्ति मिलती है । इनमें कथावस्तु, पात्र, देश काल आदि के माध्यम से समसामयिक स्थिति और स्वरूप की प्रस्तुती होती है । आलोच्य उपन्यासों में देश के राजनैतिक जीवन का यथार्थपरक चित्र मिलता है ।

यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र का "एक और मुख्यमंत्री" स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीति का सही दस्तावेज है । इसमें विभाजन से उत्पन्न शरणार्थी समस्या से लेकर तीसरे आम चुनाव तक के कालखण्ड के चित्रण द्वारा स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीति के विघटनशील परिवेश और पतनशील नेतृत्व का वृत्तिचित्र प्रस्तुत किया गया है । यह भी दिखाया गया है कि भारत की राजनीति कैसे सत्ता, चुनाव और दलबदल की राजनीति रह गयी है । राजनीतिज्ञों

---

1. वृजभूषण सिंह आदर्श - हिन्दी के राजनैतिक उपन्यासों का अनुशीलन, पृ.2

और उद्योगपतियों के बीच का संबन्ध और नोटों के बल पर वोट खरीदने की कुप्रथा का भी प्रभावात्मक अंकन हुआ है ।

भगवतीचरण वर्मा का उपन्यास "सबहिं नचावत राम गोसाईं" तीन पीढियों की कहानी है । भारत के राजनैतिक और सामाजिक जीवन के साथ-साथ उन्होंने यह भी दिखाया है कि स्वतंत्र भारत में कैसे "उद्योगपति कांग्रेस मंत्रियों की सहायता से दिनों दिन देश के आर्थिक ढांचे पर आधिपत्य कायम करता जाता है, कांग्रेस पूंजीपतियों के बल पर चुनाव जीतकर सत्ता की रक्षा करती रहती है ।[1]" इसके अलावा यह भी दिखाया गया है कि अंग्रेज़ों के दलाल पूंजीपति, कालेबाजारी एवं स्मग्लिंग करनेवाले असामाजिक तत्व स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद खादी पहनकर कांग्रेस में शामिल हो गये और नेताओं के आशीर्वाद से जनता के शोषण में लग गये । "इस उपन्यास में स्वतंत्र भारत की जीवनधारा के दो पहलुओं का विशेष रूप से उद्घाटन किया गया है । एक तरफ पूंजीपति वर्ग के विकास का वर्णन है तो दूसरी तरफ नेता और मंत्रियों के उदय का ।[2]"

कमलेश्वर कृत "काली आँधी" के कथानक का संबन्ध समसामयिक भ्रष्ट राजनीति की सीढियों में सफलता की ओर अग्रसर एक नारी से है जो विजय के उन्माद में परिवार और नारी संबंध परंपरागत मूल्यों पर प्रश्नचिह्न लगा देती है । चुनाव जीतने केलिए धर्म से लेकर गुण्डागर्दी तक को वैध मानकर इस्तेमाल करने का

---

1. गोपालराय - हिन्दी साहित्यकोश, 1970, पृ.34
2. कृष्ण कुमार विस्सा - साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक चेतना, पृ.20

चित्र है, उपन्यास में, जो व्यक्त करता है कि सत्तालोलुप राजनीति कहाँ तक जघन्य स्वार्थयुक्त और झूठी है । इस प्रकार "वर्तमान युग के घृणित राजनैतिक वातावरणऔर अपमानजनक स्थिति का प्रभावी चित्रण इसमें हुआ है[1]।"

समकालीन राजनीति के क्रूर एवं घृणित पक्षों का बडी ईमादारी के साथ व्यंग्यात्मक शैली में चित्रण हुआ है, श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास "राग दरबारी" में । "उसमें आज़ादी के बाद धीरे-धीरे जीवन में उत्पन्न होनेवाली नैतिक गिरवट, स्वार्थपरता, संकीर्ण गुटबन्धी, छीना-झपटी, बढती हुई गुण्डागर्दी और उन सबसे उत्पन्न असुरक्षा की भावना कम से कम एक बिन्दु पर बडी तीखी तस्वीर है[2]।" कथा का केन्द्र एक बडे शहर से कुछ दूर बसा हुआ शिवपालगंज नामक गाँव की ज़िन्दगी से है, जो आज़ादी के बाद प्रगति और विकास के समस्त नारों के बावजूद, निहित स्वार्थों और अनेक अवांछनीय तत्वों के आघात के सामने पिसट रही है । शिवपालगंज के पंचायत, छंगामल इन्टर कालिज, कोआॅपरेटिव यूनियन आदि के जरिए वर्तमान राजनीति का स्पष्ट चित्र उभरता है, जो पाठकों को झकझोरने में सक्षम है ।

राही मासूम रज़ा का उपन्यास "कटरा बी आर्ज़ू" आपतकाल की कहानी है । एक मामूली कटरे के जनजीवन के द्वारा आपातकाल के बीभत्स और भयानक रूप का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है । "इस उपन्यास का जितना संबन्ध आपतकाल की व्यापक

---

1. डॉ. अमर जयसवाल - हिन्दी के बहुचर्चित उपन्यास और उपन्यासकार, पृ.47
2. नेमीचन्द्र जैन - जनान्तिक, पृ.5।

राजनीतिक सडाँध और निसंगति से है, उतना ही संबन्ध निम्न-वर्ग के जीवन विधान से है[1]।" आपातकाल के दौरान जनसाधारण पर किये गये अत्याचार विरोधी स्वर को दबाने की नीति, नगरों की सुन्दरता बढाने के नाम पर बर्बर अत्याचार, परिवार नियोजन के नाम पर जबदस्ती से नसबंदी और पुलिस की बर्बरता से लेकर जनता सरकार के सत्ता में आने तक का चित्र है, प्रस्तुत उपन्यास ।

मन्नू भण्डारी के उपन्यास "महाभोज" में यह दिखाया गया है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने वर्ष बाद भी ज़मीन्दार वर्ग पुलिस और शासकों के आशीर्वाद से किसान एवं मज़दूरों के शोषण में लगे हैं । निर्मम राजनेता अवसरों को अपने अनुकूल बनाने की प्रतियोगिता में लगे रहते हैं । "महाभोज" की कथा भारत के सरोहा नामक एक ऐसे गाँव से संबन्धित है जहाँ कि देश के अधिकांश गाँव के समान सामंती सभ्यता का ही साम्राज्य है तथा जमींदार निष्ठुरतापूर्वक किसानों एवं मजदूरों का शोषण करते हैं । शासक वर्ग और पुलिस आदि जमींदारों का ही साथ देते हैं । यदि कभी कोई किसान या मजदूर जमींदारें के अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ उठाता तो उसे बुरी तरह कुचल दिया जाता और कभी उनकी झोंपडियों में आग लगा दी जाती तथा कभी उनकी जान ही के ली जाती[2]।"

श्रवणकुमार गोस्वामी का लिखा हुआ उपन्यास "जंगलतंत्रम्" में स्वाधीन भारत के पच्चीस वर्षों के इतिहास की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति मिलती है । इसमें सिंह राजनेता का,

---

1. डॉ. रामविनोद सिंह - आठवाँ दशक के हिन्दी उपन्यास, पृ.125
2. नन्दिनी मिश्र - मन्नू भंडारी का उपन्यास साहित्य, पृ.136

मोर प्रशासक का, नाग पूंजीपति का और चूहा आम आदमी का प्रतीक है । "चार जन्तुओं के माध्यम से उपन्यासकार ने आज की राजनीति के तहत चलनेवाली तथाकथित लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली के यथार्थ चित्रांकन द्वारा छलछद्मवेशी भारतीय राजनीति तथा प्रशासन के परखचे उडाये हैं और तथाकथित लोकतंत्र को "जंगलतंत्रम्" की संज्ञा देते हुए पूंजीवादी अर्थव्यवस्था रूपी नाग की कुंडलियों में कसे हुए आम आदमी को छटपटाता हुआ दिखलाया है[1] ।"

प्रदीप पंत का उपन्यास "महामहिम" वर्तमान राजनीति में व्याप्त चरित्रहीन चरित्र को उजागर करने की कोशिश है । यह उपन्यास जनता पार्टी के शासन पर आधारित उपन्यास है । लेखक दिखाता है कि वर्तमान राजनीति में कैसे अयोग्य और नालायक व्यक्ति शासक बन बैठते हैं और उसका परिणाम क्या होता है । ये राजनीति का इस्तेमाल मानवीय हितों केलिए न करके निजी स्वार्थों, जोड-तोड, साम्प्रदायिकता का जहर फैलाने और सत्ता का दुरुपयोग केलिए करते हैं । "यह उपन्यास जनता सरकार पर आधारित होते हुए भी प्रत्येक सरकार पर लागू होता है । क्योंकि सत्ताहीन महामहिमों का इरादा और नीयत जनता का शोषण करना ही रहा है, सिर्फ चेहरे बदलते रहते हैं[2] ।"

---

1. बैजनाथ राय - समीक्षा अक्तूबर दिसंबर, 1980, पृ.39
2. कृष्णकुमार बिस्सा - साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक चेतना, पृ.69

दलित वर्ग की व्यथा, उपेक्षा और सामाजिक स्थितियों का चित्रण करनेवाला उपन्यास है, यादवेन्द्र शर्मा "चान्द्र" का हजार घोडों का सवार । इस उपन्यास में बीसवीं सदी के प्रारंभ से लेकर पहले आम-चुनाव तक के सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक स्थितियों का चित्र मिलता है । "बल्कि यह कहना और ज्यादा सही होगा कि इस अवधि के दौरान भारतीय जनजीवन क्या था, कैसा था, जन और तंत्र के बीच कितना अलगाव दुराव था, शासक वर्ग किस तरह निर्बल वर्ग पर अपनी प्रभु-सत्ता कायम किये हुए थे, सामाजिक कुरीतियों के बीच चारों वर्गों के लोग किस तरह जकडे हुए थे, इसका सजीव चित्र हज़ार घोडों के सवार में मिलता है ।"[1] इसके अलावा चुनाव, लेन-देन, ट्रान्सफर, पेरमिट और कोटा की राजनीति, राजनीतिज्ञों के घात-प्रतिघात का मार्मिक चित्र भी है ।

आज की सत्तालोलुप राजनीति का पोल खोलनेवाला उपन्यास है राजकृष्ण मिश्र का दारूलशफा । इसमें सत्तारूढ और सत्ताकामी राजनीतिज्ञों द्वारा सत्ता का दुरुपयोग, राजनीतिज्ञों द्वारा स्वार्थपूर्ति हेतु असामाजिक तत्वों को प्रश्रय देना, अनुचित अर्थलिप्सा आदि का आंकन है । "संतुष्ट और असंतुष्ट गुट के दो खेमे, मुख्यमंत्री से लेकर प्रदेश के पार्टी अध्यक्ष तक का प्रधानमंत्री द्वारा मनोनयन, प्रत्येक पार्टी में दक्षिण तथा वाम पंक्तियों का अन्तर्संघर्ष, राजनीति में प्राय: हर जरायम पेशेवाले लोगों का प्रश्रयत्व, राजनेताओं द्वारा नारी संसार की ओर लोलुप दृष्टि और उनका भी राजनीतिक उपयोग, विदेशी वस्तुओं और सुन्दरी के

---

1. सुरेन्द्र तिवारी - संकेतना जून 1982, पृ.53

साथ सुरा का भी सेवन, राजनीतिक नेताओं के भ्रष्टाचार को देखकर नौकरशाही का भी भ्रष्टाचार में निमग्न हो जाना आदि बातें आज सत्तारूढ दलों में विशेष रूप से प्राप्त होती हैं।[1]" इन सारी स्थितियों के चित्र उपन्यास में हैं।

धीरेन्द्र आस्थाना से लिखित "समय एक शब्द भर नहीं है नक्सलवादी चेतना को उभारनेवाला उपन्यास है। "आज के जीवन में भ्रष्ट राजनीति के दबाव से नयी पीढी किस तरह तबाह हो रही है, इसमें मुख्यत: वर्णित किया गया है[2]।" शोषण, अन्याय, एवं पुलिस अत्याचार का चित्र मन को छूनेवाला अनुभव है।

मुद्राराक्षस का "शांतिभंग" आपातकालीन विसंगतियों पर आधारित उपन्यास है। "आपात स्थिति ने जनसामान्य से लेकर बडे-बडे राजनेता और सुविधाजीवी वर्ग की चेतना को किस प्रकार प्रभावित किया है और इस बीच देश ने "क्या खोया, क्या पाया" का मूल्यांकन, और मोहभंग की स्थिति ने उसे कहाँ पहुँचाया, इन सभी का प्रामाणिक दस्तावेज है वह उपन्यास।[3]" यह उपन्यास तत्कालीन स्थिति और सम्पूर्ण मानसिकता का उद्घाटन करता है।

---

1. जितेन्द्र पाठक - प्रकर - जानुवरी, 1983, पृ.11
2. कृष्णकुमार बिस्स - साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में राजनीतिक चेतना, पृ.24
3. डॉ. भैरूलाल गर्ग = प्रकर - फरवरी 1985, पृ.19

यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र" का लिखा हुआ उपन्यास "प्रजाराम" आपतकाल और जनता सरकार के शासन के प्रारंभिक छः महीने की स्थितियों पर आधारित है । "आपातकाल मे चारों ओर भय तथा सत्रास, असमंजस्ता, का वातावरण फैल गया था । सरकार के समर्थक एव सत्तालोलुप दोनो हाथों से पैसा लूटने मे लग गये, वही ईमांदार और निष्पक्ष लोगों को बुरी तरह तंग किया गया तथा उन्हें सलाखों के पीछे डाल दिया गया । लेखक ने उस समय की जनता की मन:स्थिति एवं व्याकुलता का चित्र "प्रजाराम" के रूप में किया है ।[1]" जनता शासन के प्रारंभिक काल में ही उपजे मतभेद, कुर्सी की लडाई और अनुशासनहीनता का भी चित्र इस उपन्यास में है ।

प्रस्तुत विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि आलोच्य उपन्यासों की विषय वस्तु समसामयिक राजनीति से संबद्ध है । स्वातत्र्योत्तर भारतीय राजनीति की महत्वपूर्ण घटनाओं - विभाजन, आम चुनाव, पंचायतीराज की स्थापना, पंचवर्षीय योजना, पंचशील, राष्ट्रभाषा संबन्धी विवाद, चीन और पाकिस्तान से युद्ध, बैंकों का राष्ट्रीकरण, आपातकालीन स्थिति, जनता पार्टी के सत्ता में आना आदि के चित्र इन उपन्यासों में मिलते हैं । इन्हीं चित्रों के माध्यम से उपन्यासकारों ने देश की तत्कालीन राजनीति का और उसके द्वारा निभायी गयी सामाजिक भूमिका का जीवन्त चित्र प्रस्तुत किया है । यह जीवन्तता एक ओर भ्रष्टता, मूल्यच्युति और तिकडमबाज़ी पर आधारित सत्ता के संघर्ष से एक ओर जुडी हुई है, तो दूसरी ओर उस राजतंत्र के

---

1. कृष्णकुमार बिस्सा - साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक चेतना, पृ.8।

महायंत्र के नीचे पिस जानेवाले जनसाधारण की नियती की कडी है ।

पात्र-रचना में राजनैतिक प्रभाव और चरित्रों के बदलते स्वरूप

उपन्यास में पात्र और उनके चरित्र कम महत्वपूर्ण तत्व नहीं है । स्थितियों और विचारों की अभिव्यक्ति साधारणत: पात्रों के माध्यम से होती है । पात्रों का चयन कथावस्तु के आधार पर होता है । चूँकि आलोच्य उपन्यासों के कथ्य राजनैतिक हैं, इसलिए पात्र-रचना में राजनैतिक प्रभाव का होना स्वाभाविक है । यह भी एक स्वीकृत सत्य है कि स्वातंत्र्योत्तर काल में स्थितियाँ बिगडती गयीं और खुशहाली के सपने टूटते गये । जीवन के हर क्षेत्र में असामाजिक तत्व पनपते गये । भ्रष्टाचार बढते गये और अनैतिकता फैलती गयी । राजनीति, सिद्धांतों पर आधारित न होकर सत्ता हथियाने का साधन मात्र रह गयी । राजनेता और पूंजीपतियों के बीच नया रिश्ता कायम हो गया और एक बार फिर जनता का शोषण नये तरीके से होने लगा । इन नयी परिस्थितियों से प्रेरणा ग्रहण करने के कारण इन रचनाओं में परंपरागत आदर्शात्मक स्थिति नहीं रही, बल्कि ये रचनायें यथार्थ से सीधे साक्षात्कार करनेवाली निकलीं । साहित्यकार काल्पनिक आदर्श के मोह से मुक्त होकर तटस्थ होने लगे तो पात्रों और उनके चरित्र में परिवर्तन दिखाई देने लगा । इस संदर्भ में ध्यान देने की एक और बात यह है कि इन रचनाओं में पात्रों से ज्यादा महत्व स्थितियों को दिया जाता है और पात्र इन स्थितियों से होकर अपनी ज़िन्दगी जीते हैं । वे रचनाकार के हाथ के खिलौने प्रतीत नहीं होते । इन रचनाओं में सर्व गुणों से संपन्न आदर्श नायक दिखाई नहीं देते, लेकिन यथार्थ स्थितियों से जूझते, संघर्ष करते मनुष्य दिखाई देते हैं । कहीं कहीं रचनाओं का केन्द्र,पात्र न होकर स्थितियाँ हैं । आलोच्य उपन्यासों में

चरित्रों के इन बदलते स्वरूपों की पहचान है ।

"एक और मुख्यमंत्री" का केन्द्र पात्र है अरविंद । वर्तमान राजनेताओं की सारी दुर्बलताएँ उसमें विद्यमान है । वह सत्तालोलुप, भ्रष्टाचारी एवं अवसरवादी है । हिन्दु महासभा से होकर वह नेता बन जाता है । महत्वाकांक्षी होने के कारण हिन्दु महासभा छोड़कर कांग्रेस में शामिल होता है । गुलाब नामक अपहृता लड़की से शादी करके शरणार्थियों के मन जीत लेता है । और लोगों के सम्मुख अपने को आदर्शवादी साबित करता है । चुनाव जीतकर दीनाराम चौधरी की सहायता से मंत्री बन जाता है । अगली बार उसे ही हराकर मुख्यमंत्री बनता है । कुर्सी को बनाये रखने केलिए पूंजीपतियों से लेकर कालेबाजारियों तक से संबन्ध स्थापित करता है । हत्याएँ करवाता है । शची को मुख्यमंत्री बनाकर स्वयं शासन चलाता है । उससे मनमुटाव होने पर उसे सत्ता से हटाने का प्रयास करता है । कांग्रेस साथ नहीं देती तो कांग्रेस छोड देता है और नई पार्टी का संगठन कर एक बार फिर मुख्यमंत्री बन जाता है । शची भी कम तिकडमी नहीं है । राजनीति में आने से पहले कुछ चिहकती तो है, एक बार आ जाती है, तो उसकी सत्तालोलुपता बढती जाती है । एक बार मुख्यमंत्री हो जाने पर अपने गुरु को ही छलाकर कुर्सी को बनाये रखने की कोशिश करती है । सदस्यों को जाल में फँसाती रहती है । इनके अलावा पार्टी अध्यक्ष, सरोजजी, सेठ प्रीतमचन्द, गुलाब सत्या आदि कथानक के विकास में योग देते हैं । शंकरभाई का चरित्र और उसकी निर्मम हत्या सूचित करती हैकि आदर्शवादियों का वर्तमान राजनीति में कोई स्थान नहीं रह गया है ।

"सबहिं नचावत राम गोसाई" के प्रमुख पात्र हैं - जबरसिंह, सेठ राधेश्याम और रामलोचन पांडे । जबरसिंह राजनेता, सेठ राधेश्याम पूंजीपति और रामलोचन पांडे ईमानदार पुलिस अधिकारी है । जबरसिंह डाकू खानदान का है और उसकी शिक्षा मामा रघुराजसिंह के यहाँ होती है । मामा स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख कार्यकर्ता है । यहाँ जबरसिंह का संबन्ध कांग्रेस से होता है और अपनी होशियारी से नेता बन जाता है । "करो या मरो" आन्दोलन में वह जेल भी जाता है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद एम•एल•ए• बन जाता है और सदाशिव गौतम की सहायता से उपमंत्री हो जाता है । अगले चुनाव में सदाशिव गौतम को ही धोखा देकर गृहमंत्री बन जाता है । अर्थलिप्सा और सत्तालोलुपता से प्रेरित होकर भ्रष्टाचार में डूब जाता है और सेठ राधेश्याम से उसका संबन्ध हो जाता है । अनैतिक तरीकों से उसे लाभ पहुँचाता है और चुनाव में उससे आर्थिक सहायता लेता है । तस्करों और कालेबाजारियों को संरक्षण देता है और ईमानदार पुलिस अधिकारियों को निलम्बित करता है । वह इतना गिरा हुआ होता है कि अपनी बीबी, सेठ राधेश्याम की पत्नी द्वारा अपमानित होने पर भी विचलित नहीं होता । लेकिन अगले चुनाव में वह उस पुलिस अधिकारी द्वारा हराया जाता है जिसे उसने निलम्बित कर दिया था । सेठ राधेश्याम बनिया है जिसके पितामह परचून की दूकान चलाते थे । राधेश्याम के पिता पूंजी को धर्म से जोड़कर लखपति बन जाते हैं तो राधेश्याम पूंजी को राजनीति से जोड़कर देश के बड़े उद्योगपतियों में स्थान पाता है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद धन को बचाये रखने केलिए वह कांग्रेस में शामिल होता है और खादी भी पहन लेता है । उसे जनहित की कोई चिंता नहीं है ।

उपन्यास का तीसरा पात्र रामलोचन पाण्डे ईमानदार पुलिस अफसर है, जो अपनी योग्यता और होशियारी से, मामूली थानेदार से शहर का कोतवाल बन जाता है । गृहमंत्री के आदमियों में से होने पर भी सेठ राधेश्याम को गिरफ्तार करने से वह नहीं हिचकता । इस कारण उसे अपनी नौकरी से वंचित होना पडता है । फिर भी वह राधेश्याम से माफी मांगने को तैयार नहीं होता । वह अपने मित्रों की प्रेरणा से गृहमंत्री के विरुद्ध ही चुनाव लडता है उसे हरा देता है । मज़दूर नेता कामरेड रवीन्द्र और किसान नेता कामरेड मार्तंड, वर्तमान "ट्रेड यूनियन नेताओं के प्रतिनिधिहैं,जो पूंजीपतियों के बहकाव में आकर निजी स्वार्थ की चिंता में किसान और मज़दूरों की चिंता छोड देते हैं ।

"काली आँधी" के प्रमुख पात्र मालती और जग्गी बाबू (जगदीश वर्मा) है। मालती अपने पति जग्गी बाबू से प्रेरणा पाकर राजनीति में कदम रखती है । पहला चुनाव म्युनसिपालिटी का लडती है । सफलता की सीढियाँ चढती हुई वह आगे बढती है । सफलता के नशे में वह अपने घर परिवार की चिंता छोड देती है । परिवार के टूटने का या पति और बेटी से छूटने का उसे कोई दुख नहीं होता । वह राजनीति के चंगुल में फंसती जाती है और चुनाव में सफलता प्राप्त करना ही उसका एकमात्र लक्ष्य रह जाता है और इसकेलिए कोई भी हथकण्डे अपनाने से वह नहीं हिचकती । सांप्रदायिकता के ज़हर फैलाने, गुण्डागर्दी पर उतरने, जातिवाद पर चुनाव लडने, अपने ही लोगों से पत्थर मारवाकर चोट खाके विरोधियों पर आरोप लगाके जनता की सहानुभूति प्राप्त करने जैसे चुनाव लडने के जितने भी तरीके हैं

उन सब में पारंगत है मालती । आज के राजनीतिज्ञों के सभी गुणों से युक्त है मालती का चरित्र । दूसरा पात्र जग्गी बाबू एक मध्यवर्गीय परिवार का स्वाभिमानी व्यक्ति है । वह आज की घृणित राजनीति से नफरत करता है और इसकारण टूटता जाता है । लिल्ली मातृ-वात्सल्य से वंचित लड़की है, जो माता-पिता के होते हुए भी रेसिडेंशयल स्कूल में रहने केलिए विवश है ।

"राग दरबारी" में प्रमुख पात्रों की भूमिका अदा करते हैं वैद्यजी, प्रिंसिपल, रंगनाथ, रुप्पन बाबू, खन्ना मास्टर, सनीचर, बद्री पहलवान, लंगड, छोटे पहलवान आदि । वैद्यजी का व्यक्तित्व किसी भी नेता के व्यक्तित्व जैसे लगता है, जो पूर्णत: यथार्थ है । बाहर से अत्यंत सभ्य, पवित्र, सहानुभूति-पूर्ण लगता है । वे निश्चक स्वार्थी अर्थलोलुप, सत्ता कांक्षी है ।" वह अंग्रेज़ों के जमाने उनका भक्त रहा, देश के स्वतंत्र होते ही ज़मीन बेचकर कॉलिज का मैनेजर बन बैठता है और नये तरीके से शोषण शुरू करता है । पंचायत यूनियन और सहकारिता समिति का सर्वेसर्वा बन जाता है । प्रिंसिपल वैद्यजी की चंचागीरी करके अपना स्थान बनाया रखता है । रंगनाथ आधुनिक, शिक्षित नपुंसक बुद्धिजीवी का प्रतीक है जो अत्याचारों को भुनभुनाकर सह लेता है । रुप्पन बाबू अनुशासनहीनछात्रनेता है । खन्ना मास्टर अपने अधिकारों केलिए लड़कर नौकरी से वंचित रह जाता है, जबकि सनीचर वैद्यजी का पालतू कुत्ता रहकर पंचायत यूनियन का मुखिया बन जाता है । बद्री पहलवान और छोटे पहलवान गुण्डागर्दी से

---

1. ओमप्रकाश होलीकर - हिन्दी उपन्यास विविध आयाम पृ.249

वैद्यजी की ताकत बढाने में सहायता पहुँचाते हैं, जबकि लंगड बिना रिश्वत देके अदालत से नकल लेने की लडाई में जिन्दगी बरबाद करता है ।

"कटरा बी आर्जू" के देशराज, बिल्लो, भोलू पहलवान, शम्सू मियाँ, शहनाज, महनाज, मास्टर बद्रुल हसन आदि मध्यवर्गीय पात्र हैं जिनके सपने और जीवन इमर्जेंसी के दौरान कुचल दिये जाते हैं । आशाराम प्रगतिशील विचारोंवाला पत्रकार है जो इमर्जेंसी के दमन चक्र से पीडित होकर कांग्रेस में शामिल होने केलिए विवश हो जाता है । गौरीशंकर पाण्डे सत्तालोलुप और स्वार्थी राजनेता हैं, जो कांग्रेस एम·पी· भी है । अपने मोटर गैरेज में मज़दूर यूनियन बनाते वक्त मजदूर नेताओं को दावत पर बुलाकर धन से ललचाता है । अपनी गरीबी के कारण शम्सू मियाँ बिक जाता है । देशराज वश में नहीं होता तो उसे नौकरी से निकाल देता है । इमर्जेन्सी के दौरान संजयगाँधी की खुशामदी में लगे रहता है । इसके बाद आम चुनाव के वक्त कांग्रेस की स्थिति बिगडती देखकर वह पार्टी छोड देता है और जनता टिकट में चुनाव लडता है । मास्टर बद्रुल हसन नसबंदी अभियान का शिकार हो जाता है तो बिल्लो शहर की सुन्दरता बढाने के अभियान का शिकार हो जाती है । पुलिस के हाथ प्रेमानारायण का बलात्कार होता है ।

"महाभोज" के दा साहब, सुकुल बाबू, जोरावर, डी·ऐ·जी· सिन्हा, एस·पी· सक्सेना बिसेसर, बिन्दा, मशाल के संपादक, सब जीवन्त पात्र हैं, जिन्हें हम अपने रोजमरा के जीवन में

देखने आ रहे हैं । दा साहब और मुकुल बाबू उन राजनेताओं के प्रतीक हैं जो जनमन जीतने का कोई भी अवसर अपने हाथ से जाने नहीं देते और सत्ता हथियाने और सत्ता को बनाये रखने के कोई भी जघन्य अपराध करने से नहीं हिचकते । जोरावर, उन पूंजीपतियों और जमींदारों का प्रतिनिधित्व करता है जो राजनीतिज्ञों के आशीर्वाद से जनता के शोषण में लगे हुए हैं और और अपने विरुद्ध आवाज़ उठानेवालों को खत्म कर देते हैं । बिसेसर प्रगतिशील विचारों से युक्त शिक्षित नवयुवक है जो किसानें को अपने अधिकारों के प्रति सजग बनाता फिरता है, शोषण एवं अत्याचारों का विरोध करता है और जमींदार के गुण्डों से मारा जाता है । बिन्दा, बिससेर की लडाई को आगे के जाना चाहता है । लेकिन बिसु की हत्या का आरोप लगाकर वह पुलिस द्वारा गिरफ्तार किया जाता है । एस॰पी॰ सकसेना अपनी ईमांदारी के कारण सत्ताधारी दा साहब की नाराज़गी का पात्र बन जाता है और नौकरी से सस्पेंड कर दिया जाता है, जबकि डी॰ऐ॰जी॰ सिन्हा मंत्री की इच्छा के अनुसार रिपोर्ट लिखकर ऐ॰जी॰ बन जाता है। "मशाल" का संपादक दत्ता बाबू उन शिक्षित बुद्धिजीवियों का प्रतिनिधित्व करता है जो सत्ताधारियों से समझौता करके अपनेलिए अधिक से अधिक भौतिक साधन जुटाने में व्यस्त हैं ।

"जंगलतंत्रम्" में पात्रों का प्रतीकात्मक चित्रण हुआ है । इसके चार प्रमुख पात्र हैं सिं, मोर, नाग और चूहा । सिंह राजनेता का, मोर प्रशासक का, नाग पूंजीपति का और चूहा आम आदमी का प्रतीक है । तथाकथित प्रजातंत्र का चित्र प्रस्तुत प्रतीकात्मक पात्रों के माध्यम से उभरता है । राजनेता की सत्ता-

लोलुपता प्रशासन और पूंजीपतियों द्वारा जनता का शोषण, राजनेता और पूंजीपतियों के गठबन्धन आदि इन पत्रों के माध्यम से स्पष्ट होता है ।

"महामहिम" का नायक तोताराम नालायक और अनुभवहीन व्यक्ति है । राज्य की सत्ता की बागडोर अपने ही हाथों में सुरक्षित रखने केलिए केन्द्रीय मंत्री चन्द्रिका प्रताप सिंह ने उसे मुख्यमंत्री बनाया था । जटाधर शुक्ल जो महत्वाकांक्षी राजनेता हैं, अपना एक गुट बनाकर विरोध करता है । लेकिन उसके गुट के सदस्य मंत्रीपद मिलने पर उसे छोड़कर जाते हैं, जिन्हें अधिक लगाव पदों से है, जटाधर शुक्ल से कम । लुभावन के इशारे तोताराम चलता है । ठेकेदार कर्मचन्द सरकारी ठेका लेता है, कैंसल करता है और सरकारी सिमेंट एवं लोहा बेचकर लाखों कमाता है । लुभावन ठेके दिलने में दलाल की भूमिका निभाता है । राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का स्वामी ब्रह्मचारी मंत्रिमंडल छोड़कर विपक्षी दल से मिलने की धमकी देके अपने आदमियों केलिए ज्यादा से ज्यादा मंत्री पद हथियाने की राजनीति में लगे रहता है । गुप्त रूप से संप्रदायिक दंगे फैलाकर फायदा उठाने में भी यह निपुण है । इस प्रकार इन पात्रों के माध्यम से वर्तमान राजनीति का कुरूप चेहरा उभरकर आता है ।

गीधू चमार, अलगरजिया बाबा, सलमी, चतुर्भुज और शोषक सामंत लोग हैं, "हजार घोड़ों के सवार" के प्रमुख पात्र । गीधू, शोषण, अत्याचार, छुआछूत, धार्मिक आडम्बरता, अंधविश्वास, जातिवाद आदि के विरुद्ध आमरण युद्ध करके शहीद हो जाता है ।

वह मज़दूर, चमार, साधु, फौजी और संसद सदस्य होकर जिन्दगी के दौर में अनुभव करता है कि हर कहीं शोषण ही शोषण है । शोषण के विरुद्ध लड़ता हुआ वह मर मिटता है । अलगरजिया बाबा समाजवादी विचारों से युक्त साधु है । वह मानता है कि शोषण से मुक्ति का मार्ग आर्थिक समानता और वर्गहीन समाज की स्थापना है । वह धर्म को उच्च वर्ग के लोगों से निर्मित शोषण का हथियार मानता है । वह छुआछूत को नहीं मानता और इसलिए ढोंगी लोगों से मारा जाता है । सलमी, निर्धन और निम्न वर्ग की स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती है, जिनकी निर्धनता का शोषण सेठ-साहुकार अपनी वासनापूर्ति हेतु करते हैं । चर्तुभुज वह ढोंगी नेता है, जो अपने वर्ग के हित की चिंता को अपने हित में भुला देता है और शोषकों से मिलकर अपने ही वर्ग के ईमानदार एवं कर्मठ नेता की हत्या का षड्यंत्र रचता है । बाद में उसकी मृत्यु पर शोक प्रकट करके यह सिद्ध करने की कोशिश करता है कि वह अपने वर्ग और जन का हितैषी है ।

"दारुलशफा" के गुरुपदस्वामी, उत्सुकदास, रंगीनराय, लोबीराम, कृष्णवल्लभ यादव आदि वर्तमान राजनेताओं के सारे गुणों से युक्त पात्र हैं । सत्ता हथियाने केलिए गुटबन्धी, धन, सुरा, सुन्दरी से लेकर काल तक के मात्र का उपयोग करने में ये सिद्धहस्त हैं । इनके सहायक हैं कामयाब सेठ जैसे ठेकदार एवं पूँजीपति, यशोधावल्लभ जैसे केलेबाजारी, दुर्लभकाछी जैसे डाकू एवं हत्यारा और विमला देवी जैसी प्रतिबद्ध नारी । सत्ता की इस होड में कुचल दिये जाते हैं फूलदास जैसे ईमानदार पुलिस अधिकारी, कालिका प्रसदास का परिवार और शांतिप्रणाली के सपने ।

"समय एक शब्द भर नहीं है" का केन्द्र पात्र भुवन किशोर अथवा टेकचन्द है, जो यौनकुंठाओं से पीडित साहित्यकार है । वह शहर-शहर भटकता रहता है और नैनीताल में अपने मित्र आशु के यहाँ उसकी मुलकात नक्सलवादी जन-आन्दोलन से संबद्ध रजनी अधिकारी से होती है । उससे प्रेरणा पाकर वह जनआन्दोलन में शामिल होता है और उसे जीवन में एक नया अर्थ मिल जाता है । उपन्यास के अन्य पात्र हैं - पुलिस सुपरिन्टेंडेंट शमशेर चौधरी, उसकी बेटी जया चौधरी, पहाडियों के नेता मंगोई, नवेन्दु घोष, भुवन की प्रेमिका संगीता बानर्जी आदि । पुलिस अत्याचार और शोषण के चित्र भी इन पात्रों के माध्यम से उभरते हैं ।

शांतिभा के मुंशीजी, खरा, मास्टर नन्दकिशोर, घसीटा, बालकृष्ण, कवि मधुरजी, दुर्गा कचौडीवाला आदि पात्र आम आदमी के प्रतीक है जो आपातकाल के अत्याचारों के शिकार बन गये थे । इनमें गाँधीवादी राजनीतिक कार्यकर्ता हैं मुंशीजी और इसलिए उनको इमर्जेंसी के दौरान जेल जाना पडता है तो मधुरजी व्यवस्था विरोधी कवि होने के कारण जेल में बंद किये जाते हैं । मास्टर नन्दकिशोर नसबंदी के प्रमाणपत्र जुटाने में असफल रहने के कारण नौकरी से निकाल दिया जाता है । पुलिस टार्चर से डरकर, खरा आग में कूदकर आत्महत्या करता है । दुर्गा कचौडीवाले की पत्नी नसबंदी के दौरान मर जाती है । बालकृष्ण को क्रांतिकारी कहकर पुलिस पकड के जाती है तो बीच में वह भाग निकलता है और नदी में गिरकर मर जाता है । त्रिलोचन पाण्डे और मदानन्द के बीच की सत्ता की लडाई वर्तमान राजनीति के यथार्थ चेहरा प्रस्तुत करती है ।

"प्रजाराम" उपन्यास का नायक प्रजाराम, व्यक्ति न होकर तत्कालीन मानसिकता का प्रतीक है । भ्रष्ट इंजनीयर अशुतोष, रामेश्वर, जो इमर्जेन्सी की आड में नेता बनकर अवसर का फायदा उठाता है, आदि हैं उपन्यास के अन्य पात्र । अशुतोष, जो भ्रष्टाचार से अपार संपत्ति का मालिक बन गया था, इमर्जेन्सी के दौरान अपने को बचाने केलिए काग्रेस का समर्थक बन जाता है और टुच्चे राजनेता को अपनी बेटी को सौंप देता है । प्रजाराम इन राजनेताओं और भ्रष्ट कर्मचारियों के काले कारनामों का रहस्योद्घाटन करता है ।

उपन्यासों के पात्र और उनके चरित्र के विश्लेषण से पता चलता है कि इन पात्रों की रचना में समसामयिक राजनीति ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है । लेकिन पात्रों के जीवन्त होने पर भी कहीं कहीं इनकी स्वाभाविकता पर संदेह होने लगता है । "एक और मुख्यमंत्री" का अरविंद अपने प्रभावात्मक व्यक्तित्व के बल पर हिन्दु महासभा से होकर काँग्रेस में पहुँचता है और दो बार मुख्यमंत्री बन जाता है । उसके बाद सत्ता से निकाल दिया जाता है । दल बदलकर एक बार फिर वह मुख्यमंत्री बन जाता है । किसी भी तरीके से हो अरविंद का तीन बार मुख्यमंत्री बन जाना अस्वाभाविक था अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतीत होता है । लेकिन इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि समकालीन राजनीति के यथार्थ चेहरे को प्रस्तुत करने में अरविंद के चरित्र का महत्वपूर्ण योगदान रहा है । एक और बात यह है कि यहाँ लेखक का उद्देश्य भी अरविंद के चरित्र को उभारने की अपेक्षा स्थितियों की जीवन्तता को उभारकर रखना प्रतीत होता है,

जहाँ पात्र एक साधन मात्र रह जाता है । इसलिए एक हद तक अस्वाभाविक होते हुए भी अरविंद का चरित्र जीवन्त है और वह ऐसे राजनेताओं का प्रतीक बन जाता है जो राजनैतिक साजिशों में शरीक होकर तिकडमबाज़ी के बल पर दलबदल का सहारा लेते हुए सत्ता हथियाते दिखाई पड़ता है । "आया राम - गया राम" की कहानी का राजनीति में प्रवेश इन्हीं बेईमान, विश्वास घाती, राजनीतिज्ञों से शुरू होती है ।

"कटरे बी आर्ज़ू" के देशराज और बिल्लो की सृष्टि आपातकालीन विसंगतियों की अभिव्यक्ति के लक्ष्य से हुई है । ये पात्र लक्ष्यसिद्धि में सफल हुए हैं और अपनी जीवन्तता के कारण अधिक विश्वसनीय बन गये हैं । समकालीन सत्तालोलुप राजनेता के रूप में गौरीशंकर पाण्डे का चेहरा जाना-पहचाना लगता है । 'राग दरबारी' के वैद्यजी, 'महाभोज' के डी॰ऐ॰जी॰ सिन्हा और एम॰पी॰ सक्सेना, 'शातिभंग' के मुंशीजी, 'प्रजाराम' के अशुतोष एवं रामेश्वर आदि पात्र वर्तमान राजनीति के भिन्न पहलुओं की अभिव्यक्ति में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं । अपनी जीवन्तता के कारण ये विशेष उल्लेखनीय बन गये हैं ।

"समय एक शब्द भर नहीं है" का नायक भुवन किशोर यौन-कुंठाओं से पीड़ित युवक है । घर छोड़ने के बाद एल॰डी॰क्लर्क, प्रूफ रीडर, अध्यापक आदि के रूप में काम करता है । वह कहीं टिक नहीं पाता । सब कहीं वह अपने को "मिसफिट" पाता है । भुवन की प्रेमिका उसे छोड़कर चली जाती है तो वह अपनी नपुंसकता के प्रति सजग होता है । अपनी ज़िन्दगी को आधार बनाकर रुग्ण मानसिकता की कहानियाँ लिखता हुआ वह भटकता रहता है ।

इस बीच रजनी उनियाल से उसकी मुलाकात होती है और उससे प्रभावित होकर नक्सलवादी बन जाता है । लेकिन यह परिवर्तन स्वाभाविक नहीं प्रतीत होता । प्राय: देखा जाता है कि नक्सलवादी दृढसंकल्पवाले होते हैं । चंचल मानसिकता से युक्त व्यक्ति नक्सलवादी नहीं हो पाता । लेकिन यहाँ तो भुवन और किसी टिकाने से न लगने पर अन्त में उग्रवाद का सहारा लेते हुए आतंकवादी बन जाता है । पात्र और परिस्थितियों पर विचार करने से लगता है कि इस उपन्यास के लेखक को नक्सलवादी दर्शन की गहरी जानकारी नहीं है । क्योंकि जहाँ कहीं भी नक्सलवादी चेतना दिखाई पडी थी, वहाँ सब उस दर्शन के प्रति प्रतिबद्धता को जीवन का लक्ष्य समझकर चलनेवाले युवकों की शक्ति काम करती रही । यौन कुंठा, नपुंसत्व आदि से पीडित और यौन कथाओं के द्वारा मनोरंजन करनेवाला, यौवन के उत्तेजनात्मक और शक्ति-संपूर्ण दिनों का इस नपुंसकत्व में जीनेवाला अंतिम दिनों में अपनी तलाशी हुई मंजिल के रूप में नक्सलवाद पर पहुँच जाता है । यह किसी भी मायने में स्वीकार्य तथ्य नहीं हो सकता । अत: राजनैतिक उपन्यासों के बीच नक्सलवादिता को नीचा दिखाने केलिए लिखा गया उपन्यास के स्तर पर यह रचना गिर जाती है ।

उपर्युक्त उपन्यासों के पात्रों पर नज़र डालने पर लगता है कि रचनाकारों का लक्ष्य चरित्रों की मार्मिकता को उनकी विविधता के साथ प्रस्तुत करना नहीं रहा, बल्कि उनका उद्देश्य राजनैतिक स्थितियों को उभारकर रखना और उन्हीं राजनैतिक परिवेशों में पनपनेवाली ज़िन्दगी की विद्रूपता और मानवीय संत्रास को प्रस्तुत करना था । इस देश की यह ट्रेजडी रही है कि हर

ईमांदार आदमी को यहाँ अपना ईमाना बेचना पडता है, हर आदर्शवादी को रोटी के टुकडों केलिए कुत्ते की मौत मरना पडता है । समूची कथ्यात्मकता और पात्रों के बीच से उमडनेवाली परिस्थितियाँ, भारतीय राजनीति की विद्रूपता को और मुट्ठी भर राजनीतिज्ञों के चँगुल में फँसी हुई देशवासियों की नियतीको बडे निस्संग भाव से देखने और दिखाने का प्रयत्न करती है ।

राजनैतिक जीवन का प्रभाव और औपन्यासिक दृष्टि

भारतीय जनजीवन में राजनैतिक चेतना का उत्भव और विकास स्वतंत्रता संग्राम के साथ हुआ था । इसका एकमात्र लक्ष्य रहा स्वतंत्रता प्राप्ति । स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ स्थितियों में परिवर्तन होने लगा और प्रजातंत्र की स्थापना के साथ राजनीति का प्रभाव बढने लगा । सत्ता विकेन्द्रीकरण हेतु पंचायतीराज की स्थापना हुई तो साधारण से साधारण आदमी भी अपने को राजनीति से संबद्ध महसूस करने लगा । लेकिन खेद की बात है कि जनताके विकास और उत्थान के साधन प्रस्तुत करनेवाली राजनीति में असामाजिक तत्वों की घुसपैठ होने लगी और देखते देखते राजनीति सत्ता और पदलोलुपता की राजनीति बन गयी । राजनेता जनसेवक न रहकर, पदलोलुपता और अर्थलिप्सा से प्रेरित होकर पूँजीपतियों और कालेबाजारियों के दलाल होने लगे । और स्वार्थपूर्ति हेतु असामाजिक तत्वों को बढावा देने लगे । आदर्श और सिद्धांत भाषण तथा वक्तव्य तक सीमित रह गये । परिणामत: सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अराजकता फैलती गयी ।

राजनेता नारों, वक्तव्यों और भाषणों से लोगों को आश्वासन देते रहे । लेकिन समय ने साबित किया कि "जमीन्दारी उन्मूलन", "समाजवाद लाओ", "गरीबी हटाओ" आदि खोखले नारों से बढ़कर और कुछ नहीं है । देश में बेकारी बढ़ती गयी और भुखमरी के कारण गरीबी की जगह गरीब हटने लगे । इन सारी स्थितियों ने एक असंतुष्ट और निराशाभरी पीढी को जन्म दिया । इस नयी पीढी के साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में अपने भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति दी । आदर्श और संस्कृति की अभिव्यक्ति तक सीमित रहना इनकेलिए संभव नहीं था । क्योंकि "जहाँ धर्म और राजनीति में बराबरी की संडाँध पैदा हो चुकी है वहाँ संस्कृति को कवच की तरह इस्तेमाल करना संभव नहीं रह जाता ।"[1] इसलिए समसामयिक जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति होने लगी । नयी पीढी के इन रचनाकारों की विशेषता यह है कि "आज का जीवन जिन विकृतियों, विद्रूपों और विसंगतियों से भर गया है, उससे अलग होकर किन्हीं आरोपित मूल्यों का सहारा रचनाकार नहीं लेता । आज के लेखन में इसी विघटन और इसी संकट में जूझते जीवन का चित्रण हुआ है, क्योंकि यथार्थ के अतिरिक्त किन्हीं काल्पनिक मूल्यों में न तो उनका विश्वास ही है और न वह उसको स्वीकारता ही है । आज का लेखन तथाकथित मूल्यों, सदाशयता और पवित्रता के नीचे छिपी हुई गंदगी को निर्भय दिखाने का साहस रखता है"[2] ।

---

1. रमेशचन्द्र शाह - वागर्थ, पृ.10
2. डॉ. कमल कुमार - काव्य परंपरा और नई कविता की भूमिका, पृ.57

"उठती हुई जनता का साहित्य एक बडे अंश में राजनीति प्रभावित होगा, इसलिए कि राजनीति जनता के उत्थान का आवश्यक माध्यम है[1]।" यह राजनीति जनता के शोषण का हथियार बन जाती है तो संकट और विघटन की स्थिति पैदा होती है। ऐसी स्थिति में रचनाकार दायित्व अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है। यह दायित्व, सामाजिक यथार्थ से संपृक्त प्रगतिशील भावनाओं से भरपूर नये भाव बोध को जन्म देता है, जिसकी अभिव्यक्ति ईमानदारी के साथ होती है। "स्वातंत्र्योत्तर कालीन उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास में राजनीतिक परिवेश के विविध पहलुओं का सही चित्रण किया है। देश में फैले भ्रष्टाचार, विभिन्न दलों पाया जानेवाला सत्ता-संघर्ष, चुनाव में अपनाये जानेवाले हथकण्डे, प्रत्यक्ष कृति की अपेक्षा लोगों की आँखों में धूल झोंकनेवाली ऊँची-ऊँची घोषणाएँ अपने ही कथित आदर्शों की अवहेलना करते हुए विपरीत आचरण आदि असंगतियों पर अनेक उपन्यासकारों ने अपना ध्यान केन्द्रित किया है[2]।"

रचनाकार की दृष्टि उपन्यासों के आधार पर

"एक और मुख्यमंत्री" में उपन्यासकार ने स्वाधीनता प्राप्ति से लेकर तीसरे आम चुनाव तक के राजनैतिक जीवन का चित्र प्रस्तुत किया है। राजनैतिक जीवन इस दौरान हुई सडन और पतन का चित्र करते हुए सामाजिक विसंगतियों की ओर उसने इशारा किया

1. विजयनारायण साही - छठवाँ दशक, पृ.18
2. डॉ.पीताम्बर सोदे - आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में राजैतिक एवं आर्थिक चेतना, पृ.319

है । नौकरशाही, भ्रष्टाचार, जातिवाद और भाषावाद से लेकर राजनेता और पूंजीपतियों के गठबन्धन, दल-बदल, पत्रकारिता की दायित्वहीनता तक का जीवन्त चित्र प्रस्तुत कर लेखक ने दिखाया है कि हमारी देश की हालत क्या रह गयी है । देश की वर्तमान स्थिति के जिम्मेदारों की ओर संकेत करते हुए अपने अंतिम और पश्चतापे के दिनों में अरविंद कहता है - "यहाँ किसी में देश के प्रति शुद्ध भावना नहीं । सभी अपने प्रति ईमानदार है । वरना इस महत्मा गाँधी के देश का यह पतन होता ? श्री अन्नादुराई की हठधर्मिता, शेख अब्दुल्ला जैसे लोगों को पनाह, श्री·जयप्रकाश नारायण जैसे महान सर्वोदयी नेता के बिना लगाम के विवादास्पद भाषणों पर छूट, श्री·राजगोपालाचारी जैसे मनीषी मानवों द्वारा देश में विघटनकारी तत्वों को भड़काने की बातें यह सब क्या है ? यह सब हमारे पतन के पूर्वाभास है[1] !"

xx xx xx "हमारी सत्तारूठ पार्टी याने हम लोग ही अपने देश में विघटनकारी तत्वों को सिर उठाने केलिए पोषण देते हैं । न मद्रासी हिन्दी का विरोध करता है और न केरली ! विरोधी कराते हैं - हमारे निम्न स्तर के स्वार्थ[2] !" इस प्रकार लेखक ने दिखाया है कि देश की वर्तमान स्थिति के जिम्मेदार स्वार्थी राजनेता है, जो हर समस्या को संकीर्ण बनाकर राजनैतिक स्वार्थ की बात सोचते हैं ।

"सबहिं नचावत राम गोसाई" में भावतीचरण वर्मा ने दिखाया है कि किस प्रकार कालेबाज़ारी और पूंजीपती जैसे

1· यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - एक और मुख्यमंत्री, पृ·415

2· वही, पृ·405

असामाजिक तत्व स्वतंत्र भारत में देश की प्रगति में बाधा पहुँचा रहे हैं और राजनेता कुर्सी को बनाये रखने केलिए जनहित की चिंता छोड, पूंजीपतियों से संबन्ध जोड्कर स्वार्थमूर्ति कर रहे है, और पूजीपति खादी पहनकर कांग्रेस में शामिल होकर पूंजी की रक्षा कर रहे हैं। यद्यपि अत्याचारों से लड्कर आदर्शवादी रामलोचन पाण्डे विजय प्राप्त करता है, फिर भी इधर उपन्यासकार नियतिवादी निकलता है। "उपन्यासकार यही मानकर चला कि सब भगवान की लीला, मनुष्य के वश में कुछ नहीं, वह चाहे तो क्षण-भर में राजा से रंक और रंक से राजा बना सकता है।[1] लेखक के ही शब्दों में "यह सब चरित्र रामगोसाई के इंगित पर नाच रहा है। यह चरित्र ही नहीं, यह दुनिया रामगोसाई के इंगित पर नाच रही है।"[2]

"काली आँधी" में कमलेश्वर ने यह दिखाने की कोशिश की है कि कैसे युगीन राजनीति आदमी की कमज़ोरियों का फायदा उठाकर, उसे बहकाकर उसका शोषण कर रही है। शोषण की इस प्रक्रिया में धर्म और जाति से लेकर दारू और गुण्डागर्दी तक का इस्तेमाल होता है। राजनेता स्थितियों का केवल अपने हितमेंइस्तेमाल करने की सोचते हैं। जनता के उत्थान पर उनकी कोई दिलचस्पी नहीं है। राजनेताओं की कुत्सित वृत्तियों से तंग आकर जग्गी बाबू कहता है - "तुम्हारी यह राजनीति बडी घटिया चीज़ है तुम लोगों ने इसे निहायत बेहूदा बना दिया है। तुम सिर्फ चीज़ों का बखूबी इस्तेमाल करना जानते हो!

---

1. डॉ. रणवीर रांग्रा - हिन्दी उपन्यास अछूते संदर्भ, पृ.93
2. भगवतीचरण वर्मा - सबहिं नचावत रामगोसाई, पृ.284

बाढ आई तो उसे इस्तेमाल करो, कहीं कोई लड़की भाग गयी तो उसके भागने को इस्तेमाल करो कहीं कोई मर गया तो उसकी मौत को इस्तेमाल करो तुम लोगों ने आदमी की आँसुओं और जजबातों तक को नहीं छोडा उसकी आशाओं और सपनों तक को नहीं बख्शा इससे ज्यादा घटिया बात और क्या हो सकती है कि दुखी और मुसीबतजदा इनसानों के सपनों को नारे बनाकर निचोड लिया ।"[1]

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हुई प्रगति से अप्रभावित गाँव की स्थिति का चित्रण और गाँव को प्रगति से रोकनेवाले तत्वों की खोज ही "राग दरबारी" के लेखक का उद्देश्य प्रतीत होता है । उपन्यासकार ने वर्तमान सामाजिक और राजनैतिक जीवन की मूल्यहीनता को अनावृत किया है । स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सत्ताधारी तो बदले, लेकिन उनकी मनोवृत्ति नहीं बदली । शोषण की प्रवृत्ति ज्यों की त्यों बनी रही । लेखक ने व्यंग्य के सहारे समसामयिक जीवन को प्रस्तुत किया है । उसने स्पष्ट किया है कि हमारा देश भुनभुनानेवालों का देश है । अत्याचार के विरुद्ध कोई क्रियात्मक विरोध नहीं प्रकट करता । लोग भुनभुनाकर सब बर्दाश्त कर लेते हैं । शिक्षित बुद्धिजीवी वर्ग सुविधाभोगी बन गया है । उपन्यास में चित्रित स्थितियाँ पाठक को सोचने केलिए विवश करती है ।

---

1. कमलेश्वर - काली आँधी, पृ.4-5

राही मासूम रजा ने अपने उपन्यास "कटरा बी आर्जू" में आपातकाल की भूमिका, आपतकालीन स्थिति और जनता पार्टी के शासन में आने तक के कालखण्ड की स्थिति का यथार्थपरक चित्रण किया है । उपन्यास के फैसला नामक अध्याय में स्वयं उपस्थित होकर लेखक ने इंदिरागाँधी, आपातकालीन स्थिति और काग्रेस सरकार की आलोचन की है । और अपना विचार व्यक्त किया है । "काग्रेसी सत्ता और पूँजीवाद के आपसी संबन्धों, उनके भीतर की समझौतावादी इच्छाओं और एक दूसरे की सहायता करनेवाली निश्चयात्मक स्थितियों का विस्तृत चित्रण इस उपन्यास में किया गया है[1]।" इसमें काग्रेस की नीतियों का विरोध स्पष्ट होता है । लेकिन यह कोई अंधा विरोध नहीं है । "सांकेतिक रूप में लेखक ने यह भी उद्घाटित किया है कि काग्रेस के विकल्प के रूप में आनेवाली जनता पार्टी से कोई उम्मीद नहीं की जा सकती, क्योंकि इसमें भी वे ही लोग हैं जो काग्रेस में थे[2]।"

"महाभोज" में मन्नू भंडारी ने वर्तमान राजनेताओं की घिनौनी वृत्तियों का पर्दाफाश किया है । "आज़ादी के बाद भारत की राजनीति, सुविधा प्राप्ति की राजनीति बनकर रह गयी है । हर दल घटनाओं का इस्तेमाल करना चाहता है । किसी भी दल के पास निर्माण का कार्य नहीं है[3]।"

---

1. डॉ. रामविनोद सिंह - आठवाँ दशक के हिन्दी उपन्यास, पृ.130
2. डॉ. रामदरश मिश्र - हिन्दी उपन्यास समकालीन परिदृश्य, पृ.86
3. डॉ. रामविनोद सिंह - आठवाँ दशक के हिन्दी उपन्यास, पृ.168

उपन्यास में चित्रित स्थितियों से स्पष्ट होता है कि "कुर्सी और इनसानियत में वैर है । इनसानियत के खाद पर ही कुर्सी के पाये अच्छी तरह जमते हैं ।"[1]

जंगलतंत्रम्" में श्रवणकुमार गोस्वामी ने प्रतीकात्मक चरित्रों द्वारा वर्तमान राजनीति का यथार्थपरक चित्र प्रस्तुत किया है और दिखाया है कि राजनेता, प्रशासक और पूँजीपति मिलकर कैसे आम आदमी का शोषण कर रहे हैं । लेखक के अनुसार इस शोषण से मुक्ति का एकमात्र उपाय नेता के रूप में सही व्यक्ति का चुनाव है । शिवजी के शब्दों द्वारा लेखक ने आम आदमी को जागने का उपदेश दिया है - "तू अपनी शक्ति को पहचान । दूसरे की जयजयकार करना और किसी के पीछे चलने की आदत छोड । एक बार तू उनके आगे चलने की कोशिश कर, जिनके पीछे अब तक चलता रहा है । जिस तरह झाड़ू से गन्दगी दूर की जाती है, उसी तरह तू अपने वोट से उन सब का सफाया कर सकता है - जो तेरे दुश्मन है । अगर तेरी झाड़ू ठीक है और तू ठीक है तो गन्दगी दूर होकर रहेगी ।"[2] मतलब यह है कि प्रजातंत्र की सफलता मतदान के सही उपयोग पर निर्भर है ।

---

1. मन्नू भंडारी - महाभोज, पृ.29
2. श्रवणकुमार गोस्वामी - जंगलतंत्रम्, पृ.125

"महामहिम" में प्रदीप पंत ने वर्तमान राजनीति में व्याप्त स्वार्थपरता, जोड-तोड, साम्प्रदायिकता, भाई-भतीजावाद आदि का यथार्थपरक चित्रण व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है । लेखक के अनुसार "यह व्यंग्य उपन्यास एक प्रकार से सिद्धांतहीन राजनीति के प्रति विरोध प्रदर्शन ही है[1] ।" प्रजातंत्र की विशेषता यह है कि उसमें कोई भी नेता या मंत्री बन सकता है । इसकेलिए किसी विशेष योग्यता की अपेक्षा नहीं है । प्रजातंत्र की कमज़ोरी भी यही है । तोताराम के द्वारा लेखक ने दिखाया है कि नालायक अनुभवहीन व्यक्तियों के नेता होने का परिणाम क्या होता है । राजनेताओं की अवसरवादिता की ओर भी लेखक ने संकेत किया है "राजनीति में कोई स्थाई समझौता नहीं होता, जो तुमसे सबेरे समझौता कर गया है, क्या पता शाम तक तुम्हें दगा देकर तुम्हारे विरोधी से जा मिले[2] ।"

"हज़ार घोडों के सवार" में दलित वर्ग के शोषण की कहानी प्रस्तुत करते हुए लेखक ने बताया है कि शोषण और संबद्ध समस्याओं का समाधान आर्थिक समानता और समाजवादी समाज की स्थापना है । उपन्यास के पात्र अलगरजिया बाबा कहता है "तेरी इच्छा, इसलिए ही तो मैं कह रहा हूँ कि वर्गहीन समाज की रचना होनी चाहिए । यह तभी संभव हो सकता है जब हम सब अपनी स्वतंत्रता केलिए एक और लडाई लडे ।

---

1. प्रदीप पंत - महामहिम - लेखकीय वक्तव्य से ।
2. वही, पृ.29

अतीत की सारी कुत्सित परंपराओं व रूढियों को जडमूल से उखाडना पडेगा । कभी कभी ये विरासतें नयी व्यवस्थाओं को कुत्सित कर देती है और अवसर मिलने पर हडप भी सकती है इसलिए याद रखो जब तक प्रकृति की सारी सम्पदा हडपकर जन-शोषण करनेवाले राजाओं, ठाकुरों, सामन्तों, जागीरदारों को समाप्त नहीं किया जाएगा तब तक नयी व्यवस्था स्थापित नहीं हो सकती ! तुम सब गरीबों को ईश्वर और धर्म के खोखले आतंक से मुक्त करो । उन्हें कहो कि सत्य, बुद्धि, प्रेम और समता ही ईश्वर है । यहीं पर स्वर्ग है और यहीं पर नरक । इसलिए तुम्हें मिलकर इस धरती को स्वर्ग बनाना है ।"[1]

"दारूलशफा" में राजकृष्ण मिश्र ने सत्ता की होड में लगे राजनेताओं की खोखली नीतियों और घृणित वृत्तियों द्वारा राजनीति में व्याप्त सडांध और अवमूल्यन की ओर संकेत किया है । लेखक ने दिखाया है कि पार्टी और सिद्धांत चाहे भिन्न हो, व्यावहारिक राजनीति में राजनेता, सब एक जैसे हैं । राजनेता और पूंजीपतियों के बीच के अवैध संबन्ध, ईमानदार अफसरों की दयनीय स्थिति, सत्ता हथियाने के साधन के रूप में पद, धन, शराब, नारी एवं गुण्डाओं तक के इस्तेमाल के चित्र है उपन्यास में । उत्मुकदास को भ्रष्टाचारी एवं हत्यारों का संरक्षक कहकर उसके मुख्यमंत्री बनने में आपत्ति प्रकट करनेवाला रंगीनराय पार्टी अध्यक्ष के पद मिलने पर चुप हो जाता है । इसके द्वारा लेखक ने व्यक्त किया है कि अत्याचारों का विरोध भी स्वार्थ की चिंता से मुक्त नहीं है ।

---

1. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - हज़ार घोडों का सवार, पृ.158-159

"समय एक शब्द भर नहीं है" उपन्यास में धीरेन्द्र आस्थाना ने नवसली आन्दोलन और उसके प्रति सत्ता के निर्मम प्रतिक्रिया का चित्र प्रस्तुत किया है । इस उपन्यास में उन स्थितियों का भी चित्र है जिन्होंने शिक्षित युवकों को प्रस्तुत जन-आन्दोलन का रास्ता अपनाने केलिए विवश किया था । लेकिन यह उपन्यास प्रत्यक्ष रूप से नवसली आन्दोलन का समर्थन नहीं करता ।

"शांतिभंग" में मुद्राराक्षस ने आपातकालीन स्थिति और तज्जन्य विसंगतियों के चित्रण द्वारा समकालीन राजनीति के यथार्थ को प्रस्तुत किया है । "राजनीति और उसका स्वहित में उपयोग नि:संदेह सामाजिक मूल्यों की अवहेलना का दृष्टिकोण है और जब तक यही दृष्टि रहेगी, तब तक चाहे कोई भी सरकार हो, कोई भी राजनेता हो, सामाजिक हित और राष्ट्र हित केलिए कुछ कर पायेंगे, इसमें संदेह है । लेखक ने स्पष्ट किया है कि आपतकाल से गुजरकर जिस स्थिति में पहुंचे, वह भी कोई संतोषप्रद नहीं है । तो फिर विकल्प क्या है ? इसकी चिंता उपन्यासकार का उद्देश्य भी नहीं है । उसने निरपेक्ष भाव से एक परिवेश मूर्त किया है, निर्णय और विकल्प पाठकों पर है ।"[1]

"प्रजाराम" उपन्यास में यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र" ने आपातकाल के आतंक और अत्याचार की भयावह स्थितियों के साथ उन अच्छाइयों का भी चित्रण किया है जिससे आम आदमी को कुछ राहत मिली थी । जनता शासन के प्रारंभ काल में उपजे मतभेद और कुर्सी की लडाई का भी चित्र उपन्यास में है । हमारे देश की

---

1. भैरूलाल गर्ग - प्रकर - फरवरी 1985, पृ.2।

दयनीय स्थिति की ओर प्रजाराम संकेत करता है - "हरिजन, किसान, मुसलमान, बनिया, राजपूत, ब्राह्मण और कायस्थ जातियों के आधार पर चुनाव करना या जीतना कितना भयावह है ? आज तीस साल के बाद भी यहाँ का मानस इसी आधार और इसी संदर्भ में बात करता है, यह कितना घटियापन है ? यह सोचने का कितना गलत तरीका है ? मुझे लगता है कि सब सैद्धांतिक मामले में कमज़ोर हैं । सिद्धांत को तो कोई भी नहीं जीता । सब जाति और धर्म को जीते हैं और जब तक आदमी जाति और धर्म को जीता रहेगा तब-तक मानवता का हनन होता जाएगा । देश अराजकता की ओर चलता चला जाएगा[1] ।" इस त्रासदी से मुक्ति पाने का उपाय बताते हुए प्रजाराम कहता है - "सभी इनसानों का भारतीयकरण करना चाहिए । यहाँ पर एक ऐसी संस्कृति का उदय होना चाहिए जो मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वार और गिरजों से ज्यादा संसद भवन को पवित्र माने । उसकी निष्ठा मायावी ईश्वर की ओर न होकर अपने संविधान के प्रति हो[2] ।" प्रजाराम की बातें सुनकर संसद सदस्य कहता है - "मैं तो समझता हूँ कि आज की बदलती हुई संस्कृति में सभी धर्मों का विलयन कर देना चाहिए और एक नयी संस्कृति का उदय होना चाहिए जो आदमी को आदमी के रूप में पहचाने[3] ।" हम पहले अपनी कमजोरियों से मुक्त हो जायें ताकि राजनेता हमारी कमजोरियों का शोषण न कर पाये । लेखक के विचारों में मुक्ति का श्रेष्ठ मार्ग यही है ।

---

1. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - प्रजाराम, पृ.106
2. वही, पृ.113
3. वही, पृ.113

उपन्यासों के अनुशीलन से वर्तमान भारतीय समाज के यथार्थ से सीधा साक्षात्कार होता है । इनमें उपन्यासकारों ने जिन परिवेशों को मूर्त किया है, वे अपनी जीवन्तता के कारण हमारी चेतना को छूनेवाले अनुभवों को उभारकर रखने में सक्षम होता है । उपन्यास में जो स्थितियाँ उभरकर आती है, वे पाठकों को झकझोरती हैं । क्योंकि इन उपन्यासकारों का लक्ष्य कोई सिद्धांत या वाद विशेष का समर्थन न होकर जीवन के यथार्थ की ईमानदार अभिव्यक्ति रहा है । लगता है कि ये उपन्यासकार यह मानकर चलते हैं कि "जब तक कोई समाज अपनी दुर्बलता को नहीं जानेगा, वह प्रगति नहीं करेगा । गन्दगी व कुरीतियों को दबाओं, वह सड जाएगी, उघाडकर धूप में डाल दो, उनकी सडांध मिट जाएगी ।"[1] इसलिए ही यथार्थ की विद्रूपता को सही मायनों में प्रस्तुत करके लेखकों ने अपने दायित्व को निभाने का संकल्प पूरा किया है । लेखक यह मानकर चलता है कि दायित्व इकतरफा नहीं होता, पाठकों को भी अपनी ओर से वही दायित्व निभाना है, जिसकी वह प्रतीक्षा कर रहा है । रचना के संदर्भ में यह कहना पडता है कि लेखकों ने स्थितियों को समझाने केलिए सपाठ और विवरणात्मक ढंग को न अपनाकर प्रतीकों और व्यंग्य का सहारा लिया है । "प्रस्तुत उपन्यासों में इन समस्याओं का कोई काल्पनिक समाधान खोजने का, कुछ अपवादों को छोडकर प्रयत्न नहीं किया गया है, क्योंकि यथार्थ इतना उग्र और भयानक है कि उसका समाधान इतना सहज नहीं, साथ ही किसी नेता या दल के वश की बात नहीं । सत्तारूढ कांग्रेस का विरोध करनेवाला दल भी, सत्ता प्राप्त करने की लालसा में राजनीतिक परिवेश की उन बुराइयों से अपने आपको नहीं बचा

---

1. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - हजार घोडो का सवार - लेखकीय वक्तव्य से ।

सके हैं, जो सत्तारूढ दलों में आम तौर से पायी जाती है ।[1]
इसलिए समस्याओं का समाधान राजनैतिक दलों में ढूँढना अर्थहीन रह जाता है । उपन्यासकारों ने परिवर्तित परिवेश में आदमी को अपनी सारी क्षमता और दुर्बलताओं के साथ यथार्थ के सम्मुख खडा कर दिया है । यह व्यक्ति को समाज से जोडकर और समाज से अलगकर देखने की महत्त्वपूर्ण दृष्टि का परिचायक है जिसकी गहराइयों में राजनीति की आंधी मे उभरनेवाले जीवन बोध से पीडित मानवीयता है ।

❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀

---

1. डॉ. पीताम्बर सरोदे - आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में राजनीतिक एवं आर्थिक चेतना, पृ.254

चौथा अध्याय

प्रजातंत्र दलबाज़ी और मूल्यशोषण

चौथा अध्याय

प्रजातंत्र दलबाजी और मूल्य शोषण

उपन्यासों में वर्णित प्रजातंत्र की क्षीण परंपरा और ह्रासोन्मुखी दृष्टि

"ईसा से 442 साल पूर्व, यूनानी दार्शनिक वलीआन ने लोकतंत्र की परिभाषा देते हुए कहा था - "लोकतंत्रीय वह होगा, जो जनता का हो, जनता के द्वारा हो तथा जनता केलिए है । इन्हीं शब्दों को आधुनिक युग में अमेरिका के राष्ट्रपति लिंकन ने दोहराया ।[1]" "मेयो के अनुसार लोकतंत्रीय राजनीतिक व्यवस्था वह है जिसमें सार्वजनिक नीतियाँ बहुमत के आधार पर उन प्रतिनिधियों द्वारा बनाई जायें, जो राजनीतिक स्वतंत्रता की परिस्थितियों में राजनीतिक समानता के नियम के अनुसार समय समय पर होनेवाले

---

1. रमेशचन्द्र वर्मानी - राजनीति सिद्धांत, पृ.29।

चुनावों द्वारा चुने गये हो[1]।" "लोकतंत्र वह शासन व्यवस्था है, जिसमें नागरिक सीधे न सही, अपितु अपने द्वारा चुनेगये, अपने प्रति वफादारी प्रकट करनेवाले प्रतिनिधियों के द्वारा राजनीतिक निर्णयों में अधिकार का प्रयोग करते है । यह प्रतिनिधि-लोकतंत्र कहा जाता है[2]।" सामान्य रूप से लोकतंत्र की विशेषताएँ निम्न लिखित है - इसमें जनता की इच्छा की सर्वोच्चता होती है । शासन, जनता द्वारा चुनी हुई सरकार से होता है, जिसका ढाँचा, संविधान के अन्दर सुरक्षित होता है और जिसका दायित्व सुनिश्चित किया जाता है । सरकार के हाथों में राजनीतिक शक्ति जनता की अमानत के रूप में होती है । उसमें वयस्क मताधिकार और निष्पक्ष तथा आवधिक चुनाव की व्यवस्था है । जनता के अधिकारों एवं स्वतंत्रता की रक्षा सरकार का कर्तव्य होता है । सरकार के निर्णयों में सलाह, दबाव तथा जनमत के द्वारा जनता की हिस्सेदारी का महत्व आंका जाता है । निष्पक्ष न्यायालय और कानून का शासन एक और शर्त है । विभिन्न राजनीतिक दलों एवं दबाव दलों की उपस्थिति होती है । "व्यापक अर्थ में लोकतंत्र को एक आदर्श माना जाता है, इसमें लोकतंत्रीय मानव, चिंतन, व्यवहार, जीवन पद्धति, समाज अर्थ व्यवस्था, नैतिकता आदि शामिल है । यहाँ लोकतंत्र एक शासन व्यवस्था ही नहीं रहता, बल्कि एक ऊँचा मानवीय मूल्य बन जाता है[3]।"

---

1. रमेशचन्द्र वर्मानी - राजनीति सिद्धांत, पृ.25।
2. It is a form of government where the citizen exercise the same right not in person but through representative chosen by and responsible to them. This is known as representative democracy- Enclylopaedia Britancia - Vol. 7, P 215.
3. रमेशचन्द्र वर्मानी - राजनीति सिद्धांत, पृ.292

आज़ादी की प्राप्ति के साथ-साथ जनतंत्र शासन लागू किया गया और जनहित को सर्वश्रेष्ठ उद्घोषित करते हुए राजनैतिक कार्यकलापों का सूत्रपात भी होने लगा था । परन्तु जिस लक्ष्य को सामने रखकर राजनीतिक दलों का गठन और उनके द्वारा कार्यान्वयन लक्षित किया गया था, उससे भिन्न तरीके अपनाने केलिए दलगत राजनीति बाध्य-सी हो गयी । पंचायती राज की स्थापना से "यह आशा की गयी थी कि ग्रामीण जनता विकास-कार्यों में अधिक रुचि लेगी और जनता के चुने हुए प्रतिनिधि सही नेतृत्व प्रदान कर सकेंगे । लेकिन व्यवहार में पंचायतीराज, जिला-मण्डल व ग्राम स्तर पर सत्ता व शक्ति के पूर्णतया हस्तांतरित कर देने के परिणाम सुखद नहीं निकले । वास्तव में यह सत्ता परंपरागत विशेष अधिकार प्राप्त वर्गों अथवा उनसे संबद्ध व्यक्तियों व समूहों को मिल गयी जिससे गुटबन्दी व दलगत राजनीति को बढ़ावा मिला ।"[1]

राजनेताओं की सत्तालोलुपता और अर्थलिप्सा ने घूसखोरी और भाई-भतीजावाद को जन्म दिया । ज़मींदारी-प्रथा उन्मूलन से छोटे किसानों को कोई फायदा नहीं हुआ । कृषिक्रांति के नाम पर नहरें बनीं और ट्यूबवेल लगाये गये जिसके पचास प्रतिशत से ज्यादा बड़े किसानों को ही मिला । "आज़ादी के बाद जननेताओं ने अपने संपूर्ण-त्याग का ब्याज सहित वसूलना आरंभ कर दिया । उसके चरित्र में गिरावट आयी, वे पदलोलुप और धनलोलुप होकर रह गये । चुनाव में आम जनता के बीच

---

1. लक्ष्मीनारायण नाथूरामका - भारतीय आदर्शवाद, पृ.105-106

जाकर मोहक नारे और लुभावने वायदे करके उसका वोट ठग लेते हैं। व्यवस्था में घुसकर स्वहित की चिंता करने लगते हैं।[1]" इन राजनेताओं ने पूंजीवादी तत्वों को बढावा दिया है। अनैतिक रूप से आर्जित संपत्ति को बनाये रखने केलिए पूंजीपतियों और कालेबाजारियों ने सत्ताधारियों से गठबन्धन स्थापित किया। पुलिस और शासक वर्ग इनके संरक्षक बन गये और चुनाव काले धन, गुण्डागर्दी, जातिवाद और भाषावाद का खेल बन गया। "लोकतंत्र व्यवस्था नाम मात्र की लोकशाही बनी रह गयी और अन्यथा वह केवल चुनाव की सत्ता की वर्गीय चेतना की राजनीति बन गयी जिसने राष्ट्रवादी व्यापक मूल्यचेतना का निरंतर विघटन किया[2]।" स्थितियां इतनी बदल गयीं कि "हम तो राजनीतिक निर्णयों को केवल भोगते हैं, उनके बनाने में हमारा कोई हाथ, हमारी कोई आवाज़ नहीं है[3]।"

कानून और न्याय के संरक्षक सत्ताधारियों और पूंजीपतियों का साथ देते हैं। "प्रजातंत्र अपनी वर्तमान शक्ल में केवल छल लगता है। xx xx यहां से सत्ता के एक और पक्ष उभरता है कि जनशक्ति को वशीभूत करने का सरल उपाय प्रजातंत्र है। इसलिए पेशेवर राजनीतिक खिलाडी प्रजातंत्र का दोहन करते हैं। सामान्य जनसमुदाय तक प्रजातंत्र की इस असलियत का रूप कभी नहीं रुकता, क्योंकि लफ्फाजी और बनावटी प्रदर्शन के ज़रिए सत्तालोलुप वर्ग सदैव अपने को जनहित का संरक्षक, सदैव लोगों का सेवक सिद्ध करने में लगा रहता है[4]।" इस संदर्भ में सत्ताधारी और विपक्षी दलों की

---

1. डॉ॰जितेन्द्र वत्स - साठोत्तरी हिन्दी कहानी और राजनीतिक चेतना, पृ॰17।
2. डॉ॰अरुणा गुप्ता - छठे दशक की हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य, पृ॰58
3. राजेन्द्र यादव - कहानी स्वरूप और संदर्भ, पृ॰163
4. गंगाप्रसाद विमल - आधुनिकता साहित्य के संदर्भ में, पृ 133

नीति में कोई फर्क नहीं रह गया है । ऐसी स्थिति में प्रजातंत्र कमज़ोर होता गया और एक खोखला आदर्श मात्र रह गया । प्रजातंत्र की इस क्षीण परंपरा एवं उसकी ह्रासोन्मुखी दृष्टि के जीवन्त चित्र आलोच्य उपन्यासों में मिलते हैं ।

"एक और मुख्यमंत्री" में प्रजातंत्र को कमज़ोर करनेवाले सारे तत्वों का चित्र मिलता है, जैसे सांप्रदायिकता भाषावाद, दल-बदल, राजनेताओं की चरित्रहीनता, अवसरवादिता, गंदी पक्षकारिता, अफसरशाही, चुनाव में काले धन का उपयोग आदि । अरविंद अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति केलिए हिन्दु महासभा छोड़कर कांग्रेस में शामिल होता है । सत्ता से वंचित होने पर कांग्रेस छोड़कर "देश-दल" नामक पार्टी बनाता है और इस दलबदल को आदर्श से प्रेरित घोषित करता है । इस उपन्यास के नायक के माध्यम से लेखक ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वैयक्तिक स्वार्थ केलिए दल-बदल की नीति को अपनानेवाले लोगों मे राजनीति भरी पडी है । ये लोग आदर्श का ढोंग रचते हुए लोगों की आंखों में धूल झोंकना चाहते हैं । ऐसे नेताओं के द्वारा झोंकी हुई धूल से धूसरित होकर राजनीति के रूप ही विकराल बन गये हैं ।

"सबहिं नचावत राम गोसाईं" भ्रष्ट राजनीति और उससे उत्पन्न सडन की ओर इशारा करता हैं । कांग्रेस मंत्रियों और पूंजीपतियों की आपसी सांठ-गांठ, भाई-भतीजावाद से उत्पन्न शोषण की स्थितियां और मज़दूर एवं किसान नेताओं का पूंजीपतियों के हाथों बिक जाना प्रजातंत्र की ह्रासोन्मुखता का परिचय देता है ।

जबरसिंह और सेठ राधेश्याम के बीच का संबन्ध और आदर्शवादी पुलिस अफसर रामलोचन पाण्डे की मुवत्तली इसका प्रमाण है । राजनीति में अफसरशाही किस तरह की भूमिका अदा करती है और किस तरह बेईमानी का सहारा लेने केलिए आदर्शनिष्ठ अफसरों को मज़बूर किया जाता है, इसका उदाहरण यहाँ ध्यान देने योग्य है । क्योंकि राजनीतिक भ्रष्टता और मूल्यच्युति की परंपरा भ्रष्ट अफसरों के द्वारा सुरक्षित की जाती है ।

चुनाव जीतने केलिए जिन भ्रष्ट तरीकों को काम में लाया जाता है, उनका ब्योरा "काली आँधी" में मिलता है । "मालतीजी के एजेन्ट चुनाव जीतने केलिए कभी नोटंगी और कव्वाली का आयोजन करते हैं, कभी प्रसाद, चरणामृत बाँटकर मतदाताओं को रामजी की सौगन्ध देते हैं । मलतीजी के एजेन्ट स्वयं ही तय करके मालतीजी का सिर फोडने में पीछे नहीं रहते, ताकि विरोधी दलों के नाम पर इस घृण्य कृत्य को थोपकर जनता का समर्थन अपने पक्ष में कर सकें ।" इसके अलावा चुनाव के दौरान विपक्षी दल के लोग साम्प्रदायिकता भड़काते हैं, मालती के चुनाव कार्यालय पर आग लगा देते हैं और मालती की चरित्र-हत्या करने केलिए गंदे पर्चे बाँटते हैं । ये घटनाएँ यह सिद्ध करती है कि सत्ता हथियाने केलिए राजनेता जघन्य अपराधों को बढावा देते हैं और आग भड़काकर स्वार्थसिद्धि का कार्यक्रम जारी रखते हैं ।

---

1. प्रेमकुमार - संचेतना - जून 1978, पृ.20

"राग दरबारी" में छंगामल इन्टर कॉलिज, कोऑपरेटिव यूनियन, एवं ग्राम पंचायत के माध्यम से प्रजातंत्र की ह्रासोन्मुखता का चित्र उभरता है । वैद्यजी अवसरवादी एवं ढोंगी नेता है । कॉलिज कमेटी के चुनाव में वैद्यजी गुण्डों द्वारा पिस्तौल दिखाकर विरोधी सदस्यों को भगा देते हैं, उन्हें वोट करने नहीं देते और इस प्रकार मैनेजर बन बैठते हैं । पंचायत के प्रधान के चुनाव में सजीचर को खड़ा करके, उसके जीतने पर स्वयं शासन करते हैं । कालिज के विरोधी दल के मालवीय और खन्ना मास्टर से बलाद् इस्तीफा ले लेते हैं । कॉलिज के बजट से पैसा लेकर अपने बेटे के नाम आटा चक्की खोल देते हैं । राजनीति में गुण्डागर्दी जो महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है, उसका आंशिक रूप यहाँ प्रस्तुत किया गया है । मतदान के अवसर पर इस तरह की कार्रवायी का मुख और मतदान केन्द्रों पर हम्ला करना आज राजनीति का जाना-माना तरीका-सा बन गया है ।

"कटरा बी आर्जू" में प्रजातंत्र की खोखली नीति का चित्र मिलता है । "जनआन्दोलन और जन आक्रोश के साथ इलाहाबाद हाईकोर्ट के फैसले की उपेक्षाकर अपनी सत्ता बचाये रखने केलिए इंदिराजी ने इमर्जेन्सी लगाय ।" पुलिस अत्याचार, जबरदस्ती से नसबंदी, शहर की सुन्दरता बढाने के अभियान में गरीबों की झोंपड़ियों को गिराकर उन्हें निराश्रय करने की वृत्ति एवं विपक्षी नेताओं व पत्रकारों को जेल में बंद कर पीड़ित करने की निष्ठुरता प्रजातंत्र पर प्रश्नचिह्न लगा देती हैं । "भला वैसी व्यवस्था का क्या प्रयोजन

---

1. सियारशरण प्रसाद - नई धारा, पृ·60

जिसमें आम आदमी नंगा किया जाय ? यह प्रजातंत्र का मखौल नहीं है तो और क्या है ?" प्रजातंत्र पर की गयी यह टिप्पणी और आपातकाल के लागू करने के द्वारा होनेवाली अत्याचार की स्थितियाँ यह दिखाती है कि प्रजातंत्र व्यवस्था में आम आदमी का कोई महत्व नहीं रहा है । सत्ता को संभालनेवाले लोगों के हाथ में वह सिर्फ एक मिट्टी का खिलौना है, जो किसी भी क्षण में नीचे फेंका जा सकता है, तोडा जा सकता है ।

महाभोज में चित्रित सरोहा गाँव की ज़िन्दगी और हरिजन खेतिहर मजदूरों पर जमींदार का आतंक, अत्याचारी एवं हत्यारे जमींदार को पुलिस और मुख्यमंत्री की ओर से संरक्षण, ईमानदार पुलिस अफसर की मुअत्तली, निरपराधी को हत्यारा कहकर जेल में बन्द करना आदि वर्तमान प्रजातंत्र शासन प्रणाली में गरीब लोगों की असुरक्षा की ओर संकेत करते हैं । सत्ताधारियों से मिलकर सच को झूठ और झूठ को सच साबित करनेवाली दायित्वहीन पत्रकारिता, प्रजातंत्र की ह्रासोन्मुख परंपरा की ओर संकेत करती है । महाभोज वह अर्थ लेकर हमारे सामने आता है जिसमें आम आदमी को नोच-नोच कर खाने केलिए टूट पडनेवाले राजनैतिक गीदड इस देश की प्रजातंत्र नीति को शव बनाकर खाने में तुले हुए हैं ।

"जंगलतंत्रम्" में लेखक ने दिखाया है कि चुनाव खर्च केलिए राजनेता पूंजीपतियों से थैलियाँ स्वीकार करते हैं और उन्हें बदले आम जनता के शोषण की छूट दे देते हैं । इससे उत्पन्न

---

1. सियारशरण प्रसाद - नई धारा, पृ.62

महंगाई से आम जनता पीड़ित होती है । यहाँ दो तरह की शिक्षा पद्धति है । शासक और पूंजीपतियों के बच्चे खास तरह के स्कूलों में पढते हैं और अंग्रेज़ी शिक्षा पाते हैं, जबकि आम आदमी के बच्चे मामूली स्कूलों में भेजे जाते हैं, जहाँ न तो योग्य अध्यापक हैं, न आवश्यक सुविधाएँ । ऐसी स्थितियों में "यदि जनता बहुत बौरकाई तो जंगलिस्तान (पाकिस्तान) से युद्ध ठानकर उसे केवल चुप ही नहीं किया जाता, बल्कि देश की सुरक्षा केलिए धन जन भी उससे संग्रह किये जाते हैं और उसके (आम आदमी के) बेटों को सरहदी लडाई में भेड-बकरियों जैसे कटवाने के बाद उनके द्वारा जीता हुआ भाग दुश्मन को लौटाकर सन्धि करके जश्न मनाया जाता है ।"[1] जनता के प्रति शासक जो हमदर्दी दिखाते हैं, वह केवल दिखावा है । जनता के शोषण में राजनेता प्रशासक और पूंजीपति एक दूसरे के सहायक हैं । "सच्ची बात तो यह है कि हम पहले केवल सिंह (राजनेता) के गुलाम थे, लेकिन अब हम सिंह (राजनेता), मोर (प्रशासक) और नाग (पूंजीपति) तीनों के गुलाम है ।"[2] इन तीनों के षड्यंत्र से मुक्ति पाने का कोई भी तंत्र जंगलतंत्रम की प्रजा के पास नहीं है । चूहों के समान रोशनी से बचकर भागनेवाले और किसी अज्ञान अंधकार में अपने सिर को छिपानेवाले आम आदमी तब तक टूटा-हारा रहेगा जब तक डटकर मुकाबला करने की शक्ति उसमें नहीं आ जाएगी ।

राजनैतिक दलों में प्रजातंत्र प्रणाली के अनुसार नेता का चुनाव नहीं होता, बल्कि नेता सदस्यों पर थोपा जाता है । नेता होने केलिए विशेष योग्यता की अपेक्षा नहीं, चमचागीरी में

---

1. बैजनाथ राय - समीक्षा (अक्तूबर-दिसंबर 1980), पृ.39
2. वही, पृ.39

निपुणता काफी है । महामहिम के केन्द्रीय मंत्री चन्द्रिका प्रताप सिंह तोताराम को राज्य के मुख्यमंत्री के रूप में भेज देता है । चन्द्रिका प्रताप उसे इस चिंता में मुख्यमंत्री बना देता है कि इस तोते को जो शब्द रटा देंगे, वही रटता रहेगा । यह हमारे इशारों पर अच्छी तरह नाच सकता है ।" विरोध प्रकट करनेवाले गुट के दो तीन सदस्यों को सत्ता में हिस्सेदारी देकर गुट का दम तोड दिया जाता है । विरोधी गुट का विरोध भी किसी आदर्श पर आधारित न होकर केवल सत्ता-लालसा पर आधारित है । सत्ता की लडाई में राजनेताओं के द्वारा अपनानेवाले समझौते, केवल स्वार्थ के परिचायक हैं जिसमें गुटबाज़ी को बढ़ावा देने का और गुटों को सन्तुष्ट बनाने का कार्यक्रम शामिल किया जाता है ।

"हज़ार घोडों का सवार", इस सत्य की ओर ध्यान आकर्षित करता है कि स्वतंत्रताप्राप्ति के बाद भी दलितों का शोषण कम नहीं हुआ है । शासक इन शोषकों के संरक्षक रह जाते हैं । दलित वर्ग से कोई इस शोषण और छुआछूत का विरोध करता है तो वह अकेला पड जाता है और उसे अपने ही वर्ग के लोगों के अंधविश्वासों से पीडित होना पडता है । "यहाँ तक कि उसके वर्ग के लोग ही, जिन केलिए वह लडाई लडता है, उच्च वर्ग के हाथों बिककर उसका विरोध करते हैं । संसद सदस्य बनने के लोभ में उसका ही जाति भाई उसकी हत्या करवाता है ।" इस उपन्यास में एक ऐसे सच्चे पात्र को प्रस्तुत किया गया है जो अपना सब कुछ खो बैठता है । इस नेता के माध्यम से यह दिखाया गया है कि

---

1. सुरेन्द्र तिवारी - संचेतना (जून 1982), पृ.55

ईमानदारी का सहारा लेनेवाले नेता अक्सर अपने अनुयायियों के द्वारा ही तिरस्कृत हो जाते हैं । उनके भविष्य का कोई अर्थ नहीं रह जाता । इससे यह साबित होता है कि आधुनिक राजनीति का तंत्र ईमानदारी और सच्चाई की अपेक्षा धन, दौलत और स्वार्थता के सिद्धांतों पर आधारित रहता है ।

"दारूलशफा" में चित्रित मुख्यमंत्री का चुनाव असंतृप्त गुट के नेता रंगीनराय का हरिजन नेता लोबीराम से मिलकर उत्सुकदास के विरुद्ध षड्यंत्र रचना, विमलादेवी के द्वारा लोबीराम को फँसाना, ईमानदार पुलिस अफसर फूलदास की हत्या, उत्सुकदास और काम्याब मेठ का संबन्ध आदि वर्तमान राजनीति के यथार्थ चेहरे को उभारकर रख देता है । राजनीतिज्ञों द्वारा सत्ता का दुरूपयोग, सत्ता प्राप्ति केलिए गुण्डों, हत्यारों से लेकर धन और नारी तक का उपयोग सूचित करता है कि प्रजातंत्र का नया अर्थ हो गया है, जो पुरानी सीमाओं से बाहर एक शक्ति-साधना का घृणित रूप धारण कर चुका है । इस साधना में विजयी व्यक्ति ही जनता की आँखों में बना रहता है और पराजित व्यक्ति केलिए कहीं कोई स्थान नहीं है ।

"समय एक शब्द-भर नहीं है", इस सत्य की ओर संकेत करता है कि नक्सली आन्दोलन का मूल कारण जनशोषण है । पीड़ित एवं निम्न वर्ग शोषण से तंग आकर हथियार उठाने केलिए विवश हो जाता है । यह उनकी मज़बूरी है । हमारे समाज में कमज़ोर लोगों का शोषण आज भी जारी है, जो व्यवस्था के पराजय की ओर संकेत करता है । नक्सलवादी दृष्टि परिवर्तन केलिए आगे

बढ़नेवाले लोगों की परिचायिका है । लेकिन इसकी सफलता इसलिए नहीं हो पायी कि धन, राजतंत्र, शासनतंत्र और स्वार्थ इसके विरुद्ध है । भारत जैसे देश में इसलिए इसका भविष्य उज्ज्वल नहीं दिखाई पड़ता ।

"शांतिभंग" आपातकाल की भयानक स्थितियों के द्वारा व्यक्त करता है कि शांति से जीने और न्याय की मांग करने का अधिकार तक जनता से छीन लिया गया है । नसबंदी का प्रमाण पत्र प्रस्तुत न कर पाने के कारण नौकरी से निकाल दिये जानेवाला मास्टर नन्द किशोर, पुलिस के डर से बीबी को नसबंदी केलिए मज़बूर करने एवं नसबंदी के दौरान मरनेवाली बीबी की याद में अपराधी बनकर जीनेवाला दुर्गा कचौडीवाला, अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाने के कारण जेल में यातना सहनेवाले मुंशीजी, सत्ता के अंधेपन के विरुद्ध कविता लिखने के कारण जेल में ठूँस दिये जानेवाले कवि मधुरजी, पुलिस-अत्याचार से डरकर आत्मसम्मान की रक्षा केलिए आत्महत्या करनेवाला खरा, पुलिस से बचकर भागते वक्त नदी में गिरकर मरनेवाला बालकृष्ण आदि प्रजातंत्र शासन व्यवस्था और उसपर लागू की जानेवाली आपातकालीन स्थिति पर प्रश्नचिह्न बनकर रह जाते हैं ।

आपातकाल नाम से ही लोगों के मन में भय उत्पन्न होता है । भ्रष्ट एवं शोषक पूंजीपति वर्ग और उच्च पदासीन सरकारी कर्मचारी आपातकाल के समर्थक बनकर अपने काले धन को बचा लेते हैं और अपने काले कारनामों पर पर्दा डालतेहैं ।

पत्रकार भी सरकार की योजनाओं के समर्थक बनकर स्थितियों से समझौता कर लेते हैं । टुच्चे लोग नेता बनकर आपातकाल के आड में जनता का शोषण कर अपार संपत्ति आर्जित करते हैं । आपातकाल की समाप्ति और जनता सरकार के शासन होने पर भी स्थितियों में कोई परिवर्तन नहीं आता । "प्रजाराम" में चित्रित उक्त स्थितियों में प्रजातंत्र की ह्रासोन्मुखता की पहचान है ।

उपन्यासों के विवेचन से पता चलता है कि राजनीति में आदर्श का ज़माना बीत गया है । और राजनीति का लक्ष्य जनसेवा से आत्मसेवा हो गया है । प्रजातंत्र नाम खोखला रह गया है क्योंकि तंत्र ही बाकी है, प्रजा का उससे कोई संबन्ध नहीं है । चुनाव सिद्धांतों पर आधारित न होकर जाति, धर्म, भाषा, काले धन और गुण्डागर्दी के आधार पर होने लगे हैं । हर कहीं भाई-भतीजावाद का बोलबाला है । इन सारे तत्वों ने मिलकर प्रजातंत्र को कमज़ोर कर दिया है । आदर्शों से दूर, चुनाव के नारे तक सीमित रहकर प्रजातंत्र ह्रासोन्मुख होता जा रहा है ।

दलबाजी और दलों की खोखली नीति

स्वाधीनता प्राप्ति के पहले हमारी राजनीति का लक्ष्य देश को आज़ाद करना मात्र था । उस समय राजनीति मूल्य पर अधिष्ठित थी । त्याग और बलिदान उसके साधन थे । लेकिन स्वाधीन भारत में राजनीति का अर्थ बदल गया । आत्मसेवा ने जनसेवा का स्थान ले लिया । त्याग और बलिदान की भावना लुप्त हो गयी । आदर्श और प्रगतिशीलता भाषण तथा वक्तव्य तक

सीमित रह गये । नेताओं की सत्तालोलुपता ने दलबाजी और गुटबन्दी को जन्म दिया । सत्ता से वंचित एवं असंतृप्त नेताओं ने नये दलों को जन्म दिया । दलों की तादाद बढती गयी । प्रत्येक दल के नेता अपने को जनसेवक और अपने दल को जनहित के असली समर्थक घोषित करते आये । ये प्रजातंत्र की दुहाई देते रहे संदर्भानुसार दल-बदल और गुटबन्दी की राजनीति अपनाते रहे । सत्ता प्राप्त होने पर, ये विलासिता और भाई भतीजावाद में डूब जाते हैं । यह एक विशेष दल की बात नहीं, नब्बे फीसदी दलों पर यह बात लागू है । इसके अलावा एक ही दल के अन्दर दो-तीन गुट की अवस्थिति सामान्य बात हो गयी है । इससे उत्पन्न स्थितियों ने दल बदल की राजनीति को जन्म दिया । दलों का लक्ष्य जनहित से दूर होता गया और सत्ता की प्रतियोगिता से उत्पन्न राजनैतिक अस्थिरता ने देश की प्रगति में प्रतिबन्ध लगा दिया । सत्ताधारी और विपक्षी दल बिगडती स्थितियों का दायित्व एक दूसरे पर आरोपित करते रहे । जनता इनके बीच पिसती गयी । चुनाव के अवसर पर विभिन्न दलों के द्वारा संजोये गये खुशहाली के सपनों में डूबकर जनता खोटे सिक्कों को पहचानने की क्षमता खो बैठी । दलबाजी और गुटबन्दी को महत्व देकर सत्ता हथियाने की, राजनैतिक दलों की जो नीति है उसकी अभिव्यक्ति आलोच्य उपन्यासों में हुई है, जिसकी समीक्षा यहीं पर प्रस्तुत की जा रही है ।

राजनैतिक दलों की खोखली नीति के चित्र एक और मुख्यमंत्री में मिलते हैं । प्रजातंत्र घोषित होने के बाद भारत का प्रथम आम चुनाव हुआ । प्रजातन्त्रिक शासन में प्रजा का सही

प्रतिनिधित्व करने केलिए उम्मीदवार योग्य, शिक्षित, गंभीर, निर्भीक और राजनीति का अनुभवी होना चाहिए लेकिन यहाँ उम्मीदवारों का निर्वाचन दलों के कार्यकर्ताओं ने अपने निहित स्वार्थ को मद्देनज़र रखकर किया । चाहे वह उम्मीदवार सिद्धांत: त्यागी, लोभरहित, नैतिक और चरित्र की सबलता रखता ही न हो ।"[1] इसके अलावा चुनाव के हथियार के रूप में धार्मिक भावना एवं सांप्रदायिकता को इस्तेमाल किया गया । प्रमुख दल के रूप में उभरनेवाले कांग्रेस दल ने "कहीं' स्वतंत्र पार्टी को पराजय देने केलिए राजपूतों को खडा करके उनके जातीय पक्ष को कमज़ोर किया तो कहीं-कहीं' उसने सिर्फ मुसलमान उम्मीदवार को टिकट दिया कि मुसलमानों का उस क्षेत्र में बहुमत था ।"[2] इस प्रकार सत्ता प्राप्ति केलिए किसी भी भ्रष्ट समझौते केलिए हर एक दल और हर एक उम्मीदवार तैयार रहे । आदर्श और जनकल्याण की चिंता उन्हें नहीं सताती । ये राजनेता सत्ता की होड में दलबदल और जोड-तोड में लगे रहते हैं । इधर अरविंद दो बार पार्टी बदल लेता है और शची भी । यदि शंकर भाई जैसे कोई गांधीवादी आदर्श नेता है तो उसे सब कहीं पराजय स्वीकार करना पडता है और राजनीति से सन्यास लेना पडता है ।

सत्ताधारी पूंजीपतियों से बडी रकम चंदा चंदा लेते हैं और उन्हें किसी भी अनैतिक कार्य करने की छूट दे देते हैं । यह कालेबाजारी और अन्य अनैतिक धंधों को बढावा देता है ।

---

1. यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र" - एक और मुख्यमंत्री, पृ.83
2. वही, पृ.273

"सबहिं नचावत राम गोसाईं" में इस अवैध संबन्ध का चित्र है । रामलोचन पाण्डे कालेबाजारियों के गुण्डों को हवालत में बन्द करता है तो व्यापारी लोग मंत्री जबरसिंह से मिलने आते हैं । जबरसिंह व्यापारियों से कहता है कि दो दिन के अन्दर पार्टी ऑफीस में पचास हज़ार रुपये भिजवाओ, मैं तुम्हारे आदमियों को रिहा करता हूँ । जबरसिंह मंत्री पद का दुरुपयोग करके कृषि अनुसंधानशाला खोलने केलिए सेठ राधेश्याम को किसानों की भूमि कम कीमत पर बलात ले देता है । बदले में राधेश्याम, चुनाव में जबरसिंह केलिए लाखों रुपये खर्च करता है, कृषि अनुसंधानशाला का मैनेजर पद जबरसिंह के भाई केलिए आरक्षित रखता है । विडम्बना की बात यह है कि प्रजातंत्र की दुहाई देनेवाला जबरसिंह आदर्शवादी पुलिस अफसर रामलोचन को इसलिए नौकरी से मुअत्तल कर देता है कि उसने कालाबाज़ारी करनेवाले सेठ राधेश्याम को जेल में बन्द किया था । इस प्रकार खादी की पोशाक और कांग्रेस की सदस्यता के बल पर जनहित की हत्या करनेवाले पूंजीपति और शोषक एवं उनको संरक्षण देनेवाले राजनेता मिलकर प्रजातंत्र की नीतियों को खोखली बना रहे हैं । इधर विपक्षी मज़दूर एवं किसान नेता कामरेड रवीन्द्र और कामरेड मातंडि धन और विलासिता के मोह में पडकर पूंजीपतियों के हाथों बिक जाते हैं ।

धर्मनिरपेक्षता और आदर्श की बातें करनेवाले चुनाव जीतने केलिए किस प्रकार साम्प्रदायिक भावना को उकसाता है और गुण्डागर्दी पर उतर आता है, इसके चित्र हैं, "काली आँधी" में । मालती के चुनाव एजेंट कव्वाली, नौटंकी, रामायण पाठ आदि का इंतजाम करता है, जबकि विरोधी दल प्रचरित करता है कि भारत में

इस्लाम खतरे में है । वे मालती के चुनाव कार्यालय पर आग लगा देते हैं और मालती पर गन्दे आरोपों का पर्चा बाँटते हैं । मालती लोगों को झूठे आश्वासन देती है और वाचाल भाषण देती है । भाषण से बढ़कर इनकी करनियों में आदर्श का स्पर्श तक नहीं है ।

"राग दरबारी" के सत्ताधारी दल के नेता वैद्यजी के चरित्र, उनकी कथनी और करनी का अन्तर और उनके गतकाल-इतिहास से स्पष्ट होता है कि वे रंगे सियार हैं । सत्ताधारियों के प्रति उनके मन में अगाध श्रद्धा है, चाहे वे अंग्रेज़ी हो, कांग्रेसी हो या कोई दूसरा । समय के अनुसार वे रंग बदल लेते हैं । समय का रुख पकड़कर जमींदार से नेता बन जाते हैं । कोआपरेटिव यूनियन के मैनेजिंग डाइरेक्टर होकर गबन करते हैं, पंचायत यूनियन में सनीचर को प्रधान बना देते हैं जो उनके पालतू कुत्ता जैसा है । कॉलिज कमेटी के चुनाव में विरोधियों को वोट करने नहीं देते । विरोधी दल की नीति में भी कोई आदर्शात्मक स्थिति नहीं है । इधर विरोधी दल का नेता रामाधीन भीखमखेड़वी अफीम का कारोबार करनेवाला है ।

"कटरा बी आर्जू" में सत्ताधारी कांग्रेस पार्टी, आपातकालीन स्थिति को आदर्शात्मक स्थिति और आम जनता के लिए दिलासा देनेवाली साबित करने की कोशिश करती है, जबकि कांग्रेस की सत्तालोलुपता और कुछ स्वार्थी नेताओं की नीतियाँ सामान्य जनजीवन को पुलिस अत्याचार और अन्य दमनकारी वृत्तियों से दूभर बना देती है । रेडियो और समाचार पत्र जैसे माध्यमों से यह प्रचार किया जाता है कि गरीबों की उन्नति के लिए कदम उठाया

जा रहा है और शोषकों को कठिन दंड दिया जा रहा है । लेकिन इसके विरुद्ध गरीब लोग सताये जाते हैं और शोषक वर्ग तरक्की करते दिखाई देता है । विपक्ष को चुप कर दिया जाता है । आपातकाल के बाद तथाकथित विपक्ष चुनाव के द्वारा सत्ताधारी बन जाता है । लेकिन उसकी मनोवृत्ति में कोई उल्लेखनीय अन्तर नहीं दिखाई नहीं देता, और कुर्सी की लडाई में टूटकर यह सिद्ध करता है कि विपक्ष के आदर्श भी खोखले हैं । विचित्र बात यह है कि इस नहीं पार्टी के सदस्य दलों में कोई सैद्धांतिक एकता नहीं थी । बल्कि सत्ता हथियाने की गुटबन्दी थी । आपातकालीन स्थितियों पर आधारित उपन्यास "शांतिभंग" और "प्रजाराम" में भी तथाकथित प्रजातंत्रिक दलों की नीति का पोल खुलता है ।

सत्तालोलुप राजनेता हमेशा सत्ता हथियाने केलिए अवसर की प्रतीक्षा में लगे रहता है, जबकि सत्ताधारी हरएक अवसर का इस्तेमाल अपनी सत्ता को बनाये रखने केलिए करता है । इस बात पर सत्ताधारी और विपक्षी दलों में कोई सैद्धांतिक भिन्नता नहीं है । "महाभोज" में, हम देखते हैं कि हरिजन युवक बिसू की हत्या उप-चुनाव के अवसर पर होती है तो विपक्षी दल के नेता सुकुल बाबू इस हत्या को अपनेलिए एक वरदान समझता है और जनहित अपने अनुकूल बनाने की भरसक कोशिश करता है । मुख्यमंत्री दा साहब इसे आत्महत्या साबित कर जनता के ध्यान इससे हटाकर सत्ता को बनाये रखने की कोशिश करता है । मुख्यमंत्री शोषक जमींदारों और हत्यारों को संरक्षण देता है । "मशाल" पत्र के संपादक को पेपर की कोटा बढा देता है और उसे खुश कर हत्या को आत्महत्या साबित करता है । विपक्षी दल को बिसू की हत्या पर

दुख न होकर अनुकूल अवसर मिल जाने की खुशी होती है । इनकी वृत्तियाँ सूचित करती हैं कि इन दोनों दलों में कोई मौलिक अन्तर नहीं है । सारे के सारे खली और खोखली नीति के हैं ।

प्रशासक और पूंजीपति आम जनता का शोषण करते हैं । राजनेता प्रशासकों और पूंजीपतियों का संरक्षण करता है । बदले में प्रशासक और पूंजीपति सत्ता की कुर्सी बनाये रखने में राजनेता को सहायता पहुँचाते हैं । जनता का शोषण जारी रहता है । जनता विरोध प्रकट करती है तो समाजवाद लाओ", "गरीबी हटाओ", "बेकारी हटाओ" जैसे प्रगतिशील नारों से राजनेता उसे अपनी ओर आकर्षित करता है । और कहता है ये सब पूंजीपतियों के कारण हो रहे हैं और शोषण को खत्म करने केलिए सख्त कदम उठाया जाएगा । जनता यह सुनकर राजनेता की जय बोलने लगती है । लेकिन राजनेता पूंजीपतियों को शोषण की छूट दे देता है । अपने को प्रजातंत्र के संरक्षक बतानेवाले दल की उपर्युक्त खोखली नीतियों और शोषक तत्त्वों के साथ इनकी गुटबन्धी का प्रतीकात्मक चित्र उभरता है "जंगलतंत्रम्" उपन्यास में ।

कुर्सी की प्रतियोगिता के कारण सत्ताधारी दलों के भीतर दो-तीन गुट का होना स्वाभाविक बात है । ये सिद्धांतों के आधार पर नहीं, बल्कि निजी स्वार्थ के आधार पर जोड-तोड में लगे रहते हैं । धर्मनिरपेक्ष और साम्प्रदायिक दलों के बीच गुटबन्धी की विडम्बना पूर्ण स्थिति भी दुर्लभ नहीं है । "महामहिम" इन सारी स्थितियों का चित्र है । केन्द्रीय मंत्री चंद्रिकाप्रताप सिंह अपने इशारों पर नाचनेवाले तोताराम को मुख्यमंत्री बना देता है ।

असंतृप्त गुट के नेता जटाधर शुक्ल इसका विरोध करता है । इस विरोध के पीछे भी सत्तालोलुपता से बढ़कर कोई आदर्श नहीं है । तोताराम मंत्रिमंडल में हिस्सेदार राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के नेता स्वामी ब्रह्मचारी स्वार्थपूर्ति हेतु साम्प्रदायिक दंगे भड़काकर सामाजिक जीवन की शांति भंग कर देता है ।

धर्मनिरपेक्षता और समत्व जैसे प्रजातंत्रिक मूल्यों के नारे लगानेवाले सत्ताधारी दल, शोषक पूंजीपति वर्ग के अमानवीय अत्याचारों को अनदेखा करते हैं । ये छुआछूत एवं धार्मिक अनाचारों के विरुद्ध भाषण देते हैं, लेकिन दलित वर्ग के प्रति छुआछूत के नाम पर होनेवाले अत्याचार के विरुद्ध कानूनी कार्रवाई नहीं करते । बल्कि इन शोषकों को संरक्षण प्रदान करते हैं । ये राजनेता, चुनाव में इन पूंजीपतियों से सहायता लेते हैं और जातीयता को बढ़ावा देते हैं । इसके विरुद्ध आवाज़ उठानेवाले को खत्म कर देते हैं । कभी कभी दलित वर्ग के युवा नेताओं को भटकाकर, धन और पद का लालच दिखाकर उन्हें वश में कर लेते हैं । दलित वर्ग के गरीब संसद-सदस्यों को घड़ी या मोटर गाड़ी मुफ्त देकर अपने जाल में फंसा लेते हैं । "हज़ार घोड़ों के सवार" में दलित वर्ग के शोषण के जीवन्त चित्र हैं, जो प्रजातंत्र के खोखलेपन के पर्दाफाश करने में सक्षम हैं ।

अकसर राज्यों में मुख्यमंत्री या पार्टी नेताओं का प्रजातांत्रिक प्रणाली के अनुसार चुनाव नहीं होता, बल्कि केन्द्रीय नेताओं की इच्छा के अनुसार किसी को सदस्यों पर नेता के रूप में थोपा दिया जाता है । कोई विरोध प्रकट करता है तो अनुशासन के नाम पर या कोई पद देकर उसे चुप कर दिया जाता है ।

विरोध प्रकट करनेवाले भी यही चाहते हैं । कभी कभी विरोधियों के दो-तीन गुट मिलकर विद्रोह करने लगते हैं तो धन से इन विरोधियों को खरीद लेता है, इससे भी काम नहीं होता तो चतुर महिलाओं द्वारा इन्हें योन-जाल में फँसाकर गुट को तोड देते हैं । इन सब केलिए धन आ जाता है पूँजीपतियों और कालेबाज़ारियों से । इस प्रकार के जोड-तोड से सत्ता प्राप्तकर राजनेता अवैध रूप से पूजीपतियों को लाभ पहुँचाते हैं । इन असामाजिक तत्वों के विरुद्ध कदम उठानेवाले ईमानदार पुलिस अधिकारी की हत्या करने से ये हिचकते नहीं । सत्ता की गुटबन्धी में तथाकथित प्रजातंत्रिक दलों की खोखली नीति का चित्र उभरता है "दारुलशफा" के उत्सुकदास, रंगीन राय, लोबीराम, गुरुपद स्वामी, काम्याब सेठ, यशोधा वल्लभ, विमला देवी, फूलदास आदि के चरित्रों के द्वारा ।

उपन्यासों में उभरती स्थितियों के विवेचन से व्यक्त होता है कि भारतीय प्रजातंत्र में राजनैतिक दलों की नीति सत्ता हथियाने और उसे बनाये रखने की रही है । इसकेलिए किसी भी असामाजिक तत्वों से समझौता करने से वे हिचकते नहीं । दलबन्धी और गुटबाज़ी बढती जा रही है । प्रजातंत्र अपने मूल्यों से अलग होकर केवल मुखौटा रह गया है । असली चेहरा शोषण और अनैतिकता का है ।

समाजनीति के विरुद्ध राजनीति

राजनीति का परम और प्रधान लक्ष्य आदर्शात्मक दृष्टि से जनकल्याण करना है । इसलिए सामाजिक जीवन की खुशहाली और जन-साधारण की फलाई राजनीति का लक्ष्य बन जाती है।

परन्तु जनतंत्र शासन में, विशेषकर भारत में इस नीति का प्रणयन आज तक की परिस्थितियों में इस तरह हुआ है कि कहीं-कहीं समाजनीति की लाश पर खडी होकर सत्ता हथियाने के षड्यंत्र में भागीदार हो जाते हैं। राजनीति जनहित की सुरक्षा औरजन-कल्याण का साधन न रहकर सत्तालोलुपता, अर्थलिप्सा और स्वार्थपूर्ति का साधन बन जाती है तो यह सामाजिक प्रगति में बाधा उपस्थित करती है। राजनेताओं के स्वार्थ और उनकी सत्तालोलुपता के आगे समाज और जन-साधारण नगण्य हो जाते हैं। यहाँ पर राजनीति समाजनीति के विरुद्ध हो जाती है और इससे जनजीवन दुष्कर बन जाता है। आलोच्य उपन्यासों में उक्त स्थितियों के चित्र बडी मात्रा में मिलते हैं।

राजनेता अर्थलिप्सा और विलासिता में लगे रहते हैं और इसलिए उनको हमेशा पूंजीपतियों के शोषण का साथ देना पडता है "एक और मुख्यमंत्री" में मजदूर अपनी उचित माँगों केलिए हडताल करते हैं। पूंजीपति सेठ रतनलाल मज़दूरों की मांगों को स्वीकार करने केलिए तैयार नहीं होता। मुख्यमंत्री अरविंद की सहायता से हडताल को तोडने में वह सफल होता है। मजदूरों पर गोली चलाई जाती है। आठ लोग मारे जाते हैं और उससे भी ज्यादा लोग घायल हो जाते हैं। एक और संदर्भ में सूखाग्रस्त इलाके में तालाब खोदने का पैसा इंजिनीयर सिंहा हडप लेता है। और तालाब की खुदाई कागज़ों में पूर्ण होती है। इसके पता चलने पर अरविंद इंजिनीयर के विरुद्ध कदम उठाता है तो उसे बचाने केलिए "अरविंद के पास ट्रंक काल पर ट्रंक आने लगा। स्वयं केन्द्रीय मंत्री का फोण आया था।"[1] इसी प्रकार थानेदार चौधरी पृथ्वीपाल सिंह

---

1. यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र" - एक और मुख्यमंत्री, पृ.180

एक हरिजन युवति के साथ बलात्कार करता है । उसके विरुद्ध कार्रवाई शुरू होती है तो "चौधरी पृथ्वीपाल केलिए उस क्षेत्र के एम॰एल॰ए॰ व अन्य कई चौधरी मिनिस्टर दौड-धूप करने लगे । अरविंद को उस समय आश्चर्य और अधिक हुआ जब दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व करनेवाला नाथूराम मंडल ने व्यक्तिगत रूप से आकर बताया, अरविंदजी, वह लड़की स्वयं बदचलन है और उसकेलिए आप अधिक परेशानी मोल न लीजिए ।"[1] यह सूचित करता है कि राजनेता अपराधियों के संरक्षक बन जाते हैं ।

"सबहिं नचावत राम गोसाई में ईमानदार पुलिस अफसर रामलोचन पाण्डे कालेबाजारियों को हवालत में कर देता है तो व्यापारियों का एक डेलिगेशन मंत्री जबरसिंह से मिलने आता है । लाला सगुणचन्द जबरसिंह को कहता है "हम जो धंधा करते हैं, वह मुनाफा केलिए करते हैं, इसी मुनाफे से मंदिर बनाते हैं - धर्मशालाएं बनाते हैं - आप लोगों को चन्दा देते हैं । लेकिन अगर हम लोगों को इस तरह बन्द कर दिया जायेगा तो फिर हम किस तरह चन्दा दे सकेंगे[2]।" कुछ समय की कहा सुनी के बाद जबरसिंह कहता है - "तो पार्टी आफिस में पचास हज़ार रूपया भिजवाओ - दो तीन दिन के अन्दर । मैं तुम्हारे आदमियों को रिहा कर देता हूं[3]।" सेठ राधेश्याम कृषि अनुसंधानशाला और ट्रेक्टर फेक्टरी खोलना चाहता है । जबरसिंह, मुख्यमंत्री पर दबाव डालकर करोडों रूपये का

1॰ यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - एक और मुख्यमंत्री, पृ॰18।
2॰ भगवतीचरण वर्मा - सबहिं नचावत राम गोसाई, पृ॰17।
2॰ वही, पृ॰17।

शेयर्स सरकार की ओर से लेने केलिए बाध्य करता है । गरीब किसानों की भूमि सरकार से निश्चित मूल्य से कम दर में बलात् ले देने की कोशिश करता है । विरोध प्रकट करनेवाले मज़दूर एवं किसान नेताओं को पैसे से खरीद लेता है । इसकी मूल प्रेरणा सेठ राधेश्याम की पूंजीवादी लालसा और राधेश्याम के धन के बल पर सत्ता में बने रहने की जबरसिंह की महत्वाकांक्षा से बढ़कर और कुछ नहीं है ।

"काली आँधी" में मालती का चुनाव एजेन्ट जनता को जीतने केलिए कव्वाली, नौटंकी और रामायणपाठ का इंतजाम करता है । भगवान के चरणामृत बाँटता है और लोगों को राम की सौगन्ध दिलाते हैं । इस प्रकार लोगों की धर्मनिष्ठा को खूब काम में लाता है । उक्त प्रांत में यह जानकर कि बनियों की संख्या अधिक है, बनियों के एक उम्मीदवार को खड़ा कर देता है जो बाद में पूर्व-समझौते के अनुसार यह वक्तव्य देकर चुनाव से पीछे हटता है कि मालती के हाथों में हमारा भविष्य सुरक्षित है । मुसलमान लोग "चोरी छुपे ऐलान भी कर रहे हैं कि भारत में इस्लाम खतरे में है । इसलिए ज़रूरी है कि मुसलमान अपने वोटों को मुसलमान केलिए इस्तेमाल करें ।" इस प्रकार स्वार्थ से प्रेरित होकर ये राजनेता जातीयता और साम्प्रदायिकता की भावना को भड़का देते हैं और सामाजिक जीवन की शांति एवं स्वच्छन्दता को भंग कर देते हैं ।

---

1. कमलेश्वर - काली आँधी, पृ·37

सामाजिक प्रगति एवं ग्रामीण जनजीवन के विकास केलिए आयोजित योजनाओं से प्रतिष्ठित एवं धनिक वर्ग लाभ उठाते हैं, जबकि गरीब लोग इससे वंचित रह जाते हैं । इसका कारण यह है कि राजनेता और अफसर लोग पूंजीपतियों और ज़मींदारों के पक्षधर होते हैं । "राग दरबारी" में ऐसी स्थिति के चित्र मिलते हैं । कोऑपरेटिव यूनियन से लाभ उठाते हैं वैद्यजी और उनके अपने आदमी । छंगामल कॉलिज में प्रिंसिपल सरकारी पैसे का मनमानी खर्च करते हैं । अध्यापकों को जितना वेतन देते हैं, उसकी दुगुनी रकम पर दस्तखत करवाते हैं । कालिका प्रसाद सरकारी पैसे के द्वारा सरकारी पैसे केलिए जीनेवाला आदमी है । सरकारी ग्रांट और कर्जे खाना उसका काम है । क्षेत्रीय एम॰एल॰ए॰ और खादी की पोशाक उसके सहायक हैं । मुर्गी पालने केलिए, नये ढंग से मंडाम बनवाने केलिए, घर में बिना धुएँ का चूल्हा लगवाने केलिए कालिका प्रसाद कर्ज लेता है । चमारों के देखते रहते चमडा कमाने की ग्रांट लेकर वह अपने चमडे को चिकना बनाने केलिए खर्च करता है । लगान वसूलनेवाले आदमी को देखते ही वह कह देता है "अभी तो वसूली की बात न कीजिए, आपको कार्रवाई रोकने में दिक्कत हो तो कहिए लिखवा लाऊं ।"[1]

समान स्थिति का चित्र "दारुलशफा" में मिलता है । कृषि विकास एवं सिंचाई योजनाओं के फायदे लूट लेते हैं प्रतिष्ठित व्यक्ति । मंत्री कृष्णवल्लभ यादव के भाई यशोधा वल्लभ "राष्ट्रनिर्माण संघ" नाम से एक संस्था की स्थापना करता है । बीस एकड भूमि पर अफीम की खेती करता है । सिंचाई का साधन सरकारी तौर पर उपलब्ध कराता है । उक्त संस्था के नाम पर देश के छोटे उद्योगों की सहायता हेतु विद्युत-विभाग से तांबे के

---

1. श्रीलाल शुक्ल - राग दरबारी, पृ॰167

तार कम दर पर ले लेता है और कालेबाजार में विदेशियों को बेचकर करोडों कमाता है, जबकि गरीब किसान और छोटे उद्योगवाले सिंचाई के साधन एवं असंस्कृत वस्तुओं के अभाव में बेकार रह जाते हैं ।

आपातकाल के दौरान टुच्चे एवं स्वार्थी राजनेता और पुलिस अधिकारियों ने मिलकर जनजीवन को दूभर बना दिया । अत्याचार के विरुद्ध बोलनेवालों को चुप कर दिया गया । साहित्यकार और पत्रकार जेल में ठूँस दिये गये । राजमार्ग को चौडा करने एवं शहर की सुन्दरता बढाने के अभियान में झुग्गी झोपडियों में रहनेवाले अनेक लोग घरबार से वंचित रह गये । अविवाहित युवक भी जबरदस्त नसबंदी केलिए बाध्य किये गये । "कटरा बी आर्जू" के देशराज, बिल्लो नायाब मछलीशहरी, आशराम, प्रेमानारायण आदि इन अमानवीय अत्याचारों के शहीद हैं । "शांतिभंग" के मुंशीजी, मास्टर नन्दकिशोर, दुर्गा कचौडीवाला, खसीटा, खरा आदि के अनुभव भी इससे भिन्न नहीं है । "प्रजाराम" व्यक्त करता है कि आपातकाल के दौरान लोग कितने आतंकित रहे थे और रामेश्वर जैसे टुच्चे राजनेता ने इस अवसर का उपयोग करके लाखों कमाया था और भ्रष्ट सरकारी कर्मचारियों ने कांग्रेस और इंदिरा गांधी की योजनाओं के समर्थक बनकर अपने आपको बचा लिया था ।

स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने साल बाद भी ज़मींदारी प्रथा का पूर्ण रूप से उन्मूलन नहीं हुआ है । गरीब और दलित किसान एवं मज़दूरों का शोषण जारी है । इसके विरुद्ध आवाज़ उठानेवाले इन ज़मींदारों से पीडित किये जाते हैं । इनकी

झोंपडियों में आग लगा दी जाती है । राजनेता हमेशा इन शोषकों को कानून के चंगुल से बचाते रहते हैं । "महाभोज" ठाकुर जोरावरसिंह, शोषण के विरुद्ध आवाज उठानेवाले दलित खेतिहर मज़दूरों की झोंपडियों पर आग लगा देता है । इसके विरुद्ध प्रणाम जुटानेवाले बिसू की हत्या कर डालता है । मुख्यमंत्री दा साहब, जोरावर को संरक्षण प्रदान करता है, क्योंकि पूरे एक गाँव के वोट उसके हाथों में हैं । गाँव के लोग उससे इतने आतंकित हैं कि सबकुछ जानकर भी कोई उसके विरुद्ध गवाही नहीं दे पाता । बिसू की हत्या का ईमानदारी से जाँच करनेवाला पुलिस अधिकारी सक्सेना मुअत्तल कर दिया जाता है, जबकि हत्या को आत्महत्या साबित करनेवाला डी·ऐ·जी· सिन्हा, ऐ·जी· बना दिया जाता है । बिसू की हत्या के विरुद्ध आवाज़ उठानेवाले बिंदा पर बिसू की हत्या का आरोप लगाकर उसे जेल में ठूँस दिया जाता है ।

राजनेता, प्रशासक और पूंजीपतियों के आपसी गठ-बन्धन ने आम जनता के शोषण को बढावा दिया है । ये जनता के शोषण करते हैं और एक दूसरे को दोषी ठहराते हैं । आम जनता असमंजस में पड जाती है कि असली शोषक कौन है ? लेकिन हर बार राजनेता नये और आकर्षक नारों से आम जनता को जीत लेते हैं । शोषण की इस स्थिति का चित्र उभरता है "जंगलतंत्रम्" में । नाग (पूंजीपति) आर्थिक रूप से सिंह (राजनेता) की सहायता करता है और बदले में सिंह चूहे (आम आदमी) को उसने (शोषण करने) की छूट दे देता है; आम आदमी को इस शोषण के विरुद्ध सख्त कदम उठाने का आश्वासन भी । यह दोहरी नीति वर्तमान राजनीति का यथार्थ है ।

बडे-बडे नेता अपने अधिकार, पद और प्रभाव को बनाये रखने केलिए नालायक चमचों को राज्य के सत्ताधारी बना देते हैं और उन्हें अपने इशारों पर नचाते हैं । स्वार्थी एवं पदलोलुप सदस्य सत्ता में भागीदारी केलिए वे मन इन चमचों का स्वागत करते हैं । यदि शासन में विभिन्न दलों की भागीदारी है तो प्रत्येक दल दबाव डालकर अधिक से अधिक कुर्सियां हडपने की कोशिश करता है । इसमें असफल होने पर गुप्त रूप से साम्प्रदायिक दंगा भड्काकर राज्य की शांति को भी कर देता है । महामहिम के राजा चन्द्रिकाप्रताप सिंह, उनके द्वारा नियुक्त मुख्यमंत्री तोताराम, असंतृप्त गुट के ने नेता जटाधर शुक्ल और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के नेता एवं तोताराम मंत्रिमंडल के सदस्य स्वामी ब्रह्मचारी आदि के चरित्र और वृत्तियों मे व्यक्त होता है कि सत्ता की प्रतियोगिता में जनता की प्रगति और सामाजिक विकास की भावना छूट जाती है और जनता साम्प्रदायिक दलों से भड्काये गये दंगों में पीडित होकर रहने केलिए विवश की जाती है ।

छुआछूत, धार्मिक शोषण, जाति-प्रथा आदि स्वतंत्र भारत में अभिशाप के रूप में आज भी विद्यमान है । प्रतिष्ठित उच्च वर्ग इन सब को शोषण के हथियार बनाते हैं । भारतीय संविधान में उल्लिखित धर्मनिरपेक्षता और समानता कागज़ों तक सीमित रह गयी है । खेद की बात यह है कि हर एक राजनीतिक दल एवं राजनेता अपने को दलित एवं पीडित वर्ग का संरक्षक और उनकी प्रगति एवं उत्थान को अपना लक्ष्य बताता है । दलित वर्ग को संसद एवं विधान सभा में आरक्षण भी है । लेकिन इससे कोई फायदा नहीं होता । "हज़ार घोडों का सवार" के गीशु की पूरी ज़िन्दगी मनुष्य की तरह जीने का अधिकार प्राप्त करने के संघर्ष में

बीत जाती है और इसी लक्ष्य केलिए वह शहीद हो जाता है । वह गीधू चमार से गिरिधरगोपाल भारतीय हो जाता है, लेकिन चुनाव लडने केलिए उसे चमार गीधू ही बनना पडता है । संसद सदस्य होकर भी वह चमार से मनुष्य नहीं बन पाता । अपने भाई-बहनों को कूएँ से पानी दिलाने की कोशिश में, अपने ही जाति-भाई चतुर्भुज के षड्यंत्र से वह ठाकुरों के हाथों मारा जाता है ।

"समय एक शब्द भर नहीं है" में वर्णित नक्सली आन्दोलन की पृष्ठभूमि बताती है कि सत्ताधारी शोषकों के विरुद्ध कदम उठाने के बदले शोषण के विरुद्ध बोलनेवालों को दमन करने की नीति अपनाता है । यह नीति शोषण को बढ़ावा देती है और इससे तंग आकर शोषित जनता शस्त्र उठाने केलिए मज़बूर हो जाती है ।

उपन्यासों में चित्रित स्थितियों पर नज़र डालने पर स्पष्ट होता है कि हर कहीं राजनीति का हस्तक्षेप सामाजिक जीवन को दूभर बना देता है । हर अत्याचारी, अपराधी, शोषक और हत्यारा राजनेताओं की सहायता से बच जाते हैं । हर विकास योजना से लाभ उठाते हैं, प्रतिष्ठित व्यक्ति । पदोन्नति और धन की लालसा में पडकर पुलिस और अन्य कर्मचारी इन राजनेताओं का साथ देते हैं । इसलिए हरिजन युवति से बलात्कार करके थानेदार, तालाब खोदने का पैसा हडपकर इंजीनीयर, और मजदूरों पर गोली चलवाकर पूंजीपति बच जाते हैं, जबकि अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाकर बिनू, गीधू चमार, अलगरजिया बाबा, फूलदास, शंकर भाई आदि-आदि मारे जाते हैं । रामलोचन पाण्डे, मास्टर मन्ना, एस॰पी॰ सक्सेना आदि को नौकरी से हाथ धोना पड़ता है ।

देशराज और बिल्लो को अपने सपनों के साथ मर मिटना पड़ता है । इसके अलावा सत्ता की होड में राजनेताओं से भड़काये गये साम्प्रदायिक और भाषाई दंगों से निरपराध जनसाधारण को पीड़ित होना पड़ता है । इस प्रकार राजनीति, जिसका तथाकथित लक्ष्य जनहित का संरक्षण है, जनहित और समाजनीति के विरुद्ध हो जाती है ।

राजनीतिक धांधली और मूल्यशोषण

वर्तमान समाज में राजनीति का लक्ष्य सत्ताप्राप्ति तक सीमित रह गया है । लक्ष्यप्राप्ति केलिए किसी भी अवैध मार्ग का अवलम्बन साधारण सी बात बन गयी है । इस स्थिति ने असामाजिक तत्वों को बढावा दिया । गुण्डागर्दी, सत्ता की राजनीति का अभिन्न अंग बन गयी है । राजनीतिक हत्याएँ आज हमें चौंकानेवाली बात नहीं है । सामाजिक जीवन की मनोवृत्ति में भ्रष्टाचार और अवसरवादिता पनप रहे हैं । "चुने हुए व्यक्ति पद पर पहुंचकर सामान्य जन नहीं रहते, वे विशिष्ट वर्ग के व्यक्ति बन जाते हैं । हालांकि वे जनता के सेवक के रूपमें अपना परिचय देते हैं पर इनके भीतर साम्राज्यवादी प्रवृत्तियाँ पनपने लगती हैं । सत्ता और पद का लोभ तथा स्वार्थ की भावना तीव्र होती जाती है । परिणामस्वरूप जनतंत्र की सत्ता को ये अपने स्वार्थ के अनुरूप तोड़ते-मरोड़ते और रूप देते हैं । हर नियम, निर्णय और योजना को इस प्रकार का रूप दिया जाता है कि अपने बाह्य रूप में वह जनहित के समर्थक जान पडे, और अपने व्यवहारिक रूप में कुछ मुट्ठी भर लोगों की स्वार्थपूर्ति करते रहे ।[1]" ऐसी स्थिति में

---

1. माधुरी शाह - कमलेश्वर का कथा साहित्य, पृ.106

ईमानदार और आदर्शवादी व्यक्ति पीछे छूट जाता है । असत्य को सत्य, दोषी को निर्दोषी और अनुचित को उचित सिद्ध करने में सक्षम राजनेता आगे बढ जाते हैं । "सत्ता के लालसाधारी ये व्यक्ति भली-भाँति जानते हैं कि वोट की ताकत बहुत कुछ सीमा तक समाज में परिव्याप्त भ्रष्टाचारी तत्वों के हाथ में है और इसी कारण वे किसी प्रकार इस शक्ति को खोना नहीं चाहते और जानते-बूझते भी अनाचार इनके आश्रय में फलत-फूलता है ।[1]" उक्त स्थितियों से यह व्यक्त होता है कि प्रतिष्ठित मूल्यों के प्रति सत्ता हथियानेवाले लोगों में रत्ती-भर भी आस्था नहीं है । इसी आस्थाहीनता के परिणाम जब राजनीति के क्षेत्र में पनपते हैं तब उसका रूप अत्यंत विकराल बनने लगता है । आलोच्य उपन्यासों में स्वार्थ की राजनीति से उत्पन्न स्थितियों से प्रेरित मूल्यशोषण के संदर्भ अनेक मिलते हैं ।

"एक और मुख्यमंत्री" का नायक अरविंद अपने राजनैतिक प्रभाव से ठाकुर नरेन्द्रसिंह को बचाता है, जिसने अपने दो बेटों की हत्या की थी । निरपराध धूडसिंह को फंसा लेता है । बदले में अरविंद ठाकुर नरेन्द्रसिंह से हज़ारों रुपये ऐंठ लेता है । इसी प्रकार अरविंद के मुख्यमंत्री रहते वक्त सेठ चंदूलाल कालाबाज़ारी करने के जुल्म पर पकडा जाता है । उसके साथ अरविंद की गाँठ-साँठ है । इसलिए अरविंद हवालत में ही उसकी हत्या करवा देता है । एक और घटने में कांग्रेस के वरिष्ठ नेता दीनाराम चौधरी आदर्श खत्री नाम्क युवति को "भारत सेवा समाज" के दफ्तर में स्टेनो की नौकरी दिलाके अपने पास रखता है और उससे शारीरिक

---

1. डॉ. अल्पा गुप्ता - छठे दशक की हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य, पृ.92

संबन्ध भी स्थापित करता है । एक बार दोनों के बीच कहा - सुनी होने पर आदर्श घर छोड देती है और अरविंद के यहाँ आश्रय लेती है । अपने भव्य आदर्शात्मक व्यक्तित्व के इस घृण्णित पक्ष को छिपाये रखने केलिए वह एक मोटर दुर्घटना का इंतज़ाम करके आदर्श को पहियों के नीचे कुचल देता है । एक और संदर्भ में अरविंद के मंत्रिमंडल के सदस्य उसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव रखने और उसे पदच्युत करके नये मंत्रिमंडल बनाने की सोचते हैं । इसकेलिए सजेतसिंह दो लाख रुपये खर्च करने को तैयार हो जाता है । किसी न किसी प्रकार अरविंद को यह मालूम हो जाता है और एक दिन रहस्यमय ढंग से सजेतसिंह की मृत्यु हो जाती है ।

कभी कभी राजनेता गुण्डों के द्वारा जनता पर आतंक फैलाकर जनता को अपने अनुकूल करने की नीति अपनाते हैं। "महाभोज" का जोरावर कहता है "तुम फिक्र नहीं करो पाण्डेजी, जोरावर के रहते । हमें मालू है, सुकुल बाबू को वोट देनेवाले कौन हैं ? तुम क्या सोचते हो, हमारे रहते बूथ पर पहुँच पायेंगे वे लोग ? जोरावर के राज में वे ही वोट दे पायेंगे जिन्हें जोरावर चाहेंगे ।"[1]

चुनाव निकट आने पर प्रचार कलिए गाडियों की समस्या उपस्थित होती है । समय की कमी और गाडियों की अनुपलब्धि में प्रशासक (अफसर) राजनेता को उपदेश देता है - "सरकार और सेना के पास जितनी अच्छी गाडियाँ है, उन्हें रद्दी घोषित कर आप नीलाम करवा दें । आपका भतीजा मस्ती

---

1. मन्नू भंडारी - महाभोज, पृ.149

गाडियां खरीदेगा । गाडियों को दूसरे रंगों में रंगवाकर आपकी पार्टी के हाथ बेच देगा । इस खरीद बिक्री से आपके भतीजे को लाखों का लाभ होगा ।" सरकारी साधनों और पद का दुरुपयोग काल्पनिक कहानी न होकर ऐतिहासिक सत्य के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत होता है ।

"महामहिम" के तोताराम मन्त्रिमंडल के सदस्य स्वामी ब्रह्मचारी स्वार्थपूर्ति हेतु अपने लोगों से मुख्यमन्त्री तोताराम पर एक समारोह में सडे टोमाटर और अंडे फेंकवाता है और मुहल्ले में साम्प्रदायिकता भडकाता है । मस्जिद पर पत्थर फेंकवाता है और हिन्दु मुहल्ले में यह अफवाह फैलाता है कि कृष्णमुरारी नामक एक लडके की हत्या मुसलमानों के हाथों हुई है, जबकि इसमें सत्य का अंश तक नहीं है । हिन्दु और मुसलमान आपस में लडने और आग लगाने लगते हैं ।

पेशेवर राजनेता गुण्डों को भी पालते हैं, क्योंकि वर्तमान राजनीति में इनकी भूमिका कम महत्वपूर्ण नहीं है । "दारूलशफा" में दुर्लभछाछी नामक गुण्डे की भूमिका का चित्र इस प्रकार है - "पिछले चुनाव में दुर्लभछाछी ने पूरे इलाके में तहलका मचा दिया । जिस गाँव में कृष्णवल्लभ का विरोध होता, वह गाँव लूट लिया जाता, घरों में आग लगा दी जाती । आशंका, भय के वातावरण में लोग अच्छी तरह समझ गये, अगर चैन से जिन्दा रहना है तो वोट

---

1. श्रवणकुमार गोस्वामी - जंगलतंत्रम्, पृ.63

कृष्णवल्लभ को ही देना चाहिए । चुनाव के बाद विरोधी दल तो दिखाई नहीं देते । उधर विरोधी दल के उम्मीदवार भला क्या करते, उनकी खुद वही हालत होती, जो वोट न देनेवाले की ।[1]"

राष्ट्रपति-शासन के समाप्त होने पर सदस्यों की मानसिकता की ओर लेखक संकेत करता है "गोल और गुटों से अलग पार्टी की सरकार बन जाने का उत्सवी महौल जोशिली तरंग बनकर लहरा रहा था । राष्ट्रपति शासन से ऊबे हुए विधायकों केलिए आज का मौका एक त्योहार की तरह खुशियों की गठरी लेकर आया था । सब-के-सब आनेवाले सुनहरे वक्त केलिए अपना-अपना हिसाब लेने में मशगूल थे । मंत्रिमंडल से लेकर कमेटियों, समितियों, संस्थाओं, निगमों और संस्थानों की सदस्यता, अध्यक्षता से जुडी हुई सुविधाओं के साथ कोटा, पेरमिट, तबादला, तरक्की, धन्धा-ठेका, आदि की नयी नयी रोज़-रोज़ाना की गतिविधियों ने सबके अन्दर कई प्रकार की याचक भावनाओं, खूबसूरत तमन्नाओं के फूल जैसे खिला रहे थे ।[2]" इससे स्पष्ट होता है कि इन्हें स्वार्थ की चिन्ता से बढ़कर कोई आदर्श नहीं है ।

"शांतिभंग" के मुख्यमंत्री सदानन्द शर्मा और भूतपूर्व मुख्यमंत्री त्रिलोचन पाण्डे संजय गांधी की खुशामदी करके अपने-अपने भविष्य को सुरक्षित बनाना चाहते हैं । इसलिए दोनों के बीच होड लगती है । इस होड में त्रिलोचन पाण्डे विजयी होता है ।

---

1. राजकृष्ण मिश्र - दारूलशफा, पृ.36
2. वही, पृ.347-348

"गड़बड़ी यह हो गयी थी कि सदानन्द शर्मा अब मुख्यमंत्री नहीं रहे थे। रात को राजधानी से हुकम आया कि मुख्यमंत्री त्याग-पत्र दे दें और विशेष सभा में त्रिलोचन पाण्डे को नेता चुन ले।"[1]

उपन्यासों में चित्रित स्थितियों के विवेचन से पता चलता है कि सत्ता हथियाने की राजनीति में प्रतिष्ठित मूल्यों का कोई महत्व नहीं रह गया है। प्रजातंत्र प्रणाली में जिन मूल्यों को प्रश्रय दिया जाता है, व्यावहारिक राजनीति में उनकी अवहेलना होती है। चुनाव में केवल सफलता की चिंता है। मूल्यों के प्रति आस्था रखनेवाले राजनीतिज्ञों की पीढ़ी अब नहीं रही। मूल्यच्युति को आजकल लोग "च्युति" न कहकर "परिवर्तन" कहना पसंद करते हैं। उनके अनुसार मूल्यों को गिरना है कि गिरे बिना नहीं रह सकते। आदर्शों का अवमूल्यन सच्चाई के धरातल पर एक महज़ आवश्यकता है। प्रजातंत्र का महत्व राजनेताओं केलिए इसलिए है कि यह वह तंत्र है जिसके माध्यम से नेता धन कमा सकता है, शक्ति हथिया सकता है और कुर्सी पर बैठकर भाई-भतीजों केलिए ही नहीं अपने भ्रष्ट अनुचरों केलिए भी सबकुछ कर सकता है। इसलिए अनुचरों केलिए भी राष्ट्रपति शासन का अन्त और मंत्रिमंडल की स्थापना एक जश्न का मौका है। यह इसलिए खुशियों का मौका है कि आगे आनेवाले दिन उनकेलिए कोटा, परमिट, पदोन्नती, रिश्वतख़ोरी और निकऊमबाजी का समय है। इस पर खुशियाँ मनाना हर राजनेता के अनुयायी का और मोटे शब्दों में हर "प्रजातंत्रवादी" का धर्म है।

---

1. मुद्राराक्षस - शांतिभंग, पृ.196

कांग्रेसराज की आलोचना

स्वतंत्रता-प्राप्ति से लेकर सन् 1977 तक (तीस साल) एकाध राज्यों को छोड़कर कांग्रेस का एकछत्र शासन रहा। स्वतंत्रता संग्राम से संबद्ध त्याग और बलिदान कांग्रेस की पूंजी रहे। लंबी गुलामी के कारण सांस्कृतिक और आर्थिक रूप से जर्जरित जनता को ऊपर उठाने केलिए कांग्रेस सरकार ने अनेक कदम उठाये और नयी योजनायें बनायीं। दुर्भाग्य की बात है कि जिन शोषकों ने अंग्रेज़ों से मिलकर जनता को लूटा था और स्वतंत्रता सेनानियों का जीवन दुष्कर बना दिया था, देशसेवक का मुखौटा ओढकर सामने आ गये और ग्राम पंचायत, जिला परिषद, सहकारिता समिति आदि के सर्वेसर्वा बनकर एक बार फिर जनता को लूटने लगा। इस कारण प्रगति के इन नये कदमों और योजनाओं के फल जनता तक पहुंच न पाये। भूमि-सुधार अभियान से किसान और खेतिहर मज़दूर लाभान्वित नहीं हुए। बल्कि भूमि बडे किसानों को मिल गयी जिनकी स्थिति पहले ही बुरी नहीं थी।

एक बार सत्ता मिल जाने पर स्वतंत्रता सेनानी कांग्रेस नेताओं में सेवा की भावना कम होती गयी और उनमें विलासिता, अर्थलिप्सा और भाई-भतीजावाद की भावनाएं पनपने लगीं। पूंजीपतियों एवं ज़मींदारों के साथ देकर इन्होंने जनहित की भावना को तिलांजली दे दी। नौकरशाही में तो अंग्रेज़ों के ज़माने में ही भ्रष्टाचार पैदा हुआ था। इस भ्रष्ट नौकरशाही ने सरकार की नयी योजनाओं के कार्यान्वयन में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई, बल्कि इसे अपनी स्वार्थपूर्ति के साधन बनाया। सब कहीं

भ्रष्टाचार पनपने लगे । कांग्रेस के नेताओं में सत्ता लोलुपता बढ़ गयी । इसलिए प्रथम आम चुनाव में ही हर वैध और अवैध तरीके अपनाये गये । स्वतंत्रता संग्राम के बलिदान के कारण जनता की सहानुभूति कांग्रेस को विरासत के रूप में प्राप्त थी । नेहरू के चुम्बकीय व्यक्तित्व के सामने दूसरे नेता कठपुतली रह गये । इस स्थिति ने कांग्रेस में व्यक्ति पूजा की भावना को बढावा दिया ।

गाँधीजी का नाम और रामराज्य के सपने बेचकर चुनाव जीतने में कांग्रेस सफल रही । अपने मंत्रिमंडल के सदस्यों पर आरोपित भ्रष्टाचारों के प्रति नेहरूजी सावधान न रहे । इन आरोपों को अपने विरुद्ध साज़िश समझकर वे इन सदस्यों की रक्षा करते रहे । भारत पर चीन के आक्रमण और युद्ध में पराजय ने भावुक नेहरूजी की आंखें खोल दीं । नेहरूजी के बाद एक छोटी-सी अवधि केलिए शास्त्रीजी प्रधानमंत्री रहे । नेहरूजी की मृत्यु के बाद कांग्रेस में कुर्सी की लडाई, जो शांति युद्ध के रूप में शुरू हुई थी, वह शास्त्रीजी की मृत्यु के बाद खुलेआम होने लगी । कामराज जैसे वरिष्ठ नेताओं के परिश्रम से श्रीमती इंदिरा गाँधी प्रधानमंत्री बन गयी । बिना विलम्ब के कांग्रेस में फूट पड गयी । इसके पीछे कोई सैद्धांतिक लडाई न होकर कुर्सी की लडाई थी ।

"समाजवाद लाओ" जैसे प्रगतिशील नारों से इन्दिराजी ने युवकों को आकर्षित किया । बैंकों के राष्ट्रीकरण और प्रिवी-पर्स की समाप्ति जैसे कदमों से इन्दिराजी की ख्याति बढती गयी । "गरीबी हटाओ" जैसे नारे जनमानस को जीतने में सफल हुए । बंगला देश युद्ध में पाकिस्तान पर विजय ने अगले चुनाव में उन्हें अभूतपूर्व

सफलता प्रदान की । लेकिन स्थितियों में जल्दी ही परिवर्तन आने लगा । पूंजीपतियों से समझौते की राजनीति ने देश की आर्थिक स्थिति को कमज़ोर कर दिया । कहीं-कहीं स्वार्थपूर्ति हेतु साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया गया । इस बीच 1975 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने श्रीमती गांधी के चुनाव को अवैध घोषित किया तो कुर्सी को बनाये रखने केलिए उन्होंने देश में आपातकाल की घोषणा की । चापलूसी राजनेता और अफसरों ने आपातकाल के दौरान जनकल्याण हेतु लागू की गयी योजनाओं का दुरूपयोग किया । पुलिसराज में जनता पर हुए जघन्य अत्याचार के कारण अगले आम चुनाव में जनता ने कांग्रेस को सत्ता से हटा दिया । लेकिन जनता पार्टी के नेताओं ने अपनी स्वार्थलोलुपता और कुर्सी की लडाई से कांग्रेस को फिर सत्ता में आने का रास्ता खोल दिया ।

"सन साठ के बाद कांग्रेसी सरकार की असफलता, स्वार्थपरता, भाई-भतीजावाद, और सत्तालिप्सा की कलई आम जनता के बीच धीरे धीरे खुलने लगी और धीरे-धीरे कांग्रेस सरकार के समाजवाद लाने का नुस्खा बेअसर होने लगा । सातवें दशक के अन्त में आते आते और आठवें दशक के प्रारंभ होते ही कांग्रेसियों की छबी इतनी मलिन और अविश्वसनीय हो गयी कि जनता को इससे वितृष्णा हो गयी ।" साठोत्तरी कालीन उपन्यासकारों ने दलीय पक्षपात से मुक्त होकर एकदम तटस्थता से इन राजनीतिज्ञों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है, उनकी नीतियों की आलोचना की है । आलोच्य उपन्यासों में कांग्रेसराज की आलोचना के चित्र इस प्रकार है -

---

1. डॉ.जितेन्द्र वत्स - साठोत्तरी हिन्दी कहानी और राजनीतिक चेतना, पृ.25।

"जिसकी छाती पर सदा लाल गुलाब मुस्कुराता रहता था, उस महान नेहरू के प्रशासन में मज़दूरों की छातियों पर गोलियों के लगे गुलाब हँसने लगे[1]।"

"हमारे पंडितजी के कारण ही सारे देश में उलझाव पैदा हो रहे हैं। यदि पंडितजी का अवचेतन मन अंग्रेज़ी से प्यार नहीं करता तो सन् 1947 में ही हिन्दी राष्ट्रभाषा के पद पर आसीन हो जाती। ये हरिजनों, दलितों और मुसलमानों के नये-नये तबके पैदा नहीं होते और आपसी जातीय तनाव भी उत्पन्न नहीं होता। चाउ एन लाई की धोखेबाज धूर्त मुस्कान उन्हें नहीं मोहती। और तिब्बत चीन के हाथों में न जाकर एक स्वतंत्र राष्ट्र होता या बफर स्टेट! जिससे भारत की सीमा सुरक्षित हो जाती[2]।"

"सरकार चाहे नेहरू की हो, चाहे लाल बहादुर की, चाहे मिसेस गाँधी की - कांग्रेस सरकार पूंजीवाद की दलाल और जनता की दुश्मन है। बजट चाहे मुरारजी बनाएँ चाहे सुब्रह्मण्यम - कांग्रेस सरकार का हर बजट जनता को लूटनेवाला और पूँजी के बड़े घरानों का मददगार है[3]।"

"मैं भी यही सोचती थी कि कांग्रेस के सिवा किसी के पास हमारे दुखों का इलाज हो ही नहीं सकता। आशाराम कहता था कि कांग्रेस कांग्रेस अब कहाँ है? वह तो सन् सैंतालीस में अंग्रेज़ों से

---

1. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - एक और मुख्यमंत्री, पृ.247
2. वही, पृ.253
3. राही मासूम रज़ा - कटरा बी आर्जू, पृ.15-16

आखिरी शर्मनाक समझौता करके मर गयी थी । वह पंडितजी को हिपाक्रेट समझता था । मैं तो उनसे अलग हो गयी लेकिन अब कभी-कभी मुझे लगता है कि शायद वह ठीक कहता था[1] ।"

"इमर्जेन्सी एक भयानक काली रात थी, श्रीमति गाँधी ग्रहण की तरह हमारे संविधान के चाँद को लग गयी थी । पर उस रात के खत्म होने पर सबेरा नहीं हुआ । मुझे ऐसा लगता है कि एक रात खत्म हुई और दूसरी रात शुरू हुई[2] ।"

"हमारा देश जिसके बारे में जहाँगीर ने लिखा था कि जन्नत यही है, एक खण्डहर बन गया, जिसपर कूडे की तरह कटे हुए सिर और कटी हुई जुबानों का ढेर लग गया और इस ढेर पर एक कुकुरमुत्ता उगा जिसका नाम संजय गाँधी था[3] ।"

"तीस साल से आप लोगों की सुनते समझते आ रहे हैं । क्या हुआ आज तक ? पेट भरने केलिए अन्न नहीं, आपकी बाते खाली बातें[4] ।"

"मोहराबंदी के पहले नसबंदी कर दी जाती है । दरअसल यह नसबंदी अधिक बच्चोंवाले मां-बाप की नहीं, सत्य, धर्म, मनुष्यता, न्याय और स्वतंत्रता की नसबंदी है[5] ।"

---

1. राही मासूम रज़ा - कटरा बी आर्जू, पृ.204
2. वही, पृ.122
3. वही, पृ.153
4. मन्नू भंडारी - महाभोज, पृ.68
5. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - प्रजाराम, पृ.11

"महात्मा गाँधी ! वही व्यक्ति पूजा का प्रतीक । एक यही नाम है जिसे ये नेता प्रजा और दलित वर्ग के शोषण करने का हथियार बनाये हुए हैं । "हमें गाँधीजी के सपनों के भारत को बनाना है । देश में रामराज्य लाना है ।" ? कब लोग पूर्वजों के नाम से लोगों को बरगलाना बंद करेगा ? कब यहाँ के राजनेता शहीदों की दुहाई देना बंद करेंगे ?"[1]

"आदरणीय नेताजी, इस देश के एक तिहाई इनसानों को तो लिखना-बोलना और आपकी तरह सोचना आता ही नहीं । उन लोगों केलिए आपने तीस सालों में क्या किया ? उनका तो खादी के कपडे पहनकर खून ही पिया है[2] ।"

उपन्यासों के विवेचन से पता चलता है कि स्वाधीनता आन्दोलन से संबद्ध कांग्रेस पार्टी में, जिसका त्याग और बलिदान का इतिहास है, शोषक लोगों के घुसपैठ, नेताओं की स्वार्थलोलुपता, पूंजीपतियों एवं जमींदारों से नेताओं की समझौतावादी नीति आदि के कारण उत्पन्न विपरीत स्थितियों से देश का भविष्य अंधकारमय बन गया है । जनजीवन के प्रत्येक क्षेत्र व्याप्त भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद आदि के चित्र उपन्यासों में खूब मिलते हैं । इनमें कहीं-कहीं नेहरूजी और श्रीमति गाँधी की नीतियों की आलोचना है । कहीं पंचशील, इमर्जेन्सी जैसी ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख कर आलोचना की गयी है तो और कहीं प्रतीकात्मक और व्यंग्यात्मक

---

1. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - प्रजाराम, पृ.104
2. वही, पृ.40

चित्रों के माध्यम से कांग्रेस-शासन का पोल खुल गया है । उपन्यासकारों ने कांग्रेस की आलोचना करते समय ऐसी भाषा का और ऐसे संदर्भों का सहारा लिया है जिससे सच्चाई का बहुत बडा हिस्सा खुलकर सामने आने लगता है । जहाँ कहीं भी व्यंग्य का सहारा लिया गया है, वहाँ सब यह व्यंग्य बहुत ही चुभनेवाला लगता है । वर्णन और विवरण अतिशयोक्तिपरक न बनकर अत्यंत यथार्थवादी है । खासकर राजनेताओं द्वारा की जानेवाली तिकडमबाजी, घिनौनी चाल और साजिश के चित्र इतने स्वाभाविक बने हैं कि लेखकों की प्रतिबद्धता और चित्रण की जीवन्तता को सराहे बिना नहीं रह सकता । इसलिए चर्चित उपन्यास एक समयखण्ड की राजनीतिक धाँधली, मूल्यच्युति और षड्यंत्र के सही दस्तावेज़ हैं ।

<u>जनजीवन और मूल्यशोषण</u>

स्वातंत्र्योत्तर भारत में स्थितियाँ तीव्र गति से बदलती गयीं कि सामाजिक सामंजस्य टूट गया । "विभाजन स्थूल और शारीरिक रूप में एक दुर्घटना नहीं था, यह एक मानवीय ट्राजडी थी, जिसने लाखों लोगों को भावनात्मक, मनोवैज्ञानिक और आत्मिक स्तरों पर प्रभावित किया था । वह दुर्घटना केवल राजनीतिक या किसी वर्ग विशेष से जुडी हुई नहीं थी, बल्कि इससे लाखों, करोडों लोगों की जिन्दगी, उनका वर्तमान और भविष्य, उनकी सभ्यता और संस्कृति, उनका आचरण और व्यवहार भी जुडा हुआ था ।"[1] विभाजन से संबद्ध सांप्रदायिक दंगों और अमानवीय

1. नरेन्द्र मोहन - दृश्यांतर, पृ.191

अत्याचारों ने मनुष्य पर मनुष्य का जो विश्वास था उसे मिटा दिया । "नैतिक पतन इस सीमा तक पहुँच गया है कि देश के बडे-बडे लालची सत्ताधारी न्याय के पक्षधर न होकर अन्याय के समर्थक हो गये हैं[1] ।"

विकास योजनाओं से गरीब किसान एवं मज़दूरों को लाभ नहीं हुआ । बल्कि शोषकों के नये वर्ग सामने आ गये । राजनीति जनसेवा से व्यवसाय हो गयी । मज़दूर एवं किसानों के हितैषी नेता पहले अपने हित सोचने लगे । "धन की प्रचुरता हमारी राजनीति में बहुत गहराई तक धँसी हुई है । इसलिए राजनीति जनहित के उत्कर्ष की चिंता के स्थान पर स्वार्थ की जोड-तोड में व्यस्त है । सत्ता और संपत्ति का पारस्परिक गठजोड और षड्यंत्र देश में चोरीबाज़ारी घूसखोरी और अराजकता उत्पन्न करने का उत्तरदायी है और इस प्रकार पूरा का पूरा देश भयानक विसंगतियों से ग्रस्त है । सभी जाने-पहचाने सभ्य चेहरे अपने भीतर असभ्यता और नीचता की पते छिपाये हैं[2] ।"

राजनीति में आदर्श और ईमानदारी का कोई मूल्य नहीं रह गया है । भोली जनता को सुनहरे भविष्य के सपने दिखाकर और आकर्षक नारों के ज़रिए चुनाव जीतना राजनेताओं का लक्ष्य रह गया है । एक बार सत्ता प्राप्त होने पर उसे बनाये रखने और विलासितापूर्ण जीवन बिताने हेतु धन प्राप्त करने केलिए

---

1. डॉ. बैजनाथ प्रसाद शुक्ल - भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युग चेतना, पृ.24।
2. रामदरश मिश्र - अनुवाक (1979), पृ.62

असामाजिक तत्वों को प्रश्रय देने से ये राजनेता हिचकते नहीं । "ईमानदार व्यक्ति ठोकरें खाता फिरता है और बेईमान जीवन की सारी सुविधा लिये बैठे हैं; परिश्रमी आदमी को रोटी-दाल जुटाने की मुश्किल पडी रहती है और मुशामदी तथा निकटमी मजे लूट रहे हैं; प्रतिभाशाली व्यक्ति टूटते और कुंठित होते जाते हैं और धूर्त तथा चालाक देश की बागडोर संभाले हुए हैं ।"[1]

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद देश में राजनीतिक दलों की संख्या बढती गयी । लेकिन हर एक का लक्ष्य सत्ता-प्राप्ति और स्वार्थपूर्ति से बढकर और कुछ नहीं है । इनकी नीतियों में कोई मौलिक अन्तर नहीं है । "आम आदमी को जिस तरह यह नहीं मालूम होता था कि एक ही कम्पनी के चार साबुनों के अलग अलग दाम क्यों हैं या एक ही चीज़ के कच्चे माल, निर्माण, प्रचार, बिक्री केलिए चार कम्पनियाँ क्यों हैं और उनमें से किसकी गलती से साबुन साफ करने के बजाय खाज पैदा करता है और किसके सत्प्रयास से रातों-रात महँगा हो जाता है, ठीक उसी तरह उसे यह भी नहीं मालूम होता था कि गिरिराज काग्रेस, अय्यर काग्रेस, समाजवादी काग्रेस और पुरानी काग्रेस में क्या फर्क है ।"[2]

अपनी स्वार्थपूर्ति केलिए राजनीतिक दल साप्रदायिकता, भाषावाद, क्षेत्रवाद, जातिवाद जैसे संकुचित भावनाओं को उकसा देते हैं । चुनाव में धन, शराब और लाठी तक का प्रयोग होता है । प्रतियोगियों को फँसाने केलिए धन, शराब से लेकर महिलाओं तक का इस्तेमाल होता है । ईमानदार पुलिस अफसरों को अपमानित होना पड़ता है और कहीं-कहीं उनकी जान भी खतरे में पड़ जाती है ।

---

1. गोपाल - समीक्षा (1980), पृ.32
2. मुद्राराक्षा - शांतिभा, पृ.65

इसलिए अक्सर लोग सत्ताधारियों की खुशामदी करके और अपने पद का दुरुपयोग करके विलासिता के साधन जुटाने में लग जाते हैं,तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। स्थितियाँ सूचित करतीहैं कि "पैसे की कीमत बढ गयी है और आदमी की कीमत गिर गयी है।"[1]

सत्ताधारियों ने न्यायालय को भी नहीं छोडा है। न्यायाधीशों की नियुक्ति से लेकर तरक्की और तबादले तक में राजनीतिज्ञों का हाथ है। इस स्थिति ने जनता के मन में न्यायालयों के प्रति अविश्वास पैदा कर दिया है। जनजीवन को दुभर बनाने में नौकरशाही का योगदान भी कम नहीं है। "नौकरशाही जो ब्रिटिश शासन की भारत को वह देन है जो अपनी समस्त बुराइयों के बावजूद आज के भारतीय जनजीवन पर छायी हुई है।"[2] स्थितियाँ इतनी बिगड गयी हैं कि घूस दिये बिना दफ्तर से किसी सरकारी आदेश का नकल तक मिलना संभव नहीं रह गया है।

"परिस्थितियाँ इतनी तेजी से बदल रही है, चीज़ों का रूप इतना विकृत होता जा रहा है कि सही क्या है और गलत क्या है, इसका निर्णय व्यक्ति के सामने एक समस्या बनकर उपस्थित हो गया है और यही व्यक्ति में अनास्था का भाव जाग्रत करने का कारण बना है।"[3] उनके सामने आदर्श की कोई स्थिति नहीं रही तो तथाकथित मूल्य खोखले प्रतीत होने लगे। इन स्थितियों ने

---

1. गजानन माधव मुक्तिबोध - नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, पृ.40
2. डॉ. ह.श्री.साने - यशपाल के उपन्यासों में सामाजिक चेतना, पृ.72
3. डॉ. कुसुम वार्ष्णेय - भगवतीचरण वर्मा (चित्रलेखा से सबहिं नचावत राम गोसाईं तक), पृ.7

मिलकर समकालीन जीवन को जटिल बना दिया है । "आदमी कर्ता के स्थान पर उपभोक्ता हुआ, इनसान की जगह मशीन की एक पुर्जा होने को बाध्य हुआ । वह व्यक्ति के स्थान पर वोटर हुआ । आधुनिकता के नाम पर वह प्रतिक्रियावादी आधुनिक हुआ । प्रजातंत्र, समाजवाद, समानता, धर्मनिरपेक्षता, गुट-निरपेक्षता, शांति और पंचशील के रंग-बिरंगी वस्त्र पहनकर भारतवासी बिना अपना चेहरे का हो गया[1] ।"

इस प्रकार स्थितियों के विश्लेषण से पता चलता है कि जनजीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मूल्यशोषण हुआ है । वैज्ञानिक जीवन दृष्टि ने एक भोगवादी संस्कृति को जन्म दिया है जहाँ मूल्यों का महत्व उसकी श्रेष्ठता के कारण न होकर उपयोगिता के कारण होता है । इस दृष्टि ने सामाजिक जीवन में मूल्यविघटन की स्थिति पैदा कर दी है । इस स्थिति को बढावा देने का दायित्व पेशेवर राजनीतिज्ञों, उनके पोषक पूंजीपतियों, भ्रष्ट अफसरों एवं पुलिस अधिकारियों और कालाबाज़ारी एवं मुनाफाखोरी करनेवाले असामाजिक वर्गों पर है ।

---

1. डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल - निर्मूल वृक्ष का फल, पृ. 14।

पाँचवाँ अध्याय

राजनैतिक मूल्यबोध की बदलती संकल्पना

पाँचवाँ अध्याय

राजनैतिक मूल्यबोध की बदलती संकल्पना

भारतीय राजनीति और पार्टियों का गठबन्धन

भारत में राजनैतिक चेतना का विकास राष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेज़ी शासन की प्रतिक्रिया के रूप में शुरू हुआ था । "राजनीति, सत्ता की लड़ाई है, भारत के संबन्ध में स्थिति यही रही, और आज भी है । 1947 तक लड़ाई अंग्रेज़ों के विरुद्ध थी और विदेशी शासकों के हाथों से भारत पर शासन करने का अधिकार छीन लेना उसका लक्ष्य रहा । 1947 के बाद लड़ाई कांग्रेस और विपक्षी दलों के बीच रही और लक्ष्य रहा, सत्ता की कुर्सियों में प्रविष्ट होना।"[1]

1. Politics is the struggle for power, and so has been, and is the case in India. Upto 1947 the struggle was against the British and the object was to snatch the power of ruling over India from the foreign masters. After 1947, the power struggle was between the Congress party on one side and the Opposition parties on other side,and the object was to get into seats of governmental authority -
D.C. Gupta - Indian Government and Politics. P 149

लेकिन सत्ता की लड़ाई होते हुए भी स्वतंत्रतापूर्व और स्वातंत्र्योत्तर कालीन राजनीति में उल्लेखनीय अन्तर है । स्वाधीनताप्राप्ति के पहले राजनीति त्याग और सेवा जैसे उच्च मूल्यों से संबद्ध थी । विभिन्न राजनैतिक विचारधाराओं में विश्वास रखनेवाले लोग आपसी भिन्नता भूलकर देश की स्वाधीनता केलिए लड़े थे । उन में स्वार्थ की चिन्ता न थी । लेकिन स्वाधीनता प्राप्ति के बाद राजनीति एक पेशा बन गयी - लाभदायक पेशा । धर्म, जाति, भाषा और क्षेत्र कुटिल दायरे में सिमटकर स्वार्थी राजनेताओं ने देश की एकता और धार्मिक सद्भावना को भंग कर दिया । भ्रष्टाचार और अवैध तरीकों से सत्ता हथियाने और सत्ता में बने रहने की लडाई में लगे रहे । राजनीति प्रदूषित हो गयी । सत्ता से वंचित एवं असंतृप्त राजनेताओं ने नई पार्टियों को जन्म दिया । पार्टियों की संख्या बढती गयी । सत्ता की होड में सैद्धांतिक भिन्नता भूलकर ये आपसी गठबन्धन में बाँधे जाने लगीं । इन गठबन्धनों पर विचार करने से पहले भारत की प्रमुख राजनैतिक पार्टियों और उनके प्रख्यापित लक्ष्यों पर विचार करना आवश्यक है ।

कांग्रेस पार्टी

कांग्रेस की स्थापना सन् 1885 में हुई थी । स्वतंत्रता-संग्राम में कांग्रेस ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी । 1955 में आयोजित 60 वीं अधिवेशन में घोषित किया गया कि पार्टी का लक्ष्य भूमि और संपत्ति के पुन: वितरण द्वारा समाजवादी समाज और कल्याण राज्य की स्थापना है । विदेशी संबन्धों में कांग्रेस गुटनिरपेक्ष नीति के आधार पर सभी देशों से शांतिपूर्ण सौहार्द के

द्वारा भारत की राजनैतिक एवं आर्थिक स्वतंत्रता को दृढ बनाने और अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा एवं प्रभाव बढाने में विश्वास रखती है । पार्टी के बडे नेताओं में हुए गहरे मतभेद के कारण 1969 में पार्टी दो भागों में बँट गयी जो इन्डियन नेशनल कांग्रेस (रूलिंग) और इन्डियन नेशनल कांग्रेस (आर्गनेज़ेशन) नाम से जाननी जाने लगी ।

भारतीय साम्यवादी दल

स्वाधीनता प्राप्ति के पहले ही भारत में (1933) साम्यवादी दल की स्थापना हुई थी । यह रूस की क्रांति की सफलता की प्रतिक्रिया के रूप में हुई थी । कुछ वर्षों केलिए यह प्रतिबन्धित पार्टी उद्घोषित की गयी थी । समाजवादी समाज का निर्माण और सर्वहारा वर्ग का नायकत्व इसके लक्ष्य हैं । मेहनती मज़दूरों और किसानों की स्वतंत्रता पर यह दल ज़ोर देता है । यह भारत की गुटनिरपेक्ष विदेश-नीति के अनुकूल है, जबकि भारत की अर्थनीति की आलोचना करता है ।

भारतीय साम्यवादी दल (मार्क्सवादी)

1964 में भारतीय साम्यवादी दल से चीन के समर्थक अलग हो गये । उन्होंने एक नई पार्टी को जन्म दिया - भारतीय साम्यवाद दल (मार्क्सवादी) । मज़दूर एवं किसान संघ के आधार पर जनता के प्रजातंत्र राज्य की स्थापना द्वारा समाजवाद और साम्यवाद की स्थापना इसका लक्ष्य है । देश से विदेशी पूंजी का निष्कासन

और सब लोगों को समान अवसरों के आधार पर रोटी कमाने की छूट इस पार्टी के बहुचर्चित लक्ष्य रहे हैं ।

समाजवादी दल (सोश्यलिस्ट पार्टी)

कांग्रेस के अन्दर ही किसान एवं मज़दूरी संबन्धी नई विचारधारा रखनेवाले लोग थे । इनके द्वारा सन् 1952 में प्रजा समाजवादी दल की स्थापना हुई । समाजवादी समाज की स्थापना इसका लक्ष्य रहा । नेताओं के बीच के मतभेद के कारण समाजवादी दल में फूट पड़ती गयी । 1971 के मध्यावधि चुनाव में हुई दारुण पराजय के बाद समाजवादी विचारवाले प्रजा-समाजवादी दल, संयुक्त समाजवादी दल और समाजवादी दल के अन्य संघटकों को मिलाकर "समाजवादी दल" नाम से एक नये दल को जन्म दिया गया । शोषण से मुक्त समाजवादी समाज इसका लक्ष्य है ।

स्वतंत्र पार्टी

स्वतंत्र पार्टी की स्थापना भूतपूर्व कांग्रेस नेता एवं गवर्नर-जनरेल सी राजगोपालाचारी द्वारा 1959 में हुई थी । यह अनियंत्रित निजी क्षेत्रीय उद्यमों और प्रतिद्वन्द्विता पर ज़ोर देती है । यह कृषि, उद्योग एवं व्यवसायों पर कम से कम नियंत्रण और निजी या सार्वजनिक क्षेत्र में एकाधिपत्य का अन्त अपना लक्ष्य समझती है । एक प्रकार से स्वतंत्रता पार्टी पूंजीवादी लक्ष्य का समर्थन करती है ।

जनसंघ तथा अन्य सांप्रदायिक दल

भारतीय जनसंघ की स्थापना सन् 1951 में हुई थी । उसके पहले भी भारत में अनेक सांप्रदायिक दल काम करते आये थे, क्योंकि भारतीय जनता पर धर्म का प्रभाव सदा से ही रहा है । साधारण जनता धर्म के सिद्धांतों को आसानी से समझ नहीं पाती । इसलिए धर्मज्ञों या विद्वानों के बताये मार्ग पर आंख मूंदकर चलती है । जनता की इस धर्मान्धता का फायदा उठाकर सांप्रदायिक दल राजनीति में प्रभुत्व बढ़ाने की कोशिश करते हैं । इनमें से ज्यादा अपने दल को सांस्कृतिक परिवेश प्रदान कर असली सांप्रदायिक रूप को छिपाने के प्रयास करते हैं । लेकिन इनके राजनैतिक प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता । राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ इनका एक प्रमुख उदाहरण है । हिन्दू महासभा, रामराज्य परिषद, मुस्लिम लीग और अकाली दल स्पष्ट रूप से सांप्रदायिक हैं । इनके अलावा क्षेत्रीय या प्रादेशिक दलों की संख्या भी कम नहीं है । विशेष राज्यों में इनका प्रभाव है । तमिलनाडु में द्राविड मुन्नेट्ट कड़गम, महाराष्ट्रा में शिवसेना, उडीसा में गणतंत्र परिषद, केरल में क्रांतिकारी समाजवादी दल (आर•एम•पी) एवं केरला कांग्रेस, असम में हिल लीडेर्स कान्फ्रेन्स, बिहारमें झारखंड पार्टी, गुजरात में महागुजरात जनता परिषद आदि क्षेत्रीय पार्टी के उदाहरण हैं । इन राज्यों में उक्त दलों का प्रभाव उल्लेखनीय है ।

भारत के विविध राजनैतिक दलों के इतिहास पर ध्यान देने से व्यक्त होता है कि "ये सारे पक्ष समय-समय पर सुविधा की राजनीति खेलते रहे हैं । संप्रदाय, क्षेत्रवाद, जाति-विरादरी के नाम पर अलगाव, सत्तालिप्सा, भाई-भतीजावाद, अनाचार आदि

से शायद ही कोई पक्ष अपने को मुक्त रख सका हो । राजनीतिक दलों की यह भीड राजनीति का कोई साफ चेहरा प्रस्तुत नहीं करती ।[1] आदर्श या सिद्धांतों के आधार पर राजनैतिक दलों का ध्रुवीकरण नहीं हो पाया, क्योंकि सत्तालोलुपता कांग्रेस एवं अन्य राजनैतिक दलों को सांप्रदायिक और विघटनकारी शक्तियों से गठबन्धन केलिए प्रेरणा देती रही । सांप्रदायिकता के कट्टर विरोधी साम्यवादी दल भी इस प्रकार के गठबन्धन से बच नहीं पाये । हमेशा पार्टियों का गठबन्धन सत्ता हथियाने के लक्ष्य पर आधारित रहा, आदर्शों पर नहीं । शिवसेना, अकाली दल जैसे सांप्रदायिक और द्राविड मुन्नेट्ट कषगम जैसे क्षेत्रीय दलों से कांग्रेस का चुनाव-समझौता इसका उदाहरण है । भारतीय साम्यवादी दल (सी·पी·आई) भी वर्षों तक कांग्रेस के साथ रहा । सी·पी·एम· का भी गठबन्धन राज्यों में मुस्लिम लीग जैसे सांप्रदायिक दलों से रहा है । इस प्रकार इतिहास साक्षी है कि शासक चाहे कांग्रेस या विपक्षी दल, समय समय पर इनका सांप्रदायिक और संबद्ध दलों से संबन्ध रहा है । ये एक दूसरे पर सांप्रदायिकता, जातीयता, भाषावाद और क्षेत्रवाद जैसे विघटन-कारी तत्वों को प्रोत्साहित करने का आरोप लगाते रहते हैं, जबकि सत्य यह हैकि इसके दायित्व से कोई भी दल मुक्त नहीं है ।

उपन्यासों में चित्रित स्थितियों के आधार पर मूल्यबोध का परिवर्तित रूप

समय के अनुसार स्थितियों में और स्थितियों के अनुसार चिंतन में परिवर्तन होता है । "युग करवट लेता है तो अनेक पुरानी

1· डॉ· पीताम्बर सरोदे - आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक एवं आर्थिक चेतना, पृ·104

मान्यताएँ उसकी करवट तले चूर हो जाती हैं और नई मान्यताएँ उभरने लगती हैं।[1]" जो स्थितियों के अनुसार अपने को बदलने में सक्षम होता है, वह जिन्दगी में विजय प्राप्त करता है। इसलिये महत्वाकांक्षी एवं स्वार्थी लोग समय की धड़कन को पहचानकर उसके अनुसार अपनी स्वार्थपूर्ति की दाँव-पेंचों को रूप देता है। इनका एकमात्र लक्ष्य स्वार्थपूर्ति है और इनकेलिए कोई भी मार्ग अवैध नहीं है। इनके स्वार्थ के आगे अन्य व्यक्तियों के हित का कोई महत्व नहीं होता। समकालीन राजनीति में मूल्यबोध का यह परिवर्तित रूप सब कहीं दृश्यमान है। सत्ता हथियाने और कुर्सी को बनाये रखने से बढकर राजनीतिज्ञों का कोई लक्ष्य नहीं है। इसकेलिए अपनाये जानेवाले तरीकों में वैध और अवैध की चिंता नहीं है। ये राजनेता समाज कल्याण और दलित एवं पीडितों के उद्धार की बातें करते हैं। देश की अखण्डता, धार्मिक उदारता, धर्मनिरपेक्षता, समानता, अहिंसा जैसे श्रेष्ठ मूल्यों की दुहाई देते हैं। लेकिन इनकी व्यावहारिक नीति में उपर्युक्त मूल्यों का कोई स्थान नहीं है, उल्टे सत्ता की प्रतिद्वन्द्विता में इन तमाम मूल्यों को पैरों तले कुचल देते हैं। इनकी दृष्टि में मूल्यों की कसौटी श्रेष्ठता न होकर उपयोगिता रह गयी है। मूल्यबोध के इस परिवर्तित रूप का चित्र आलोच्य उपन्यासों में प्रस्तुत है।

"एक और मुख्यमंत्री" के अरविंद का चरित्र परिवर्तित मूल्यबोध का उत्तम उदाहरण है। वह अपनी डायरी में लिखता है - "युग बदल गया है। आज वही बडा एवं सफल व्यक्ति कहलाता है, जो अपने निम्नतम एवं घृणित कृत्यों द्वारा अपने उद्देश्य तक पहुँच जाय,

---

1. हरिचरण शर्मा - नये प्रतिनिधि कवि, पृ.।

जिसकी दृष्टि सदा अपने उद्देश्य पर जमी रहती है । एक मनुष्य का जीवन उसकेलिए उतना ही महत्व रखता है जितना तूफान केलिए तिनका[1] ।" राजनीति में धन के प्रभाव को देखकर अरविंद सोचता है "बिना पैसे, आज की नेतागिरी पंगु है । सफल नेता वही बन सकता है जो या तो बिलकुल तिकडमी हो या जिसकी तिजोरियों में चाँदी के सिक्के नाचते हों । पैसा, जातीयता का जोर, तिकडम, झूठ, कठोरता और धर्म का नाम नेतागिरी[2] !" राजनीति में कदम रखने के पहले शची वर्तमान राजनीति में कदम रखने के पहले शची वर्तमान राजनीति की निन्दा करती है, तो अरविंद कहता है - "तुम्हारा कहना सोलह आने ठीक है । लेकिन हर एक युग का एक मानदंड होता है । और आज सत्य, धर्म, मानवता, राष्ट्र, राष्ट्रीयता और त्याग शब्द अपनी महत्ता और मूल्य खो चुके हैं । ये बूढे और ऊपरी तौर पर अच्छे लगनेवाले शब्द, भीतर से इतने कमज़ोर और खोखले हो गये हैं कि मनुष्य इनको आधार मानकर जी नहीं सकता । अपने आन्तरिक विलास और निजी स्वत्व को कायम नहीं रख सकता है[3] । "

शची कांग्रेस छोडकर स्वतंत्र रूप से चुनाव लडती है तो अरविंद कहता है - "वैसे तुम्हारे जो उम्मीदवार है वह कांग्रेस का पुराना और कर्मठ कार्यकर्त्ता अवश्य है, पर वह अत्यन्त सच्चा है । और सच्चे व्यक्तियों का इस संसार में ईश्वर भी नहीं होता । यहाँ तो झूठों का बोलबाला और सच्चों का मुँह काला[4] ।"

---

1. यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र" - एक और मुख्यमंत्री, पृ.40
2. वही, पृ.72
3. वही, पृ.120
4. वही, पृ.161

चौधरी दीनाराम के हाथों आदर्श नामक युवति की हत्या होती है । इसके प्रमाण मिल जाने पर भी अरविंद उसके विरुद्ध कदम नहीं उठाता । शची के पूछने पर वह कहता है - "सत्ता में सब संभव है । पिता द्वारा पुत्र, पुत्र द्वारा पिता, पति द्वारा पत्नी की और पत्नी द्वारा पति की हत्या । राजनीतिक हत्यायें होती रहती हैं और हम इसका रहस्योद्घाटन करके सुखी नहीं हो सकते ! हर सत्ताधारी समय-समय पर इतनी निर्दयता से पेश आता है क्योंकि राजनीति में कभी-कभी हत्याएँ सार्थक और सफलता की प्रतीक होती हैं । शची ! इस पर मौन धारण करना ही उत्तम है[1] ।" अरविंद के अनुसार "राजनीति में कोई दोस्त नहीं और कोई दुश्मन नहीं । कोई धर्म नहीं और कोई पाप नहीं । राजनीति एक विशुद्ध अवसर का लाभ उठाने का नाम है । नैतिकताओं और अनैतिकताओं से परे[2] ।"

बदलते जमाने की ओर इशारा करते हुए "सबहिं नचावत राम गोसाईं" का जेसुखलाल कहता है - "दुनिया बिकी हुई है रुपये से । तो यह सूदखोरी और मकान के किराए में कुछ नहीं धरा है, आज का जमाना इंडस्ट्रीज़ का है । मिलें खोलो, हज़ारों नौकर रखो और मौज करो[3] ।" रामलोचन पाँडे शहर के गुण्डों एवं ब्लैक मार्केटिंग करनेवालों को गिरफ्तार करके जेल में बन्द करता है और मंत्री के पूछने पर कहता है कि इन दिनों अपराधों की संख्या में काफी कमी आ गयी है तो मंत्री जबरसिंह कहता है - "तो फिर

---

1. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - एक और मुख्यमंत्री, पृ.293-294
2. वही, पृ.313
3. भावतीचरण वर्मा - सबहिं नचावत राम गोसाई, पृ.28

सरकार को पुलिसवालों की संख्या में कमी करनी पड़ेगी । अपराधों के अनुपात से ही तो पुलिस फोर्स बढ़ाया जाता है । अब यह देखो कि साम्प्रदायिक दंगों की आशंका नहीं, स्मगलिंग कम होगी, ब्लैक-मार्केटिंग बन्द लॉ एण्ड आर्डर पोज़ीशन बिलकुल ठीक ! तो फिर तुम पुलिसवालों की जरूरत ही क्या है ? नहीं रामलोचन, इन गुण्डों को बन्द रखने से कोई फायदा नहीं । तो कल इन लोगों को बुलाकर ले वचर देना कि देशभक्त बनें, ईमानदार नागरिक बनें, कानून का पालन करे ! और फिर छोड़ देना[1] ।"

"काली आंधी" की मालती अपने चुनाव-क्षेत्र में बनियाओं का असर देखकर लाला दीनानाथ को एक उम्मीदवार के रूप में खडा कर देती है । इसके बाद वह अपनी सफाई देती हुई गुरुसरनजी से कहती है - "हम जातिवाद के आधार पर कहाँ चुनाव लड रहे हैं ? मैं उनकी जाति की नहीं हूँ । हूँ जनता के बीच काम करनेवाले की कोई जाति नहीं होती समझे आप ? लाला दीनानाथ अगर अपने जातिभाइयों को अपनी मुट्ठी में ले लेते हैं और वक्त आने पर हम लाला दीनानाथ को जीत लेते हैं तो इसमें हम कहाँ जातिवादी हो जाते हैं[2] ?" यह सुनकर गुरुसररजी कहते हैं कि बात सही है - "ईमानदारी और बेईमानी में चार अंगुल का भी फर्क नहीं है । यह सवाल चित्त और पट का है । एक ही स्थिति के ये दो पहलू हैं, अब यह आप पर है कि आप कि किस पहलू से देखते हैं । राजनीति यही है । और राजनीति की सफलता भी यही है कि आपका पहलू ईमानदारी से भरा और सही माना जाए[3] ।" चुनाव के वक्त नेता सुनहरे बादा करते हैं,

---

1. कमलेश्वर - काली आँधी, पृ.19
2. वही, पृ.19
3. वही, पृ.19

चुनाव के बाद इन नेताओं को देखने को भी नहीं मिलता । लल्लूलाल कहता है - इलेक्शन का धर्म यही है कि सब-कुछ कहा जाए, पर कही बात में कभी विश्वास न किया जाए समझे भाइये ।"[1]

"राग दरबारी" में अनेक स्थितियाँ मिलती हैं, जो परिवर्तित मूल्यबोध की सूचना देती हैं । गाँव के कोऑपरेटिव यूनियन में गबन होता है, जिसमें मैनेजिंग डाइरेक्टर वैद्यजी के भी हाथ हैं । गाँव में गबन की चर्चा होती है तो वैद्यजी कहते हैं - "हमारी यूनियन में गबन नहीं हुआ, इस कारण लोग हमें संदेह की दृष्टि से देखते थे । अब तो हम कह सकते हैं कि हम सच्चे आदमी हैं । गबन हुआ, हमने छिपाया नहीं । जैसा है, वैसे हमने बता दिया है ।"[2] कॉलिज कमेटी का चुनाव वैद्यजी पिस्तौल के बल पर जीतते हैं तो रंगनाथ रुप्पन बाबू को कहता है कि मामाजी को ऐसा नहीं करना चाहिए था । रुप्पन उत्तर देता है - "देखो दादा, यह तो पॉलिटिक्स है । इसमें बड़ा बड़ा कमीनापन चलता है । यह तो कुछ नहीं हुआ । पिताजी जिस रास्ते में हैं, उसमें इससे आगे कुछ करना पड़ता है । दुश्मन को जैसे भी हो चित करना चाहिए ।"[3] वैद्यजी कॉलिज कमेटी की सालाना बैठक बुलाने की सोचते हैं तो प्रिंसिपल कहता है - "न अभी किसी अखबार में निंदा छपी, न अभी ऊपर कोई शिकायत पहुँची, न कोई जुलूस निकला, न किसी ने अनशन किया, सब साले अपनी अपनी जगह चुप्पी साधे बैठे हैं, कोई भी सालाना बैठक की बात नहीं कर रहा है; जो कर

---

1. कमलेश्वर - काली आँधी, पृ.60
2. श्रीलाल शुक्ल - राग दरबारी, पृ.45
3. वही, पृ.167

भी रहे हैं, वे आखिर कौन है ? यही खन्ना मास्टर, यही रामाधीन भीखमखेडवी और उनके दो-चार मुर्गे । उनके चक्कर में आकर सालाना बैठक बुलाना अच्छा न होगा ।[1]"

छंगामल कॉलिज में प्रिंसिपल अपने रिश्तेदारों को अध्यापक रखता है और उन्हें सीनियर बताकर स्पोर्ट्स आदि का चार्ज देता है तो खन्ना मास्टर शिकायत करता है । शिकायत सुनकर गयादीन कहता है - "वैद्यजी का रिश्तेदार न मिले होंगे, बेचारे ने अपने रिश्तेदार को लगा दिये । यही आज का युग धर्म है । जो सब करते हैं, वही प्रिंसिपल भी करते हैं, कहाँ ले जाय अपने रिश्तेदारों को ।[2]" कॉलिज कमेटी के चुनाव के संदर्भ में गयादीन कहता है - "चुनाव के चोंचले में कुछ नहीं रखा है । नया आदमी चुनो, वह भी घटिया निकलता है । सब एक जैसे हैं । क्या फायदा है उखाड-पछाड करने से ।[3]" चारों ओर भ्रष्टाचार इतना बढ गया है कि नैतिकता का नाम लेना ही अपराध है । गयादीन व्यक्त करता है "नैतिकता, समझ लो यही चौकी है । एक कोने में पडी है, सभा-सोसाइटी के वक्त इसपर चादर बिछा दी जाती है । तब बडी बढिया दिखती है । इसपर चढकर लेक्चर फटकार दिया जाता है । यह उसी केलिए है ।[4]"

---

1. श्रीलाल शुक्ल - राग दरबारी, पृ.155
2. वही, पृ.115
3. वही, पृ.156
4. वही, पृ.114

स्वतंत्र भारत की राजनीति में दल-बदल एक सामान्य सी बात हो गयी है । यह सिद्धांतों पर आधारित न होकर पद मिलने की संभावना पर आधारित है । "कटरा बी आर्जू" का गौरीशंकर पाण्डे इसका उत्तम उदाहरण है । "बाबू गौरीशंकर पहला और दूसरा चुनाव कांग्रेस के टिकट पर जीते । फिर जब चरणसिंह कांग्रेस से अलग हुए, वह भी अलग हो गये । और जब चरणसिंह की सरकार टूटी तो वह फिर कांग्रेस में आ गये[1] ।" इंदिरा गांधी के विरुद्ध फैसला सुनाया जाता है तो गौरीशंकर पाण्डे की प्रतिक्रिया इस प्रकार है - "वह अपने बारे में सोच रहे थे कि यदि श्रीमति गांधी त्याग पत्र दे ही डालती है तो उन्हें किस गुट में जाना चाहिए । उनके भविष्य का सवाल था । उनके लाइसेंसों का सवाल था । उनके मंत्री होने या न होने का सवाल था[2] ।" उपर्युक्त स्थितियों से यह व्यक्त होता है कि भारतीय जनजीवन की पृष्ठभूमि में राजनीतिक स्थितियाँ अत्यंत विकट हो गयी हैं और मूल्यबोध के आधार खोखले हुए हैं । राजनीति का सरकारी नियुक्तियों में क्या हाथ है इसका विवरण प्रस्तुत करनेवाली कई स्थितियाँ उपन्यास में उभरकर आयी है । सरकारी नौकरी में आजकल तरक्की का कोई मानदंड नहीं रह गया है । सरकार की खुशामंदी करके जूनियर सीनियर बन जाता है और सरकार विरोध होने पर सीनियर, जूनियर होने केलिए विवश हो जाता है । आपातकालीन संदर्भ में उपर्युक्त स्थिति का एक चित्र इस प्रकार है - "चक्कर यह था कि लोग सरकार को खुश करने में लगे हुए थे ।

---

1. राही मासूम रज़ा - कटरा बी आर्जू, पृ.16
2. वही, पृ.138

और सब-के-सब एक दूसरे से बाजी मार ले जाने की फिक्र में थे। कोतवाल श्री॰ बाँके बिहारीलाल गुप्ता आई॰पी॰एस॰ के आदमी थे। तोड-जोड के आदमी भी थे। वह इस कोशिश में थे कि इमरजेन्सी में जब सुप्रिम कोर्ट के जजों की सीनियरी नहीं चलती तो यू॰पी॰ पुलिस किस खेत की मूली है। वह यों सीनियर ऑफिसरों को काटकर डी॰ऐ॰जी॰ बनने के चक्कर चलाए हुए थे और जब उन्हें ही "कटरा बी आर्जू साजिश" की भनक पडी तो उन्होंने उसे लपक लिया।[1]"

चुनाव के वक्त प्रत्येक पार्टी में उम्मीदवारों का चयन होता है। उम्मीदवारों में त्याग, बलिदान, सेवा की भावना जैसी योग्यताओं की अपेक्षा नहीं होती, बल्कि चापलूसी और तिकडमबाजी काफी है। "महाभोज" का लखनसिंह इसका उपयुक्त उदाहरण है। 'दा साहब का अपना आदमी है लखनसिंह। बहुत भरोसे का और उनका स्नेहभाजन। दसवीं पास करने के बाद दा साहब की सेवा में नियुक्त हो गया था। उनका थैला उठाये-उठाये उनके पीछे चलता था हर समय, और आज उसे ही दा साहब ने मरोहा के चुनाव क्षेत्र से, खडा किया है[2]।" सत्ताधारी राजनेताओं का एकमात्र लक्ष्य सत्ता को बनाये रखना होता है। इसलिए वे हमेशा जोड-तोड में लगे रहते हैं। लोचन भइया की ओर संकेत करते हुए दा साहब कहता है - "सुकुल बाबू की विधान सभा में जब विधायक था तो उसने हवा का रुख भाँप लिया था और समझ लिया था कि जल्दी ही दिन पूरे होनेवाले हैं, सुकुल बाबू के।

1॰ सही मासूम रज़ा - कटरा बी आर्जू, पृ॰158

2॰ मन्नू भंडारी - महाभोज, पृ॰11

झट से त्याग पत्र दिया और विद्रोह की मुद्रा अपनाकर खडा हो गया । बाद में विद्रोह की कीमत वसूल ली और यहाँ शिक्षा मंत्री बन गया । अब स्कूल बाबू से मोल-भाव और हमसे विरोध चल रहा है उसका ।[1]" यह अवसरवादिता वर्तमान राजनीति की स्वीकृत नीति बन गयी है ।

वर्तमान समाज में ईमानदार एवं कर्तव्यपरायण सरकारी कर्मचारी राजनेताओं के दुश्मन बनकर रह जाते हैं, जबकि चापलूस एवं स्वार्थी कर्मचारी तरक्की एवं धन पा लेते हैं । डी·ऐ·जी· सिन्हा इसका उदाहरण है । दा साहब की इच्छा के अनुसार बिसू की हत्या से संबद्ध रिपोर्ट लिखकर वह डी·ऐ·जी· से ऐ·जी बन जाता है । तरक्की की खुशी में वह दोस्तों को दावत देता है, विदेशी शराबों से युक्त शानदार दावत । "लेकिन किसी के दिमाग में एक क्षण केलिए भी यह बात न आई कि डी·ऐ·जी· की हैसियत का आदमी इतनी कीमती शराबें कहाँ से पिला सकता है, कैसे पिला सकता है ? किसी बडे जौहरी की दूकान के शो-केस की शोभा बढानेवाला कम-से-कम बीस-पच्चीस हज़ार का हीरों का सेट श्रीमती सिन्हा के शरीर की शोभा बढाने कैसे आ पहुँचा कहाँ से आ पहुँचा ?[2]"

वर्तमान जीवन में अर्थ ही सबसे महत्वपूर्ण तत्व है । अर्थ की प्रथमता के बारे में जंगलतंत्रम् में सिंह कहता है - "सुन, धन ही संसार की सबसे बडी चीज़ है । यह जिसके पास होता है, उसके

1· मन्नू भंडारी - महाभोज, पृ·134

2· वही, पृ·151

सभी मित्र होते हैं । धनवान ही सबसे बडा पंडित माना जाता है । संसार में ऐसी कोई भी चीज़ नहीं, जो धन से नहीं प्राप्त की जा सके । जिसके पास धन है, वह वृद्ध होकर भी युवक है और जो निर्धन है वह सुन्दर युवक होकर भी वृद्ध है[1] ।" स्थितियों में इतना परिवर्तन आ गया है कि आजकल न्यायालय भी इन राजनेताओं के हस्तक्षेप से मुक्त नहीं है । ईमानदार न्यायाधीश अपनी ईमानदारी के कारण सत्ताधारियों का दुश्मन बन जाता है जबकि बेईमान और चालाक न्यायाधीश इन सत्ताधारियों की कृपा का पात्र बन जाता है । सिंह अपनी नीति व्यक्त करता है - मैं सीनियर, जूनियर कुछ नहीं जानता । जो मेरा विरोध करेगा वह सीनियर होकर भी जूनियर बना रहेगा और जो मेरा समर्थन करेगा वह जूनियर होने के बावजूद सब से सीनियर बना दिया जाएगा[2] ।" यह सूचित करता है कि ईमानदार व्यक्ति केलिए कोई स्थान नहीं रह गया है ।

गुण्डागर्दी वर्तमान राजनीति का एक अभिन्न अंग बन गया है । महामहिम का लुभावन कहता है - "मैं लोकतंत्र में एक नया प्रयोग कर रहा हूं । डमोक्रसी और पहलवानी को मिलाकर नेतागिरी की एक नयी शैली विकसित कर रहा हूं[3] ।" मुख्यमंत्री तोताराम के लोग विपक्ष के नेता पंडित परमात्मा प्रसाद पर हमला करते हैं और वह अस्पताल में दाखिल कर दिया जाता है । इस संदर्भ में मुख्य सचिव तोताराम को उपदेश देता है - "परमात्मा बाबू को देखने आप जरूर जाइए । यही तो लोकतंत्र की मजा है । मारो

1· श्रवणकुमार गोस्वामी - जंगलतंत्रम, पृ·24

2· वही, पृ·108

3· प्रदीप पंत - महामहिम, पृ·104

भी और सहलाओ भी ।"[1] राजनेता हमेशा अवसर की प्रतीक्षा में रहता है । धन हड़पने का कोई भी अवसर वह खोने नहीं देता । सिंचाई मंत्री नौरंगीलाल बाढ़ सहायता के नाम पर लाखों रुपये अकेले ही हजम कर देता है । लुभावन चन्द्रिका बाबू से इसकी शिकायत करता है तो वह कहता है - "ऐसे उदास न हो, लुभावन ! बाढ़ आयी तो बहुत जगह सड़कें टूटी होंगी, पुल ढहे होंगे, पुश्ते नष्ट हुए होंगे । तुम्हारे समक्ष अपार संभावनाएं हैं । इन संभावनाओं के द्वार खोलो और घुस जाओ अन्दर[2] ।"

राज्य में साम्प्रदायिक दंगा होता है तो इसे सुन्दर मौका समझकर बनिये अपने माल गोदाम से माल हटाकर उसमें आग लगा देते हैं । माल का नुकसान न हो और बीमावाले से पैसा भी मिल जाय, यही था उद्देश्य । अपने माल गोदाम के साथ ये मज़दूरों की झोंपड़ियों पर भी आग लगा देते हैं । इसके बाद बनिया पुलिस में रपट लिखवाने जाते हैं । पुलिस सहर्ष रपट लिख लेती है । "जिसने कहा - "हमारा पचास हज़ार का नष्ट हुआ है", पुलिस ने उनसे कहा - "एक लाख का माल नष्ट होने की रपट लिखाओ ।" जिसने कहा "हमारा एक लाख का माल स्वाह हो गया ।" पुलिस ने उसे सुझाव दिया, "दो लाख का माल स्वाह होने की बात करो[3] ।" लेकिन मज़दूर अपनी झोंपड़ियों के जलने की रपट लिखने गये तो "पुलिस ने रपट लिखनेवालों को नगर में शांति

---

1. प्रदीप पंत - महामहिम, पृ.62
2. वही, पृ.87
3. वही, पृ.150

और सुरक्षा बनाये रखने के उद्देश्य से थाने में बन्द कर दिया[1]।" दुख की बात यह है कि जनता की सुरक्षा के दायित्व जिन पुलिस पर हैं, वही पुलिस जनता की असुरक्षा के कारण बन जाती हैं।

"धर्म मनुष्य में प्रेम, सद्भाव, भाईचारा, जुडाव और ममता पैदा करता है। पर आज के सारे धर्म चाहे वह हिन्दू, इस्लाम, ईसाई और यहूदी क्यों न हो - सब आदमी - आदमी के बीच घृणा, अलगाँव और दुराव पैदा कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में धर्म मनुष्य के उद्धारक नहीं, संहारक बन रहे हैं[2]।" हज़ार घोडों के सवार में इस बिगडती स्थिति का चित्र है - "चाहे देवताओं की पूजा भले ही न हो, पर देवता केलिए युद्ध ज़रूर हो सकता है[3]।" चुनाव जीतने केलिए जनता को जाति और धर्म के नाम पर बाँटने का परिणाम क्या हो सकता है, गीधू इसकी ओर संकेत करता है "सन् 1947 में पाकिस्तान तो एक बना है। मुझे लग रहा है कि जिस तरह के यहाँ देश-सेवक और नेता पैदा हो रहे हैं, वे हज़ारों "जातिस्तान" पैदा कर देंगे। बामण बनिये को नफरत से देखेगा। बनिया राजपूत से घृणा करेगा। राजपूत जाट को दबोचेगा। शूद्र इन सबको। मतलब एक जातिवाला दूसरी जातिवाले को अजगर की तरह निगलने की चेष्टा करेगा[4]।" गीधू की बात सत्य सिद्ध हो रही है। "जाट की बेटी जाट को, जाट का वोट जाट को - का नारा गूंजने लगा। ठीक इसी तरह का

---

1. प्रदीप पंत - महामहिम, पृ.150
2. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - हजार घोडों का सवार, पृ.89
3. वही, पृ.340
4. वही, पृ.364

नारा हर जाति ने गूंजा दिया ।"[1] कहीं आदर्श और सिद्धांत की स्थिति नहीं रही । सेठ दौलतचन्द गोधू से कहता है - "मनुष्य को पहले अपना सुख देखना चाहिए । साधू सन्यासियों का जमाना चला गया । .... आपके पास पैसा है तो सब आपकी इज्जत करेंगे । आप तो गिरिधर गोपालजी बस अपना ही हित सोचिए । अपने हित के सामने देशहित, जनहित और सारे हित गौण हैं । यहाँ व्यक्ति के घर से राष्ट्र बहुत छोटा है । घर विराट देश लघु[2] ।"

आज़ादी की प्राप्ति के बाद सामाजिक जीवन के भिन्न क्षेत्रों में भ्रष्टाचार को बढावा देने में सत्ताधारियों का बडा हाथ रहा है । "दारूलशफा" में चित्रित स्थितियाँ इसकी ओर संकेत करती हैं - "आज़ादी के बाद राजनीति का जो स्वरूप बन रहा था, उसमें जनसंपर्क का अर्थ लोगों के गलत-सही कामों को ठीक करना था । लेकिन इसके साथ "कई प्रकार के धन्धे चल निकले, जिसमें कोटा, पेरमिट से लेकर ठेकेदारी तक में सरकार का हस्तक्षेप होने लगा । लोगों में होड लगी थी, कौन कितना लूट सकता है[3] ।" सरकारी कर्मचारियों के भ्रष्टाचार से संबद्ध एक चित्र इस प्रकार है - "कुछ गिरोह आधुनिक हथियारों से लैस, ट्रकों में लादकर, रातों-रात बडी तादाद में लाइनें काटकर तारों का जखीरा कलकत्ता, बम्बई, मद्रास भेज दिया करते । इन सभी गिरोहबाजों के साथ नीचे से लेकर ऊपर तक हिस्सेबाजी होती । बडे अधिकारी सबकुछ जानकर भी अनजान बने रहते, क्योंकि अपने जमाने में उन्होंने भी

---

1. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - हज़ार घोडों का सवार, पृ.372
2. वही, पृ.385
3. राजकृष्ण मिश्र - दारूलशफा, पृ.25

यही सब करवाया था । फिर उनकी खातिर और जरूरतें यही लोग पूरी करते[1]।" इस प्रकार हर किसी को चाहे राजनेता हो, चाहे सरकारी कर्मचारी, चाहे कोई और, स्वार्थ की चिंता रहती है ।

आजकल राजनीति, राष्ट्रीय स्तर पर कुछ पेशेवर राजनीतिज्ञों के हाथ में चली गयी है । इनकेलिए राजनीति किसी भी व्यवसाय से कम नहीं है । "इसलिए राजनीतिक उद्योगपतियों ने कारखानों के उद्योगपतियों की तरह अरबों रूपये छुपा-छुपाकर रख छोडे थे । इन राजनीतिक उद्योगपतियों में कभी कभी झगडे हो जाते थे और तब कुछ लोग झगडकर एक नयी राजनीति का कारखाना खोल लेते थे जैसे जूट के उद्योग का कोई हिस्सेदार झगडा होने पर अलग साबुन का कारखाना चलाने लग जाये । नये राजनीतिक दल ठीक किसी नये उद्योग की तरह ही काम शुरू करते थे । इस तरह की राजनीति में आम आदमी सिर्फ एक उपभोक्ता की हैसियत में ही होता था[2]।" कभी-कभी भिन्न समस्याओं को लेकर देश में आन्दोलन होता था । "अजीब बात है कि हर आन्दोलन जनता केलिए होता था, लेकिन फायदा सिर्फ राजनीति की इंडस्ट्री चलानेवाले चंद लोगों को होता था, जनता पहले से भी खराब हालत से समझौता करती रहती थी[3]।"

वर्तमान समाज में व्याप्त विसंगतियों की ओर "प्रजाराम" का अशुतोष संकेत करता है - "आप चारों ओर नज़र फैलाइए, क्या

---

1. राजकृष्ण मिश्र - दारूलशफा, पृ.92
2. मुद्राराक्षस - शांतिभंग, पृ.64-65
3. वही, पृ.66

आपको नहीं लगता कि भ्रष्टाचार, कदाचार और अत्याचार का जहर दिन-प्रतिदिन फैलता जा रहा है । हर बडा आदमी अजगर की तरह दूसरे छोटे आदमी को निगलने केलिए बेचैन है । लॉ और ऑर्डर कहाँ है ? ब्यूरोक्रेसी सारी व्यवस्था को शोषण का हथियार बना रही है ।"[1] अशुतोष की बातें सुनकर बी·नाथ उत्तर देता है - "कूटनीति तो यही कहती है कि जब तक हालत साफ न हों तब तक या तो चुप रहना चाहिए या चढते सूरज को नमस्कार करना चाहिए ।"[2] हर एक अपनी भलाई की सोचता है और स्थितियों से फायदा उठाता है । रामेश्वर, जो इमर्जेन्सी के दौरान नेता बन गया था मिस·तेजपाल से कहता है - "दौलत के बिना भ्रष्टाचार के ढेर सारी नहीं कमायी जा सकती और औरत पर बिना मजबूरी के सफाई नहीं की जाती । केवल तुम क्यों ? बडी लंबी सूची है मेरी, मगर मैं ने किसी पर जबरदस्ती नहीं की । सभी सुन्दरियाँ अपनी गरज से मेरे पास आयी हैं । कोई अपने बाप को बचाने, कोई सपने खसम को लाइसेंस दिलाने, कोई अपने पति को बडा अधिकारी बनाने, कोई अपने भाई को नौकरी दिलाने और कोई झोंपडी से महल में जाने ! तुम भी तो अपने घूसखोर बाप को मीसा में बंद होने से बचाने केलिए मेरे पास आयी हो । फिर मैं ही एक सत्यवादी हरिश्चन्द्र क्यों बनूं ? यहाँ के आदमियों का तो आजकल यह धर्म हो गया है कि बिना स्वार्थ किसी की कटी उंगली पर पेशाब न करें ।"[3] राजनेताओं की सत्तालोलुपता इतनी बढ गयी है कि "हर आदमी जिस अधिकार को

1· यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - प्रजाराम, पृ·11

2· वही, पृ·12

3· वही, पृ·44-45

पा लेता है, उसे पीढ़ियों तक अपना बनाने का षड्यंत्र रचता रहता है । चाहे उसकेलिए जन-जन का सत्यानाश हो जाए ।"[1]

उपन्यासों में चित्रित स्थितियों पर ध्यान देने पर स्पष्ट होता है कि स्वातंत्र्योत्तर काल में स्थितियों में भारी परिवर्तन आ गये हैं और मान्यताएँ बदल गयी हैं । सिद्धांत और आदर्श का स्थान स्वार्थ ने ले लिया है । "वर्तमान भारत की राजनीति पैसे, बन्दूक और जाति पर टिकी है । नैतिकता और सिद्धांत खोटे सिक्कों की तरह फालतू हैं । बिना घूस के अब इस देश में कोई काम नहीं होता । राजनीतिक पार्टियाँ अब खुलेआम चन्दा लेंगी । भारत आज वह देश है जहाँ ईमानदार बद-दिमाग और खतरनाक समझा जाता है ।"[2] सिद्धांतवाला बेवकूफ नाम से पुकारा जाता है । कार्यालयों में कामचोरी और भ्रष्टाचार से बढ़कर कुछ नहीं होता है । इस प्रकार अर्थाश्रित दृष्टि निहित स्वार्थों पर ही बल देती है । और समस्त आदर्श और विवेक अपने अर्थ खोकर शब्द मात्र रह गये हैं ।

राजनैतिक मूल्यशोषण के कारण

स्वाधीन भारत की राजनीति के क्षेत्र में व्याप्त मूल्यशोषण के कारणों पर विचार करने पर पता चलता है कि "राजनीतिक मूल्यों के ह्रास की दुर्भाग्यपूर्ण कहानी तो तब ही प्रारंभ हो गयी, जब से राजनैतिक कार्यकर्ता स्वयं को राष्ट्र का

---

1. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - प्रजाराम, पृ.127
2. डॉ. महेन्द्र भटनागर - हिन्दी कथा साहित्य विविध आयाम, पृ.182-183

सेवक न समझकर उसका मालिक समझने लगे । देश की संपत्ति देश हित के उपयोग में न लाकर व्यक्तिगत उपयोग में लाने लगे ।"[1] ग्राम पंचायत से लेकर संसद तक में यह स्थिति व्याप्त है । "आज राजनीति की दुनिया में सत्ता की तलाश है और जब तक हथियायी जाती है, बहुत सारे मूल्य अपने अर्थ खो बेठते हैं । आदर्शवाद का स्थान राजनीतिक धांधली एवं षड्यंत्र ले लेते हैं[2] ।" किसी न किसी प्रकार सत्ता हथियाने के संघर्ष में उलझे नेताओं की दृष्टि संकुचित होती गयी । वे अपने दायित्व को भूलकर सत्ता की होड में लग गये और इनकी नीति और व्यवहार एक दूसरे से दूर होते गये और नैतिक मूल्यों का ह्रास होता गया । "समस्त प्रजातंत्रिक मूल्य स्थितियाँ राजनैतिक लक्ष्यों एवं आशा-आकांक्षाओं की पूर्ति का साधन बनी रही, दलगत एवं वर्गीय संघर्ष को प्रबल करती रहीं । अत: राष्ट्रीय एकता, शिक्षा, निष्ठा, ईमानदारी एवं नैतिकता के अभाव में जनतांत्रिक व्यवस्था स्वार्थ सिद्धि एवं भ्रष्टाचार में लीन होती गयी, अवसरवादिता, भाई भतीजवाद आदि बढती गयी और सार्वजनिक जीवन स्तर गिरता गया[3] ।" सत्ता और संपत्ति के गठजोड और षड्यंत्र ने देश में अराजकता उत्पन्न की ।

---

1. डॉ. मोहिनी शर्मा - हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य, पृ.174

2. Today in the world of politics . there is a search for power and yet when power is attained much else of value has gone. political trickery and intrigue take the place of idealism.
Jawaharal Nehru - Discovery of India - P: 595.

3. अरुणा गुप्ता - छठे दशक की हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य, पृ.40

मतदाताओं की अज्ञता की स्थिति

राजनीतिक मूल्यशोषण के प्रमुख कारणों में से एक अनपढ मतदाताओं की अज्ञता की स्थिति है । "राजनैतिक प्रबुद्धता के दर में तथाकथित वृद्धि के बावजूद, इस देश के मतदाता आज भी व्यक्ति पूजा की भावना को बढावा देते हैं, और संपूर्ण दल को उसके प्रमुख नेता के नाम से पहचानते हैं । इसलिए गाँधी और नेहरू के नाम अपनी सार्थकता रखते हैं और हमारे देश के औसत मतदाता अब भी राजनीतिक प्रभुता के असली तात्पर्य से अनभिज्ञ है[1]।" जनता की इस स्थिति के चित्र उपन्यासों में मिलते हैं । "एक और मुख्यमंत्री" का अरविंद शची से कहता है - "तुम कांग्रेस को छोडकर खडी हो जाओ । अपना चुनाव-चिह्न वही लो, जो नगर के महाराजा लेते हैं । प्रांत की क्या, सम्पूर्ण देश की जनता भोली और अनपढ है । वह संसद केलिए महाराजा को वोट डालेगी और विधानसभा केलिए भी महाराजा को डालेगी, क्योंकि प्राय: औरतें समझेंगी कि दो में से एक तो राजाजी को मिल जाएगा[2]।" स्वाधीनता प्राप्ति के बाद अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति स्वार्थपूर्ति हेतु राजनीति में प्रविष्ट हो गये । उनके व्यक्तित्व के सामने जनता

---

1. Despite the so called increase in the degree of political maturity, the voters in this country still cultivate the sentiments at hero-worship and they identify the whole party with its arch-leader. Thus the name of Gandhi and Nehru have their significance and the average voters of our country are yet to understand the real meaning of political sovereignty. J.C.Johari - Reflection on Indian Politics - P. 309.

2. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - एक और मुख्यमंत्री, पृ.150-161

बेखबर रह गयी।" "भोले-भाले अनपढ और सदा हीनता से जकडे करोडों लोगों ने जब राजा-रानियों को अपने सम्मुख हाथ पसारे देखा तो वे अकल्पनीय आनन्द व आश्चर्य से भर गये। दलित व गरीब प्रजा को लगा कि वह बहुत बडी हो गयी है।"[1] राजनेता, प्रजा की कमज़ोरियों से परिचित हैं और उन्हें विदित है कि इनकी कमज़ोरियों से कैसे लाभ उठा जाय। महामहिम का परमात्मा प्रसाद कहता है - "पब्लिक को मारो गोली ! अभी चुनाव होने में कई बरस बाकी हैं। पब्लिक की स्मरण शक्ति बहुत कमज़ोर होती है। वह सब भूल जाएगी।"[2]

औसत भारतीय मतदाताओं की स्थिति का चित्र शांतिभंग में मिलता है - "सराय का आदमी राजा साहब के तहसीलदार से पता कर लेता था कि इस बार वोट किसे डालना है। उसकी अपनी समझ में यह गुत्थी आ ही नहीं सकती थी गंगाशरण को एक बार कांग्रेस केलिए क्यों वोट दिया, फिर दुबारा संगठन कांग्रेस और भारतीय क्रांतिदल केलिए क्यों वोट दिया। आदमी वही था, बस हर बार दूकान नयी कर लेता था।"[3] यहाँ की जनता की विशेषता यह है कि ये किसी भी स्थिति से समझौता कर लेती हैं। "प्रजाराम" का अशुतोष कहता है - "अपना देश त्यागी-तपस्वियों का है। नंगा-भूखा रहने का यहाँ के आदमी को अभ्यास है।"[4] राजनेताओं को मालूम है कि जनता को कैसे वश में कर लिया जाय। "इस हिन्दुस्तान का मतदाता भी अजीब है, जिसकी

---

1. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - एक और मुख्यमंत्री, पृ.378
2. प्रदीप पंत - महामहिम, पृ.58
3. मुद्राराक्षस - शांतिभंग, पृ.65
4. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - प्रजाराम, पृ.12।

पूँछ पकड लेता है, फिर उसे छोडता नहीं । चाहे पूँछ पकडने के फलस्वरूप कितनी ही लतें सहनी पडें ।" जनता की इस स्थिति ने राजनेताओं को किसी भी घृणित कृत्य करने का साहस दिया है । उन्हें अच्छी तरह मालूम है कि जनता ज्यादा सोचनेवाली नहीं है । और उन्हें वश में करना भी कठिन नहीं है ।

अफसरशाही की भूमिका

राजनैतिक मूल्यशोषण में अफसरशाही का योगदान उल्लेखनीय है । जनता की सेवा केलिए नियुक्त सरकारी अफसर वर्ग स्वाधीन भारत में मौन रहकर अपनी स्वार्थ-साधना करने और यथास्थिति को दृढने लगे । इस वर्ग ने राजनैतिक आकांक्षाओं और व्यक्तिगत स्वार्थों केलिए भ्रष्टाचार और भाई-भतीजावाद जैसी रूढियों को जन्म दिया । ये अफसर लोग सत्तालोलुप राजनेताओं एवं शासकों से मिलकर असामाजिक तत्वों को प्रश्रय देने लगे । इस प्रकार अफसरशाही में भ्रष्टाचार का बोलबाला होने के कारण योजनाओं का कार्यान्वयन ठीक तरह से नहीं हो पाया । भाई-भतीजावाद के कारण अयोग्य व्यक्ति पदों में प्रविष्ट हो गये और योग्य व्यक्ति पीछे छूट गये । इन भ्रष्ट अफसरों के हाथों देश की संपत्ति का दुरुपयोग होने लगा । 'एक और मुख्यमंत्री' में चित्रित भ्रष्टाचार का एक चित्र इस प्रकार है - "नगर-सुविधाओं से दूर ये बस्तियाँ सदियों से पिछडी हुई लगती थीं । नंग-धडंग बच्चे ।

---

1. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - प्रजाराम, पृ.156

काले-कलूटे स्त्री पुरुष ! अभाव और संकटों से घिरे ये लोग स्वतंत्रता के सूर्य की सुख रश्मियों से दूर एक अज्ञान, अंधेरे में भटक रहे थे । विकास के नाम पर जो हज़ारों रूपयों का बजट होता था, वह जीपों के पेट्रोल में खत्म हो जाता था । कागजी-विकास योजनाओं में खर्च हो जाता था । ये लोग प्यासे के प्यासे रह जाते थे । इन्हें सुख-समृद्धि की एक बूंद स्वाति बूंद की तरह मिलती थी । होंठ ही गीले होते थे ।"[1]

सत्ताधारी नेताओं और अफसरों के बीच के समझौते के अनेक चित्र उपन्यासों में मिलते हैं । "महामहिम" का एक चित्र इस प्रकार है - "श्वेत खादी पहने वे लोग कहते थे, हम नीतियां बनाएंगे, तुम अमल करना" । मिस्टर जी·लाल और उनके जैसे अन्य अफसर इस बात पर राजी हो गये थे । अब नेता नीतियां निर्धारित करने लगे थे और अफसर उन्हें लागू करने लगे थे । हर स्तर पर इस समझौते की निष्ठापूर्वक पालन होता था । दोनों का इसी में हित था । एक को इस समझौते के चलते अपनी इच्छानुसार नेतागिरी करने का अवसर मिलता था, दूसरे को निर्बाध रूप से काम करने की छूट, पदोन्नति और रिटर होने के बाद भी कुर्सियों में बैठे रहने के अनेक अवसर ।"[2] मतलब है कि दोनों एक दूसरे को लाभान्वित करते हैं । केवल हानि होती है सरकारी धन और जनता के हितों की । नौकरशाही के भ्रष्ट होने का एक और कारण यह है कि राजनेता भाई-भतीजावाद को प्रश्रय देने लगे, तो पदोन्नति और तबादले में कोई मानदण्ड नहीं रह गया । साधारण अधिकारियों की

1· यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - एक और मुख्यमंत्री, पृ·274

2· प्रदीप पंत - महामहिम, पृ·112

नियुक्ति से लेकर उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति तक में, राजनेताओं की इच्छा की प्रमुखता रही तो अफसरों को लगा कि उनकी योग्यता और अनुभव को कोई महत्व नहीं दिया जा रहा है । उक्त स्थितियों में विकास-योजनाओं के कार्यान्वयन में इन्होंने कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है । उल्टे वे जनता के शोषण में राजनेताओं के इशारों पर नाचने केलिए विवश हो गये ।

अर्थ और भोगवादी दृष्टि

सामाजिक जीवन में अर्थ की बढ़ती प्रधानता और भोगवादी जीवन-दृष्टि ने मूल्यशोषण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है । चुनाव में धन के बढते प्रभाव ने राजनेताओं को अधिक से अधिक धन आर्जित करने केलिए बाध्य किया । इसने राजनेताओं और पूंजीपतियों के बीच की समझौता की भूमिका तय की । परिणामत: पूजीपतियों को जनता के शोषण की लाइसेंस मिल गयी । अर्थलिप्सा और भोगलालसा ने दलबदल की राजनीति को बढावा दिया। वैज्ञानिक प्रगति ने मनुष्य के प्रतिष्ठित नैतिक मूल्यों के आगे प्रश्न-चिह्न लगा दिया । इससे उत्पन्न बुद्धि तत्व की प्रधानता और व्यावहारिक जीवन दृष्टि ने मनुष्य के मन से नैतिकता और अनैतिकता की चिन्ता को दूर कर दिया । और धर्म द्वारा तय किये गये परंपरागत मूल्य निषेधात्मक रूप धारण करने लगे । परिणामत: स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य आदि से प्रतिष्ठित परंपरागत विश्वासों से मुक्त होकर आदमी कोई भी अत्याचार करने केलिए उपयुक्त साहस अपनाने लगा । "स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले हमें अपने कर्तव्य के प्रति

निष्ठा और दूसरों के अधिकारों के प्रति आदर का भाव था, पर अब हर कोई अपने अधिकारों और दूसरों के कर्तव्यों की दुहाई देने लगा, अपने को छोड़कर, बाकी सबकी आलोचना में रस लेने लगा । इससे जीवन में कटुता, कुंठा और घुटन भरती गयी ।[1] चर्चित उपन्यासों में सब कहीं उपयोगितावाद और भोगवाद का बोलबाला है । ये उपन्यासकार ऐसी स्थितियों का विवरण प्रस्तुत करते हैं जहाँ व्यावहारिक कुशलता ही तरक्की का और उपयोगितावाद ही विजय का आधार है । आदर्श और परंपरागत मूल्य अपना अर्थ पूरी तरह खो बैठे हैं, क्योंकि स्वयं पात्र यह महसूस करते हैं कि अर्थ ही जीवन का मूलभूत तत्व है और भौतिक सत्य ही वास्तविक सत्य है और निहित आदर्शों के पन्नों पर कोई भी अस्तित्व असंभव है । मूल्यशोषण की स्थितियों का आरंभ इस प्रकार की आस्थाहीनता और अ.र्थलोलुपता से शुरू होता है ।

व्यक्ति-पूजा की राजनीति

स्वाधीन भारत में व्यक्ति-पूजा और अतिनायकवाद की भावना पनप गयी । इन अतिनायकों के व्यक्तित्व के सामने दूसरी पंक्ति के नेता दब गये । इसलिए बड़े नेताओं के गलत कदमों की आलोचना करने का साहस ये जुटा नहीं पाये । उक्त स्थिति ने देश के विकास को ही नहीं, बल्कि दूसरी पंक्ति के नेतृत्व के विकास को भी कुंठित कर दिया । ये बड़े नेता अंतर्देशीय ख्याति के चक्कर में पड़ गये और देश की असली समस्याओं की ओर उनका ध्यान

---

1. डॉ. रणवीर रांग्रा - समकालीन हिन्दी उपन्यास की भूमिका, पृ.12

नहीं गया । अपने विश्वस्त अनुचरों की गलतियों से आँखें मूँदने केलिए वे विवश हो गये । सत्ताधारी दल और चुम्बकीय व्यक्तित्व वाले नेता ने एक शक्तिशाली विपक्ष के विकास को असंभवित कर दिया । वे विपक्ष को देश के दुश्मन साबित करने की कोशिश करते रहे । यह नीति प्रजातंत्र की स्वस्थ परंपरा की जड़ें काटनेवाली थी । भारतीय राजनीति का सबसे बडा अभिशाप यह है कि यहाँ कोई सशक्त विपक्षी दल ही नहीं उभर पाया । इसके स्थान पर सत्ताधारी शासनतंत्र ने संप्रदायवाद, भाषावाद, और क्षेत्रवाद पर आधारित छोटे-छोटे विघटनवादी दलों को बढावा दिया । ये दल कभी भी सशक्त विपक्ष का रूप नहीं धारण कर सकते थे । सत्ता में अपने को बनाये रखने केलिए तत्कालीन राजनेताओं द्वारा निर्धारित सबसे बडा षड्यंत्र था, यह ।

विपक्षी दलों की संख्या बढ़ती गयी और वे एक दूसरे से दूर होते गये । समय और संदर्भ के अनुसार सत्ता में भागीदारी केलिए ये विपक्षी दल सत्ताधारियों से कहीं-कहीं समझौता करते रहे । मतलब हैं कि विपक्षी दल भी अपना कर्तव्य निभा नहीं पाये । सत्ताधारी दल यही चाहता है कि विपक्षी दल आपस में लडते रहें और अपनी कुर्सी सुरक्षित रहे । राग दरबारी का लेखक इस नीति की ओर संकेत करता है "यदि तुम्हारे हाथ मे शक्ति है तो उसका उपयोग प्रत्यक्ष रूप से शक्ति को बढाने केलिए न करो । उसके द्वारा कुछ नई और विरोधी शक्तियाँ पैदा करो और उन्हें इतनी मज़बूती दे दो कि वे आपस में एक दूसरे से संघर्ष करते रहें । इस प्रकार तुम्हारी शक्ति सुरक्षित और सर्वोपरी रहेगी ।" नेताओं ने चुनाव केलिए

।· श्रीलाल शुक्ल-राग दरबारी, पृ·323

उम्मीदवारों का चयन करते समय योग्यता, सेवा की भावनाऔर अनुभव को कोई महत्व नहीं दिया । इस कारण शासन में अयोग्य व्यक्तियों ने प्रवेश पाया । "राग दरबारी" में वैद्यजी के यहाँ भाँग पीसनेवाले सनीचर को ग्राम पंचायत के प्रधान के चुनाव में खडा कर दिया जाता है । सनीचर गाँव के लोगों से वोट माँगता है "अरे भाई हम तो नाम-भर केलिए प्रधान होंगे । असली प्रधान तुम वैद महाराज को समझो[1]।" 'महामहिम' के केन्द्रीय मंत्री चन्द्रिका प्रताप सिंह इसलिए तोताराम को मुख्यमंत्री बनाता है कि तोताराम से "जो कहेंगे, वही करेगा । जो रटाएँगे, वही बोलेगा[2]।" मतलब है नेता सब कहीं अपना ही प्रभुत्व बनाये रखना चाहते हैं और दूसरे लोगों को अपनी छाया मात्र समझते हैं ।

पत्रकारिता की दायित्वहीनता

राजनैतिक मूल्य-विघटन में भ्रष्ट पत्रकारिता की भूमिका कम महत्वपूर्ण नहीं है । -लोकतंत्र समाज में समाचार पत्र का एक विशिष्ट स्थान होता है, क्योंकि उस समाज के साथ उसका अस्तित्व गहरे ढंग से जुडा होता है । इसी संबन्ध के कारण लोकतंत्र समाज में समाचार पत्र का विशेष उत्तरदायित्व भी होता है।[3]" समाचार पत्रों का दायित्व है कि वे जनहित के संरक्षक बन जाएँ, जनता की जिह्वा बन जाएँ, जनहित के विरुद्ध की नीतियों का विरोध करें, शासकों के पथ-प्रदर्शक बन जाएँ और घटनाओं और

---

1. श्रीलाल शुक्ल - राग दरबारी, पृ. 225
2. प्रदीप पंत - महामहिम, पृ.21
3. सच्चिदानन्द वात्स्यायन - अद्यतन, पृ.89

स्थितियों की सच्चाई को जनता तक पहुँचायें । इसकेलिए चाहिए कि वे तटस्थ रहें और किसी के प्रति अनैतिक झुकाव या लगाव उनमें न हो । लेकिन देखा गया कि "स्वतंत्रता के पश्चात् पत्रकारिता ने जिस व्यावसायिकता का चोगा पहना, उससे वह अपनी तटस्थता खो चुकी । प्रजा के सम्मुख वह कोई बात सर्वथा स्पष्ट रूप से रखने में असफल रही । पत्रकारिता का "धर्म" ही खत्म हो गया । जिसको कोई काम नहीं रहा, उसने अखबार निकाल लिया और पत्रकारिता करने बैठ गया ।"[1]

सनसनीखेज पर आधारित ये पत्र कहीं साम्प्रदायिकता को भड़काते हैं तो कहीं भाषावाद और क्षेत्रीयतावाद को बढावा देते हैं और जनता को गुमराह करते हैं । कहीं सत्ताधारी दल के प्रशंसक बनकर और चापलूसी करके सरकारी विज्ञापन प्राप्त करते हैं और कागज़ की कोटा बढ़ा लेते हैं; जबकि सरकार की आलोचना करनेवाले इनसे वंचित रह जाते हैं । कहीं-कहीं पत्रकार घुस लेकर नेताओं और अफसरों के भ्रष्टाचार को अनदेखा करते हैं । विरोधियों की चरित्रहत्या करने से भी ये नहीं हिचकते । इन स्थितियों के बीच जनता केलिए यह पहचान पाना मुश्किल हो जाता है कि इन समाचारों में सही कौन सा है और गलत कौन सा है । "महाभोज" का दा साहब "मशाल" के दत्ता बाबू को वश में कर बिसू की हत्या को आत्महत्या साबित करता है । बदले में दत्ता बाबू को कागज़ की कोटा दुगुनी कर देता है और खूब सरकारी विज्ञापन भी देता है।

---

1. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - एक और मुख्यमंत्री, पृ.385

"एक और मुख्यमंत्री" का अरविंद, शची को अपमानित करने केलिए शची के पति महेन्द्र और रजनीगन्धा के बीच के अवैध संबन्ध की कहानी "सुर्ख सबेरा" में छपवाता है, क्योंकि उसका संपादक-प्रकाशक पटनायक अरविंद की कृपा का पात्र है ।

स्वाधीनता प्राप्ति के उपरान्त देशमें जितने बडे पैमाने पर पत्रकारिता का विकास हुआ है, वह एक ओर तो प्रशंसनीय है । परन्तु दूसरी ओर पत्रधर्मिता और दायित्व की नीति को तिलांजली देकर चल बढने की नीति को अपनाने के कारण जनहित को जो नुकसान पहुंचा है वह उतना ही निन्दनीय है । वास्तव में भारत की राजनीति में भ्रष्टाचार को प्रतिष्ठित करने में, साधारण लोगों की आँखों में धूल झोंककर भ्रष्ट राजनीतिज्ञों से मिलकर, लोगों को भ्रम में डालने में हमारे देश के पत्रकार सब से आगे रहे हैं । पत्रकारिता का दुर्भाग्यपूर्ण पक्ष यह हुआ कि बहुत सारे पत्र किसी न किसी पूंजीपति के व्यवसाय के अंग बन गये और उनके इशारों पर नचाने में सफल बन गये । जनतंत्र में जहाँ समाचार पत्र को निर्भयता के साथ काम करना है और जनरक्षक बनना है, वहीं हमारे देश के समाचार पत्र कायरता, पक्षपात एवं बेईमानी के शिकार होकर और सनसनी वार्ताओं के प्रतिनिधि बनकर जनहित के विध्वंसक बन गये ।

कानून की दरारें

राजनीतिक मूल्यशोषण के अन्य कारणों में से एक यह हैकि हमारे देश में कोई भी चोर, जुआरी, गुण्डा, नोट के बदले वोट प्राप्त करके पावर में आ सकता है और एक दिन मंत्री तक बन

सकता है।[1]" दूसरी बात यह है कि "लोकतंत्र में कानून भी अजीब लिजलिजा होता है। आदमी पर केस चलता है। केस पहले एक अदालत में, दूसरी अदालत में, उच्च न्यायालय, फिर सर्वोच्च न्यायालय, फिर राष्ट्रपति के हुजूर में दया की भीख[2]!" इसमें इतनी देरी होती है कि इस समय तक लोग अपराध को भूल जाते हैं और यह धारणा भी जनता में बन पाती कि अपराधी को उचित दण्ड दिया जा रहा है। इसमें कठिनाई की एक और बात यह है कि "यदि हम किसी के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही करें तो प्रमाण और गवाहों के अभाव सारे मामले को ही खत्म कर देते हैं और ये भ्रष्ट लोग सदाचार का प्रमाण पत्र भी पा लेते हैं। प्रजातंत्र देश का कानून इतना लचीला होता है कि आदमी इस में सजा बहुत ही कम पाता है।[3]"

कानून की दरारों से अपराधी इसलिए बच निकलते हैं कि हमारी न्यायपालिका की यह दृष्टि रही है कि "चाहे हज़ारों अपराधी बच निकलें, परन्तु किसी भी निरपराधी को दण्ड न भोगना पडे।" इस विशाल और दयालु दृष्टिकोण के कारण हमेशा अपराधी बच निकलते हैं और निरपराधी पकडे जाते हैं। क्योंकि अपराध करनेवाला पहले ही अपना निरपराधित्व स्थापित करने के सामान निकाल लेता है, जबकि भोला-भाला व्यक्ति ऐसा नहीं कर पाता और इस कारण अपराधियों की साजिशों का शिकार बन

---

1. यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र" - एक और मुख्यमंत्री, पृ.285
2. वही, पृ.354
3. वही, पृ.209

जाता है । इसका मुख्य कारण यह है कि अदालत केवल प्रमाणों पर और वकीलों के द्वारा तोडी-मरोडी जानेवाली कानून की व्यवस्था पर ज़ोर देता है, न कि न्याय की श्रेष्ठता पर । इसलिए भारत के सारे अदालत न्याय की अपेक्षा कानून के संरक्षक हैं । इसी कारण अपराधी और अपराध फूलते-फलते हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से पता चलता है कि अनपढ़ जनता की स्थिति, राजनैतिक कार्यकर्ताओं की स्वार्थपरता एवं सत्तालोलुपता, व्यक्ति पूजा की भावना, सत्ता एवं पद का दुरुपयोग, विपक्षी दलों की दायित्वहीनता, नौकरशाही में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं भाई-भतीजावाद, सामाजिक एवं राजनैतिक जीवन में बढती अर्थ की प्रधानता, भोगवादी जीवन दृष्टि, गंदी पत्रकारिता, प्रजातंत्र में कानून की लचीली स्थिति आदि ने मिलकर राजनीति के क्षेत्र में मूल्यशोषण की भूमिका तय की । इस भूमिका की पृष्ठभूमि में फूटबाजी, तिकडमबाजी, साजिश, भ्रष्टाचार आदि के सहारे राजनीति के सबसे विकराल दृश्य प्रस्तुत करने में इस देश के नेता अत्यधिक सफलता का अनुभव करते हैं और खेल जन फूटे के उठने और गिरने तक यानि एक चुनाव के आरंभ से दूसरे चुनाव के आरंभ तक चकित, भ्रमित और असहाय बनकर देखते ही रहते हैं ।

आर्थिक, सामाजिक एवं वैयक्तिक सीमाओं में राजनैतिक मूल्यों की बदलती संकल्पना का प्रभाव

समकालीन सामाजिक और वैयक्तिक जीवन में अर्थ जिस भूमिका को अदा करता है वह दिन-ब-दिन महत्वपूर्ण बनती

जाती है । "स्वाधीनता कालीन भारत में व्यक्ति की अर्थ-सजगता में उल्लेखनीय वृत्ति हुई है । पाश्चात्य भोगवादिता एवं अर्थ-केन्द्रिता के कारण व्यक्ति में अर्थलोलुपता बढी है[1]।" समाज में प्रतिष्ठा का आधार भी अर्थ बन गया है । अर्थ हमारी गतिविधियों का संचालन करता है । विकास का मूल आधार भी अर्थ ही है । अर्थ के अभाव में मनुष्य की क्रियाशीलता समाप्त होती है । आवश्यकताओं की पूर्ति के अभाव में उत्पन्न मानसिक अशांति से विवेक कुंठित हो जाता है । अभावजन्य कुंठाओं से ग्रस्त हो जाने पर व्यक्ति अपराध वृत्ति ग्रहण कर लेता है या आत्महत्या केलिए बाध्य हो जाता है । "अर्थ हमारे जीवन की वाह्य गतिविधियों को ही संचालित नहीं करता, वरन् आन्तरिक विचारधाराओं, भावनाओं को भी प्रभावित और संचालित करता है[2]।" अर्थप्रधान दृष्टि से इस प्रकार मनुष्य के सहज संबन्धों में दरार पहुँचायी पडने लगी और वैयक्तिक संबन्ध धन के आधार पर आका जाने लगे । धन कमाने के रास्ते की खोज में आदमी छिनौने अपराध करने केलिए तैयार हो जाते हैं ।

समाज पर प्रभाव

सत्ता की राजनीति अर्थाश्रित होकर सामाजिक जीवन में असंगतियों को जन्म देती गयी । इस कारण सामाजिक प्रगति में बाधाएँ उपस्थित होने लगती हैं । परिणाम यह होता है कि

---

1. डॉ. मोहिनी शर्मा - हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य, पृ.187
2. डॉ. सरोजनी त्रिपाठी - आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तुविन्यास, पृ.286-287

विकास की योजनाओं को प्रतिष्ठित व्यक्ति लूट लेते हैं। पंचवर्षीय योजनाओं से केवल असंतुलित विकास ही हो पाये । कारण यह है कि राजनेताओं ने इसे भी स्वार्थपूर्ति का साधन बनाया । ग्राम-पंचायत, जिला परिषद, सहकारिता समिति आदि इन तथाकथित जनसेवकों के अखाडे बन गये । स्थितियों के यथार्थ को पहचानकर नौकरशाही भी समाजहित की चिन्ता छोड़कर स्वहित की सुरक्षा करने लगी । नौकरशाही की वर्तमान स्थिति की ओर संकेत करते हुए प्रजाराम कहता है - "ये कारों, स्कूटरों व अन्य पुरस्कार की भूखी अफसरशाही इस देश को हिंस्र अजगर की तरह निगल जाएगी । इनके भरोसे किसी सुदृढ और शानदार राष्ट्र की कल्पना करना रेत से तेल निकालने के बराबर है । कोई प्रशासन इस मशीनरी की बदौलत श्रेष्ठ कार्य नहीं कर सकता ।[1]"

धार्मिक सद्भावना और शांति का भी सत्तालोलुप राजनीति से उत्पन्न एक और सामाजिक विसंगति है । राजनेताओं ने स्वार्थपूर्ति हेतु साम्प्रदायिक, जातीय, भाषाई एवं क्षेत्रीय भावनाओं को उकसाकर, जनता के मन में जो आपसी प्यार और सद्भावना थी उसे मिटा दिया । ये राजनेता जानते हैं कि "कुर्सी पर बैठना है तो जनता में फूट डालो कुर्सी बचानी है तो जनता में फूट डालो । जनता की एकता कुर्सी केलिए सबसे बडा खतरा है[2]।" इसलिए ये राजनेता जनता को बाँट रहे हैं, और आदमी आदमी न रहकर हिन्दू, मुसलमान, ईसाई एवं पंजाबी, बिहारी और

---

1. यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र - प्रजाराम, पृ.76
2. मन्नू भंडारी - महाभोज, पृ.68

मद्रासी बनकर रहने केलिए बाध्य हो गये हैं । "राष्ट्र की युवा पीढ़ी एक भयंकर असंतुलन, मानसिक उद्वेलन तथा दिशाहीनता से ग्रस्त है और उसकेलिए जिम्मेदार पहली बुजुर्ग पीढी है । इस बुजुर्ग पीढी ने युवकों को दिया सिर्फ कोरा आदर्शवाद, झूठी आशा के सपने और काम मांगने गये हाथों में दंगे केलिए पत्थर का अम्बार । आज युवा पीढ़ी के गले में विभिन्न राजनैतिक पार्टियों के पट्टे बाँधकर उन्हें संघर्ष करने केलिए मजबूर किया जा रहा है[1] ।"

व्यक्ति पर दबाव

व्यक्ति के बारे में कहें तो सही दिशा में उसकी प्रगति केलिए सही आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों की आवश्यकता है । लेकिन उसने देखा कि हर कहीं भ्रष्टाचार, स्वार्थ की चिन्ता और भाई-भतीजावाद का बोलबाला है । इस प्रतिकूल परिस्थिति में व्यक्ति "अपने सामाजिक अस्तित्व को संकट में पाकर, खुद को निहत्था महसूसकर जब वह खोले में सिमटता है तो मनो-वैज्ञानिक रूप से वह टूटता है[2] ।" राजनीतिक प्रभाव और धन के बल पर अयोग्य व्यक्ति उच्च पद प्राप्त करता है तो ईमानदार, प्रबुद्ध और साधनविहीन मध्यवर्गीय व्यक्ति निरंतर टूटता जाता है । "मूल्य तथा सार्थकता का बहुत बडा सुवप्न लेकर चलनेवाला व्यक्ति अपने को चारों ओर से टूटा हुआ अकेला और अजनबी पाता है[3] ।" इसके परिणाम दो रूप में प्रकट होते हैं । कहीं कहीं अस्तित्व का यह संकट चेतना को सताने लगता है तो विद्रोह का चुनाव एक लाचारी बन जाता है और शोषण की इस व्यवस्था में वह समाज की

---

1. डॉ. दंगल झाल्टे - उपन्यास समीक्षा के नये प्रतिमान, पृ.12
2. डॉ.सर्वजीत - हिन्दी कहानी आठवाँ दशक, पृ.35
3. रामदरश मिश्र - आधुनिक हिन्दी उपन्या, पृ.68

मान्यताओं के धिक्कारने लगता है । और कहीं व्यक्ति सामाजिक स्थितियों से समझौता करता है और चुपचाप शोषण में भागीदार बन जाता है । "राग दरबारी" का प्रिंसिपल कहता है - "अब तो हाल यह है रंगनाथ बाबू कि तुम कुछ कहें, तो हाँ भइया बहुत ठीक, और वैद्यजी कुछ कहें तो, हाँ महाराज बहुत ठीक और रुप्पन कुछ कहें, हाँ पहलवान बहुत ठीक ! जो कहो बहुत ठीक है । किसी की बात काटने में कुछ नहीं रखा है ।"[1] इस प्रकार स्थितियों ने व्यक्ति को इस तरह झकझोरा है कि जीने केलिए नपुंसकत्व को धारण करने केलिए व्यक्ति विवश बनाये जा रहा है।

इस प्रकार राजनीति के परिवर्तित मूल्यबोध ने सामाजिक एवं वैयक्तिक जीवन की मान्यताओं को बदल दिया है । आजकल व्यक्ति का सम्मान उसकी श्रेष्ठता और योग्यता के कारण न होकर उसकी उपयोगिता के कारण होता है । "ज़िन्दगी के बहुत क्षेत्र में जहाँ नित्य का इनसानी वास्ता ज़िन्दगी की जरूरतों का हिस्सा है - पर हर वास्ता शंकाओं से भरा हुआ है और हर चीज़ बिकाऊ - इन्साफ से लेकर इनसान तक ।"[2] संबन्धों का आधार अर्थ हो गया तो इससे उत्पन्न स्थितियों ने व्यक्ति और समाज के बीच संघर्ष के वातावरण पैदा किये । नई पीढी ने अपनी चारों ओर केवल सत्तालोलुप, भ्रष्टाचारी एवं स्वार्थी नेताओं को देखा । "शीतयुद्ध के वातावरण में पली इस पीढी केलिए "शांति" शब्द अर्थहीन है । यौवन और सौन्दर्य

---

1. श्रीलाल शुक्ल - राग दरबारी, पृ.217
2. अमृता प्रीतम - चुनी हुई कहानियाँ चुने हुए निबन्ध, पृ.308

"नग्नता" का, नैतिकता "वर्जना" का, संस्कृति औपचारिकता का और समाज भीड का पर्याय है[1]।" नयी पीढी में पनपनी अनास्था और मूल्यों के प्रति निषेधात्मक दृष्टि परिस्थितिजन्य है और इस परिस्थिति को रूपायित करने में राजनीति के क्षेत्र में स्वीकृत नई मान्यताओं ने बहुत ही प्रमुख और प्रधान भूमिका अदा की है ।

❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀

---

1. डॉ. कमल कुमार - काव्य परंपरा और नई कविता की भूमिका, पृ.44

उपसंहार

उपसंहार

स्वाधीनता-प्राप्ति के उपरांत भारतीय जनजीवन में उल्लेखनीय परिवर्तन आया । परिवर्तित परिस्थितियों ने साहित्यकारों के सामने नई समस्याएँ उपस्थित कीं । इन समस्याओं ने साहित्यकारों को अभिव्यक्ति के नये क्षितिज की ओर उन्मुख किया । साहित्य से संबन्धित परंपरागत मान्यताएं बदलने लगीं । यथार्थ को नई दृष्टि से देखने का, उसको आंकने का और नई रोशनी में उसे परखने का प्रयास अधिक महत्वपूर्ण बन गया । साठोत्तरी उपन्यासों की रचनात्मक पृष्ठभूमि यही है ।

स्वाधीनता-प्राप्ति के साथ-साथ भारत की राजनीति का आधार पूर्ण रूप से बदल गया और मूल्याधिष्ठित राजनीति का ह्रास हो गया । राजनेताओं की स्वार्थपरक दृष्टि और मतदाताओं की अज्ञता के साथ साथ व्यक्ति पूजा की प्रवृत्तियों ने राजनीति के स्वरूप को धूमिल कर दिया । इसके साथ-साथ

क्षेत्रवाद, साम्प्रदायिकता, भाषावाद और जातिवाद पनपते गये । इन विघटनकारी तत्वों ने देश की एकता और अखण्डता को भंग करनेवाली विस्फोटात्मक स्थितियों को रूपायित किया ।

प्रस्तुत अध्ययन के आधार पर जो निष्कर्ष हमारे सामने उभरकर आते हैं, वे सामाजिक जीवन बोध को प्रभावित करते हुए साहित्यकारों की प्रतिबद्धात्मक दृष्टि का विवेचन प्रस्तुत करते हैं । निष्कर्षत: निम्न लिखित तथ्यों का अनावरण होता है, जो राजनैतिक उपन्यासों के परिप्रेक्ष्य और प्रेरणा के आधार को अधिक स्पष्ट करते हुए भारतीय जनजीवन की विडम्बनात्मक स्थितियों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं ।

● एक तथ्य यह है कि आज़ादी की प्राप्ति के बाद राजनीति सत्य, अहिंसा, ईमानदारी और नैतिकता के रास्ते पर न चलकर धन के प्रभाव, गुण्डागर्दी, बेईमानी और असत्य के पथ को अपनाती हुई बहुत दूर तक निकल गयी ।

● आलोच्य उपन्यासों में उभरती हुई स्थितियों के आधार पर पता चलता है कि भारतीय समाज की दृष्टि और मूल्य संकल्पना को बडी गहराई तक प्रभावित करने में राजनीतिक दाँव-पेंच और भ्रष्टाचार का योगदान रहा ।

● राजनैतिक मूल्यबोध की बदलती संकल्पना ने सामाजिक चेतना को इतना अधिक प्रभावित किया कि पुराने मूल्यों के स्थान पर नये मूल्यों की अवधारणा जन्म लेने लगी ।

यह संकल्पना व्यावहारिक जीवन बोध से जुड़ती हुई परंपरागत, धार्मिक और सात्त्विक मान्यताओं को ठुकराती हुई आगे बढ गयी । मूल्यबोध की यह संकल्पना, उपयोगितावाद, भोगवाद और भौतिक साधनों की प्राप्ति, स्वार्थलब्धि और तिकडमबाजी पर आधारित व्यावहारिक नीति पर अपना अस्तित्व कायम करती है ।

● उपन्यासों पर आधारित विश्लेषण से पता चलता है कि भारतीय राजनीति की भ्रष्टता का आधार एक ओर आदर्शहीन नेताओं की कार्रवाइयाँ हैं तो दूसरी ओर आज़ादी के मूल्य को न समझनेवाले, मतदान के अधिकार के महत्व को न पहचाननेवाले अनभिज्ञ मतदाताओं की मूर्खता है । भेड-बकरियों के समान किसी न किसी राजनीतिज्ञ के पीछे अंधाधुंध चलनेवाले मतदाताओं ने वास्तव में भारतीय राजनीति की आत्मा को कुंठित कर दिया है ।

● अध्ययन का एक और निष्कर्ष इस बात पर ज़ोर देता है कि अंग्रेज़ों के चले जाने के बाद प्रजातंत्र की नीतियों को लागू करने केलिए अफसरशाही में और शासनयंत्र में जिस प्रकार का परिवर्तन अपेक्षित था, वह नहीं हो पाया । गुलामों केलिए निर्धारित नीतियों को कार्यान्वित करने केलिए अंग्रेज़ों ने जिन अफसरों को नियुक्त किया था और जिस शासनयंत्र का विधान किया था वह पूर्णतया शोषणयुक्त रहा । उसी शासन व्यवस्था का सहारा लेते हुए अंग्रेज़ों की कुर्सी पर बैठनेवाला राजनेता, अंग्रेज़ों से भी अधिक खूंखवार बना तो अफसरशाही की बागडोर पकडनेवाले अफसरों ने अपना राक्षसी चेहरा दिखाना शुरू किया । भ्रष्ट राजनेताओं के

स्वार्थ और अफसरों की अवसरवादिता ने मिलकर आम आदमी के अधिकारों पर धावा बोल गया ।

● अध्ययन मे उभरती स्थितियाँ यह स्पष्ट करती हैं कि भारतीय राजनीति की दुर्गति का एक प्रमुख कारण एक शक्तिशाली विपक्ष का अभाव है । सत्ताधारी दलों ने, विशेषकर कांग्रेस पार्टी ने अपनी नीति का चयन इस तरह से किया था कि देश में विपक्ष नाम की कोई शक्ति न रहा । उसके स्थान पर छोटे-छोटे दल बने रहे, जो हमेशा एक दूसरे से झगडते रहे । इन मुट्ठी भर लोगों की झुंड को पार्टी की मान्यता दिलाकर एक ओर साम्प्रदायिक दलों की सृष्टि की गयी, तो दूसरी ओर क्षेत्रवाद को बल देनेवाले दलों को बढ़ावा दिया गया । भारत के विघटन की माँग को बढावा देनेवाले ये दल आज खतरे के निशान को पार कर चुके हैं ।

● विश्लेषण के आधार पर जो सत्य उभरकर सामने आते हैं, उनमें से एक यह भी है कि पत्रकारिता की दायित्वहीनता ने हमारे देश की राजनीति को उस हद तक बढावा दिया, जहाँ पहुँचकर राजनीति एक ऐसे षड्यंत्र का नाम मात्र रह गयी, जो जातीयता, साम्प्रदायिकता, भाषावाद, भाई-भतीजावाद आदि को अपनाती हुई बाहु-बल, धन-बल और क्षेत्रीयता के तत्वों पर अपने को प्रतिष्ठित करती है और आम आदमी के गले को घोंटने केलिए उतारू हो जाती है । पत्रकार भारत में जनजीवन के रक्षक न बनकर प्रभुसत्ता के रक्षक बन गये हैं । दायित्वहीन पत्रकारिता ने व्यावसायिकता का रूप धारणकर साम्प्रदायिक दंगों और आतंकवाद को बढावा दिया, कालेबाज़ारियों और भ्रष्ट राजनीतिज्ञों को सहारा दिया ।

● एक और दु:खद सत्य यह है कि जहाँ कानून को नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करने का परम तथ्य के रूप में प्रतिष्ठित किया गया था, वहाँ राजनीति ने उसको अपने चंगुल में फँसाकर अदालतों को और समूची न्यायपालिका को अपने धर्म से च्युत करा दिया । इस तरह न्यायपालिका का दम घोटा जाता रहा । और कानूनी माथापची के आधार पर अपराधियों के गुट बचकर निकलते रहे । आयोगों की नियुक्तियाँ होती रहीं, रिपोर्टें दर्ज किये जाते रहे । लेकिन कभी भी सत्य के चेहरे जनता के सामने नहीं आ पाये ।

● आलोच्य उपन्यासों में उभरती स्थितियाँ सामाजिक प्रतिबद्धता के आयामों से जुड़ती हैं । व्यक्ति, समाज और नयी पीढ़ी के प्रति मूल्यसंकल्पना के प्रभाव किस तरह से हावी हुए हैं, इसका अन्वेषण भी उपन्यासों में प्रस्तुत किया गया है । जहाँ तक व्यक्ति के अस्तित्व की समस्या है, उपन्यासों में आयी हुई स्थितियाँ यह दिखाती हैं कि स्वातंत्र्योत्तर कालीन समाज में व्यक्ति अपना स्वतंत्र अस्तित्व खो बैठा है । नैतिकता, सात्त्विकता और धर्मनिष्ठा पर आधारित परंपरागत तथ्यों की प्रतिष्ठा व्यक्ति केलिए अब नकारात्मक हो गयी है । व्यावहारिक राजनीति ने उसे परंपरागत मूल्य की अवधारणा से अलग कर दिया है और इस अर्थ में वह "च्युत" भी हो गया है । इस कारण आज सत्य, अहिंसा और नैतिकता के सिद्धांत कोई मूल्य नहीं रखते । व्यक्ति की इस आस्थाहीनता ने उसे एक ओर अन्दर से टूटने केलिए मजबूर किया है, तो दूसरी ओर कुंठा, रुग्ण मानसिकता एवं दिशाहीनता ने भारतीय नागरिकों के विश्वासों को कौडी-कौडी पर बेचने केलिए बाध्य कर दिया ।

● दूसरी ओर सामाजिक स्तर पर जो प्रभाव पडा वह भी नकारात्मक ही रहा । देश के विकास केलिए प्रस्तुत की गयी योजनाएँ जब अपना लक्ष्य खो बैठीं और भ्रष्टाचार के प्रलय में डूब गयीं तो समाज के सामने अस्तित्व का संकट खडा हो गया । बढ़ता हुआ भाई-भतीजावाद, साम्प्रदायिकता, रिश्वतखोरी आदि सारे समाज पर इस तरह हावी रहे कि उसकी रीढ़ की हड्डी ही टूट गयी । अर्थ जब सभी साधनों का, संबन्धों का नियामक तत्त्व बनकर उभरा तो उसीके आधार पर व्यक्ति और व्यक्ति के संबन्ध खोखले बन गये और रिश्ते-नाते टूटने लगे । पारिवारिक जीवन का विघटन और संबन्धों के टूटकर बिखर जाना इसके परिणामक तत्त्व हैं । शहरीकरण ने जहाँ एक ओर अजनबीपन को जन्म दिया, तो दूसरी ओर व्यक्तियों को कल-पुर्जों के समान व्यक्तित्वहीन बना दिया । स्त्री-पुरुष संबन्ध भी धन-दौलत आदि के आधार पर यांत्रिक बन गये । नारी, एक ओर शोषणयुक्त बनी रही तो दूसरी ओर शोषण-मुक्त होकर स्वतंत्रता की अतिसीमा पर जाकर खडी हुई ।

● नई पीढ़ी पर और शैक्षिक संस्थाओं पर बदलते मूल्यों का जो प्रभाव पडा वह भी अत्यधिक खतरनाक रहा । शिक्षा संस्थाएँ राजनैतिक दाँव-पेंच के अड्डे बन गयीं । और उपाधियाँ बेची जाने लगीं । उपाधियों को प्राप्त करने के बाद भी बेरोज़गारी की आग में जलने केलिए जब नयी पीढ़ी विवश कर दी गयी, तब जो आक्रोश और निराशा जन्म ले गयीं, उसने एक ओर तो आतंकवाद को जन्म दिया, तो दूसरी ओर नशेबाजी को । दिशाहीन नई पीढ़ी की स्थिति इस मूल्यशोषण से इस तरह प्रताडित रही कि उनकी मुक्ति केलिए एक और स्वतंत्रता-संग्राम की ज़रूरत स्पष्टतया दृष्टिगत हो गयी ।

❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀❀

संदर्भ ग्रन्थ सूची

संदर्भ ग्रन्थ सूची

आधार ग्रन्थ

1. एक और मुख्यमंत्री (1969) — यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1969

2. सबहिं नचावत राम गोसई (1970) — भगवतीचरण वर्मा,
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1970

3. काली आँधी (1974) — कमलेश्वर
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, 1989

4. राग दरबारी (1975) — श्रीलाल शुक्ल
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1975

5. कटरा बी आर्ज़ू (1978) — डॉ. राही मासूम रजा
राजकमल पेपर बैक्स, नई दिल्ली, 1988

6. महाभोज (1979) — मन्नू भंडारी
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1989

7. जंगलतंत्रम् (1975) — श्रवणकुमार गोस्वामी
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1979

8. महामहिम (1980) प्रदीप पंत
सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, 1980

9. हज़ार घोड़ों का सवार (1981) यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र"
सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 1981

10. दारूलशफा (1981) राजकृष्ण मिश्र
राजकमल पेपर बैक्स, नई दिल्ली,
1981

11. समय एक शब्द भर नहीं है (1981) - धीरेन्द्र अस्थाना
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली,
1981

12. शान्ति भंग (1982) मुद्राराक्षस
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली,
1982)

13. प्रजाराम (1983) यादवेन्द्र शर्मा "चन्द्र"
नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
नई दिल्ली, 1983

सहायक ग्रन्थ

14. अद्यतन सच्चिदानन्द वात्स्यायन
सरस्वती विहार, दरियागंज,
नई दिल्ली, 1978

15. अधूरे साक्षात्कार — नेमीचन्द्र जैन
अक्षर प्रकाशन प्र.लि., दिल्ली, 1966

16. अलगाव दर्शन — डॉ. बैजनाथ सिंह
मंथन पब्लिकेशन्स, रोहत, 1982

17. आंचलिकता और हिन्दी उपन्यास - डॉ. नगीना जैन
अक्षर प्रकाशन प्र.लि.,
नई दिल्ली, 1976

18. आज का हिन्दी उपन्यास — इन्द्रनाथ मदान
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,
1966

19. आठवाँ दशक के हिन्दी उपन्यास - डॉ. रामविनोद सिंह
अनुपम प्रकाशन, पाटना, 1980

20. आत्मनेपद — अज्ञेय
भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1960

21. आधुनिकता और समकालीन रचना संदर्भ - नरेन्द्र मोहन
आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली,
1973

22. आधुनिकता हिन्दी साहित्य के संदर्भ में - गंगाप्रसाद विमल
दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लि.
नई दिल्ली, 1978

23. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक एवं आर्थिक चेतना -
डॉ. पीताम्बर सरोदे
अतुल प्रकाशन, कानपुर, 1987

24. आधुनिक हिन्दी उपन्यासों में वस्तु विन्यास -
डॉ. सरोजनी त्रिपाठी
ग्रन्थम, रामबाग, कानपुर, 1973

25. उपन्यास समीक्षा के नये प्रतिमान - डॉ. दंगल झाल्टे
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1987

26. ऐतिहासिक उपन्यास प्रकृति एवं स्वरूप - सं.डॉ.गोविन्द जी
साहित्यवाणी, इलाहाबाद, 1970

27. कमलेश्वर का कथा साहित्य - माधुरी शाह
साहित्य रत्नालय, कानपुर, 1982

28. कहानी-स्वरूप और संदर्भ राजेन्द्र यादव
नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
नई दिल्ली, 1977

29. कुछ विचार प्रेमचन्द
सरस्वती प्रस, बनारस, 1961

30. काव्य परंपरा और नयी कविता की भूमिका -
डॉ. कमल कुमार
प्रेमप्रकाशन मंदिर, दिल्ली, 1987

31. गाँधीवादी विचारधारा और हिन्दी उपन्यास -
डॉ. अरुणा चतुर्वेदी,
कल्पकार प्रकाशन, लखनऊ, 1983

32. चुनी हुई कहानियाँ, चुने हुए निबन्ध - अमृता प्रीतम
भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1982

33. छठे दशक की हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य - डॉ. अरुणा गुप्ता
इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, 1989

34. छठवाँ दशक — विजयदेव नारायण साही
हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद,
1987

35. जनान्तिक — नेमीचन्द्र जैन
संभावना प्रकाशन, हापुड़ा, 1981

36 तीसरा साक्ष्य — सं.डॉ. अशोक वाजपेयी
संभावना प्रकाशन, दिल्ली, 1979

37. दृश्यांतर — नरेन्द्र मोहन
किताब घर, दिल्ली, 1975

38. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास -
डॉ.लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, 1982

39. नया साहित्य:नये प्रश्न — नन्ददुलारे वाजपेयी
विद्यामंदिर, वाराणसी, 1963

40. नयी कविता के बाद — ओमप्रकाश अवस्थी
पुस्तक संस्थान, कानपुर, 1979

41. नयी कहानी की भूमिका — कमलेश्वर
शब्दकार, दिल्ली, 1978

42. नये साहित्य का सौंदर्यशास्त्र- गजाननमाधव मुक्तिबोध
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 197।

43. निर्मूल वृक्ष का फल — डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल,
लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1978

44. भगवतीचरण वर्मा (चित्रलेखा से सबहिं नचावत रामगोसाईं तक) — डॉ. कुसुम वार्ष्णेय
साहित्य भवन (प्रा) लिमिटेड,
इलाहाबाद, 1968

45. भगवतीचरण वर्मा के उपन्यासों में युगचेतना - बैजनाथ प्रसाद शुक्ल
प्रेम प्रकाशन मंदिर, दिल्ली, 1977

46. भवन्ती — अज्ञेय
राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली, 198।

47. भारत में जातिवाद और हरिजन समस्या - जगजीवन राम
राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली, 198।

48. भारतीय अर्थशास्त्र — लक्ष्मीनारायण नाथूरामका
लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, प्रकाशक,
आगरा, 1990

49. भारतीय संस्कृति के स्वर — महादेवी वर्मा
राजपाल एण्ड सन्ज़,
दिल्ली, 1988

50. मन्नू भंडारी का उपन्यास साहित्य - नन्दिनी मिश्र
हिन्दी साहित्य भण्डार,
लखनऊ, 1983

51. मानव मूल्य और साहित्य — डॉ. धर्मवीर भारती
भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, 1960

52. यशपाल के उपन्यासों में सामाजिक चेतना - डॉ.ह.श्री.साने
सरस्वती प्रकाशन, कानपुर, 1988

53. राजनीति सिद्धांत — सं.ज्ञानसिंह संघ
हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन
निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय,
1988।

54. वागर्थ — रमेशचन्द्र शाह
संभावना प्रकाशन, हापुड़ा, 1989

55. व्यक्ति चेतना और हिन्दी उपन्यास - डॉ. पुरुषोत्तम दुबे
अनुपमा प्रकाशन, बंबाई, 1973

56. समकालीन कहानी के विविध संदर्भ - डॉ. कीर्ती केसर
नाचिकेता प्रकाशन, दिल्ली, 1987

57. समकालीन कहानी में बदलते पारिवारिक संबन्ध -
डॉ. ज्ञानवती अरोडा
सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, 1989

58. समकालीन कहानी सोच और समझ - डॉ. पुष्पपाल सिंह
आत्माराम एण्ड सन्ज़,
कश्मीरी गेट, दिल्ली-6.

59. समकालीन परिवेश और प्रासंगिक रचना संदर्भ -
अशोक हजारे
डॉ.माधवसोन टक्के,
विकास प्रकाशन, कानपुर, 1988

60. समकालीन लेखन एक वैचारिकी - डॉ.चन्द्रभान रावत
डॉ. रामकुमार खण्डेलवाल,
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली ।

61. समकालीन साहित्य चिंतन डॉ. रामदरश मिश्र
डॉ. महीप सिंह
प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1981

62. समकालीन हिन्दी उपन्यास कथ्य विश्लेषण - डॉ.प्रेमकुमार
इन्दु प्रकाशन, अलीगढ, 1983

63. समकालीन हिन्दी उपन्यास की भूमिका - डॉ. रणवीर रांग्रा
इन्दु प्रकाशन, अलीगढ, 1983

64. साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास - पारुकांत देसाई
सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, 1984

65. साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में राजनैतिक चेतना -
कृष्णकुमार बिस्सा,
दिनमान प्रकाशन, दिल्ली, 1984

66. साठोत्तरी हिन्दी कहानी और राजनैतिक चेतना -
डॉ. जितेन्द्र वत्स,
साहित्य रत्नाकर, कानपुर, 1985

67. साहित्य और सामाजिक मूल्य - डॉ. हरदयाल
विभूति प्रकाशन, दिल्ली, 1985

68. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य और ग्राम जीवन -
डॉ. विवेकी राय
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद,
1974

69. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास का शिल्प विकास -
डॉ. रोहेश्याम कौशिक
मंगल प्रकाशन, जयपुर, 1976

70. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास मूल्यसंक्रमण - डॉ. हेमेन्द्रकुमार
पानोरी,
अनुपमा प्रकाशन, बंबई, 1974

71. हिन्दी उपन्यास अछूते संदर्भ डॉ. रणवीर रांग्रा,
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 1986

72. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा - डॉ. रामदरश मिश्र
राजकमल प्रकाशन प्र. लि. नई
दिल्ली, 1968

73. हिन्दी उपन्यास और जीवन मूल्य - डॉ.मोहिनी शर्मा
साहित्यागार, जयपुर, 1986

74. हिन्दी उपन्यास महाकाव्य के स्वर - डॉ.शांतिस्वरूप गुप्ता,
अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1971

75. हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना - अमरसिंह जगराम लोधा
चिन्तन प्रकाशन, कानपुर, 1985

76. हिन्दी उपन्यास विविध आयाम - डॉ.चन्द्रभान सोनवणे
पुस्तक संस्थान, कानपुर, 1977

77. हिन्दी उपन्यास समाज और व्यक्ति का द्वन्द्व
डॉ. मंजुला गुप्ता
सूर्य प्रकाशन, दिल्ली, 1986

78. हिन्दी उपन्यास समकालीन परिदृश्य - डॉ. महीप सिंह
लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1980

79. हिन्दी उपन्यास - सातवाँ दशक - डॉ. विजयश्री बरहाटे
संचयन, कानपुर, 1988

80. हिन्दी कथासाहित्य में भारत विभाजन - डॉ.हेमराज निर्मम
संजय प्रकाशन, दिल्ली, 1987

81. हिन्दी कथा साहित्य विविध आयाम - डॉ. महेन्द्र भटनागर
आत्माराम एण्ड सन्ज़, दिल्ली, 1988

82. हिन्दी कहानी आठवाँ दशक- डॉ. सरबजीत
संजीवन प्रकाशन, कुलक्षेत्र, 1982

83. हिन्दी के आंचलिक उपन्यास - डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय,
चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989

84. हिन्दी के बहुचर्चित उपन्यास और उपन्यासकार
अमर जयसवाल
विद्याविहार, कानपुर, 1984

85. हिन्दी में आंचलिक उपन्यास उद्भव और विकास -
डॉ. इंदिरा जोशी
देवनागर प्रकाशन, जयपुर, 1984

86. हिन्दी के राजनैतिक उपन्यासों का अनुशीलन - वृजभूषण सिंहल
रचना प्रकाशन, इलाहबाद, 1970

87. हिन्दी कथा साहित्य समकालीन संदर्भ - डॉ. ज्ञान आस्थान
जवहर पुस्तकालय, मथुरा, 1981

अंग्रेज़ी पुस्तकें

88. Ademsmiths Science of Morals — T.D. Campbell, George Alen & Unwin Ltd., London 1971.

89. Administration, Politics and Development in India — Ed. C.N. Bhalarao, Lalvani Publishing House, Bombay, 1972.

9Ø.	All the Prime Ministers Men	Janardan Thakur, Bell Books, Vikas Publishing House New Delhi,1977
91.	Crisis into Chaos	E.M.S.Namboothiripad, Orient Longman, Bombay, 1981.
92.	Democracy Redeemed	V.K. Narasimhan, S.Chand&Company Ltd, New Delhi, 1977
93.	Discovery of India	Jawaharlal Nehru, Asia Publishing House, Bombay, 1961.
94.	Experiment with Untruth	Michael Henderson, The Macmillan company of India Ltd Delhi, 1977
95.	Freedom at Midnight	Larry Collins & Dominique Lapierre, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi, 1977
96.	From Raj to Rajiv	Mark Tully, Zareer Mansani, B.B.C. Books, London, 1988.
97	Independence to Indira and After	K.T.J. Mohan, S. Chand & Company, New Delhi, 1977
98.	Indian Government and Politics	D.C. Gupta, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi, 1978.
99.	India in Crisis	J.D. Sethi, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi, 1978.

100.	India of Tomorrow	G.R. Madan, Allied Publishers, Bombay, 1975.
101.	Inside India Today	Dilip Hiro, Routledge &Kegan Paul, Londan and Henley,1976.
102.	Indian Literture Since Independence (A Symposium)	Ed. K.R. Srinivas Iyengar, Sahitya Akadami, New Delhi, 1972.
103.	India Since Independence (From the Preamble to the Present)	V.K.N. Menon, S.Chand & Co(Pvt.)Ltd., New Delhi, 1972.
104.	Indira's india Gate	G.S. Bhargava, Arnold-Henemann Publishers, New Delhi, 1977
105.	Indian Women Today	Dr. Girija Khanna & Marimma A. Varghese, Vikas Publishing House, New Delhi, 1978.
106.	In the Larger Personal Interest	V.K. Murthi, Allora Pubications, New Delhi, 1978.
107	Introduction to Sociology	D.R. Vidya Bhushan Sachidev, Kitab Mahal, Allahabad, 1974.
108.	Minister's Misconduct	A.G. Noorani, Vikas Publishing House New Delhi, 1973.
109.	Public Adminstration in India	C.P. Bhambri, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi, 1973.
110.	Reflections on Indian Politics	J.C. Johari, S.Chand &Co (Pvt.)Ltd, New Delhi, 1974.

111.	Social Changes in India	B. Kuppuswamy, Vikas Publishing House New Delhi, 1977
112.	The Indian Dimension	Romesh Thapar, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., New Delhi, 1977
113.	The Indian Political System	Norman D. Palmer George Allen & Unwin Ltd., London, 1961.
114.	The Socilogy of Freedom	Krishna Chaithanya, Manohar Publications, Delhi, 1978.
115.	Twentyfive years of Indian Independence	Ed. Jagmohan, Vikas Publishing House Pvt. Ltd., Delhi, 1973.
116.	Encyclopaedia Britanica Vol. 7	William Bentan - Publisher, Chicago, 1971.

* * * * * * * * *

पत्र - पत्रिकाएँ

1. अनुवाक् - 1975
2. नईधारा - दिसंबर 1983
3. प्रकर - फरवरी 1985
4. भाषा - त्रैमासिक - रजतजयंती विशेषांक
   मार्च-जून 1985
5. संवेतना - जून 1980
6. [redacted] जून 1983
7. समीक्षा - अक्तूबर-दिसंबर 1983
8. समीक्षा - अप्रैल-जून 1983
9. साहित्यानन्द कोश - 1970

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY * UNIVERSITY LIBRARY * COCHIN - 682 022